अणुव्रत जीवन-दर्शन

★

लेखक

मुनि श्री नगराजजी

भूमिका

श्री श्रीमन्नारायण

महामंत्री, अ० भा० कांग्रेस कमेटी

★

प्रकाशक

अणुव्रत समिति, सब्जीमण्डी, दिल्ली

लेखक की कृतियाँ

१ जैनदर्शन और आधुनिक विज्ञान (हिन्दी अंग्रेजी)
२ अणुव्रत जीवन-दर्शन (हिन्दी अंग्रेजी बंगला)
३ अणु से पूर्ण की ओर (हिन्दी अंग्रेजी)
४ प्रेरणा-दीप (हिन्दी अंग्रेजी बंगला)
५. अणुव्रत दृष्टिदर्शन (हिन्दी अंग्रेजी बंगला)
६ अहिंसा के अंचल में
७ अणुव्रत विचार
८ अणुव्रत-दृष्टि
९ अणुव्रत क्रान्ति के बढ़ते चरण (हिन्दी अंग्रेजी)
१० अणुव्रत-आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग (हिन्दी बंगला कन्नड़)
११ आचार्य भिक्षु और महात्मा गांधी (हिन्दी गुजराती)
१२ तेरापंथ दिग्दर्शन (हिन्दी अंग्रेजी)
१३ युगधर्म तेरापंथ (हिन्दी अंग्रेजी कन्नड़ उड़िया)
१४ नवीन समाज-व्यवस्था में दान और दया (हिन्दी अंग्रेजी)
१५ युग प्रवर्तक भगवान् श्री महावीर
१६ बाल-दीक्षा : एक विवेचन

प्राप्ति स्थान—

अणुव्रत समिति
१५१० [illegible] रोड
सब्जीमण्डी दिल्ली—६

श्री सुमेरचन्द जैन
C/o श्री गिरधारीलाल पद्मकुमार
चावड़ी बाजार, दिल्ली

मूल्य २)

प्रथम संस्करण १९५७—१०००
द्वितीय संस्करण १९६०—२०००

मुद्रक
धर्मशाला प्रेस, किंग्सवे, दिल्ली-९

प्रकाशकीय

मनुष्य सौन्दर्योपासक प्राणी है। वह अपने समस्त क्रियाकलाप को कलात्मक बनाना चाहता है। भारतीय ऋषि मुनियों व मनीषियों ने अन्तरतम की कला को संस्कृति के नाम से पुकारा है। अणुव्रत आन्दोलन मानस-विशुद्धि की एक व्यवस्थित पद्धति है, जिसमें कला संस्कृति और सभ्यता का त्रिवेणी संगम है। भारतीय इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण घटना है जिसमें एक धर्माचार्य ने अपने ६५० साधु साध्वियों के विशाल संघ को सार्वजनिक नैतिक जागरण के कार्य में विशेष रूप से प्रवृत्त कर दिया है। आचार्यश्री तुलसी आध्यात्मिक जगत की महान् विभूति हैं। जिन्होंने आज से दस वर्ष पूर्व अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन कर भारतीय जनता का नैतिक पथ-प्रदर्शन किया।

मुनि श्री नगराजजी का इस आन्दोलन के साथ आदि से आज तक गहरा सम्बन्ध रहा है। आप आन्दोलन के प्रशस्त व्याख्याकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन आठ वर्षों का तो आपका अधिकांश समय आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं पर चिन्तन, मनन व लेखन में ही व्यतीत हुआ है। आपके दिल्ली, जयपुर बम्बई व बिहार प्रवास आन्दोलन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वर्षीय कार्यक्रम के आधार पर आपके तत्त्वावधान में अनेकानेक आयोजन हुए हैं, जिनमें लगभग एक लाख विद्यार्थियों, हजारों व्यापारियों, मजदूरों व राजकर्मचारियों ने नैतिक प्रेरणाएं ली हैं। प्रस्तुत पुस्तक अणुव्रत जीवन दर्शन में मुनि श्री नगराजजी ने आन्दोलन के मूलभूत सिद्धान्तों की गहरी मीमांसा करने के साथ छात्र, मजदूर व्यापारी, राजकर्मचारी आदि वर्गों में आए दिन होने वाली समस्याओं व अन्यान्य अनेकों महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर आन्दोलन का सूक्ष्मतम दृष्टिकोण उपस्थित किया है। पुस्तक की भाषा सरल है और प्रतिपादन अत्यन्त स्पष्ट है। भाषा की सरलता ने विचारों की गहराई को दुरूह नहीं बनने दिया है। मैं आशा करता हूँ, हमारी दिल्ली अणुव्रत समिति का यह प्रथम प्रकाशन

जिसका कि यह दूसरा संस्करण है, जनता की नैतिक-दरिद्रता को दूर करेगा और साहित्यिक क्षेत्र में अभिनव उपहार सिद्ध होगा।

मैं अ० भा० कांग्रेस कमेटी के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तता में भी समय निकाल कर इस पुस्तक पर भूमिका लिखने का कष्ट किया है।

दिनांक
१ जनवरी १९६०
दिल्ली

गोपीनाथ 'अमन'
अध्यक्ष
अणुव्रत समिति, दिल्ली।

आचार्य श्री तुलसी को

जिनसे बहुत कुछ पाया है और बहुत कुछ पाना है।

भूमिका

मैं अणुव्रत आन्दोलन से बहुत प्रभावित रहा हूँ क्योंकि यह जीवन की छोटी से छोटी आवश्यक बातों पर जोर देता है। साधारणतया जीवन के छोटे कार्यों के प्रति हम अपने उत्तरदायित्व को भूल जाते हैं और बड़े-बड़े कार्यों में ही बड़ी दिलचस्पी दिखाते हैं। सत्य यह है कि जब तक हम अपने जीवन की छोटी बातों की ओर ध्यान नहीं देंगे तब तक महान कार्यों में सफल नहीं हो सकेंगे।

अणुव्रत आन्दोलन में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति व्रत लेते हैं। वे व्रत उनके दैनिक जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को छूते हैं। साथ ही साथ वे सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के पालन की भी शपथ लेते हैं। इन प्रतिज्ञाओं में घूस, भ्रष्टाचार, अस्पृश्यता और आर्थिक शोषण के नियम भी सम्मिलित हैं। जनता का नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए इन सामाजिक व आर्थिक बुराइयों के प्रति हमारा ध्यान अधिक केन्द्रित होना चाहिए।

आज हम अपने राष्ट्र के आर्थिक जीवन के निर्माण में जुटे हुए हैं, लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिए कि नैतिक योजनाओं के बिना सिर्फ आर्थिक योजनाएं प्रभावशाली नहीं बन सकेंगी। मैं अणुव्रत आन्दोलन को नैतिक संयोजन का एक क्रान्तिकारी कदम मानता हूँ। नैतिक विकास की योजना के बिना हमारी आर्थिक योजना के मौन मूल्य जाएंगे; ऐसा मेरा विश्वास है।

अणुव्रत जैसे आन्दोलन में संख्या की अपेक्षा गुण विकास पर ध्यान रखना आवश्यक है। मुझे यह बताया गया कि अणुव्रत-आन्दोलन का दृष्टिकोण ऐसा ही है। आत्मविश्वास व सत्साहस के साथ नैतिक नियमों का पालन करने वाले मुट्ठी भर व्यक्ति भी सामाजिक वातावरण को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते।

मुनिश्री नगराजजी ने इस पुस्तक में अणुव्रत-आन्दोलन की सूक्ष्मतम भावनाओं का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। विवेचन स्पष्ट व उपदेशात्मक है। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक भारत में व विदेशों में भी सभी के लिए व्यावहारिक व उपयोगी सिद्ध होगी। मुझे दृढ़ विश्वास है कि अणुव्रत-आन्दोलन लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल होगा और ठोस नींव पर "समाजवादी समाज व्यवस्था" की रचना में सहायक बन सकेगा।

नई दिल्ली
ता० १४-२-५७

श्रीमन्नारायण

लेखकीय

"अणुव्रत जीवन दर्शन" की आदि व सम्पन्नता धरती और सागर के संगम पर हुई। अहर्निश समुद्र की ओर झांकने वाली बम्बई की प्रासाद-पंक्ति में 'फूलचन्द निवास' की पांचवीं मंजिल पर हम चातुर्मासिक स्थिति में रह रहे थे। सामने लहराते अरब समुद्र के अनोखे दृश्य थे। कभी ज्वारोन्मत्त लहरों का ताण्डव आंखों के सामने आता तो कभी भाटा से सकुचाती लहरों का लास्य भाव। 'फूलचन्द-निवास' की एक सौ आठ सीढ़ियों के आरोहण में जो थकान हमें आती, समुद्र की ओर पलक मारते ही मानो उसका रोशय निधन हो जाता। मानसिक प्रसन्नता के उन्हीं क्षणों में "अणुव्रत जीवन-दर्शन" लिखने का प्रसंग चला। मुनि हर्षचन्द्रजी ने विनोद भाव से कहा—आप बोलें और मैं लिखूं, पर गणेश की तरह मेरी लेखिनी बीच में रुके नहीं। मैंने कहा—तुम्हारे लिए गणेश हो जाना सहज है, पर मेरे लिए व्यास होना सहज नहीं। काम प्रारम्भ हुआ। मैं उस असम्भव अनुष्ठान में प्रण-बद्ध नहीं था; तथापि मेरा यह मानवीय मानस तो उस मृगमरीचिका में उड़ान भरने ही लगा था। उसे लगता था, हो सकता है, व्यास के सूने पद की पूर्ति मेरे से ही होनी लिखी हो। व्यास बनूं या न बनूं पर लेखिनी रुके नहीं, यह ध्यान आदि से अन्त तक मुझे प्रेरणा दे रहा था। व्यास तो फिर भी नहीं बन पाया पर मन की इस उड़ान में इतना लाभ अवश्य हुआ कि एक महीने के लगभग ६० घण्टों में ही पुस्तक सम्पन्न हो गई। मानव के सहज भावों को गूंथना था, क्योंकि अणुव्रत-अभियान जीवन-व्यवहार का ही तो दर्शन ठहरा। यहां मुझे सांख्य, योग, न्याय, जैन आदि दर्शनों की गम्भीर गुत्थियों को नहीं सुलझाना था। इस सम्बन्ध में षोडशवर्षीय मुनि हर्षचन्द्रजी के हृदय की स्थिरता और लेखिनी की त्वरता अवश्य प्रशंसनीय रही।

प्रस्तुत पुस्तक पंच अणुव्रतों की व्याख्या मात्र है। व्याख्या की फिर व्याख्या अपेक्षित न हो, इसलिए भाषा सहज-गम्य रहे, यह मुझे आदि से अन्त तक अभिप्रेत रहा है, फिर भी भाषा का साहित्यिक स्तर

में विश्वास रखते हुए मैं अपने संकल्प को कहाँ तक निभा पाया हूँ इस के निर्णायक पाठक ही होंगे।

"अणुव्रत जीवन-दर्शन" के मूल सूत्र आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी द्वारा निर्धारित पंच अणुव्रतों के ४८ नियमोपनियम हैं। पुस्तक में उन नियमोपनियम की शब्द-रचना को नहीं लिया गया है, तथापि विवेचन के केन्द्र और परिधि वे सूत्र ही हैं। प्रस्तुत पुस्तक के नाम और रचनाक्रम के विषय में मैंने मुनि महेन्द्रकुमारजी के सुझावों को चरितार्थ किया है।

पुस्तक के शेष प्रकरण में अणुव्रतियों के जीवन-संस्मरण रखे गए हैं। आन्दोलन के विचारात्मक पक्ष के साथ प्रयोगात्मक पक्ष भी पाठकों के सामने रहे यह आवश्यक माना गया। तथाप्रकार के संस्मरण इससे पूर्व भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जनता के सामने आए। विवेचन तथा विचार की अपेक्षा सर्वसाधारण का आकर्षण संस्मरणों में कहीं अधिक पाया गया। इससे भी विशेष बात यह है संस्मरणों का विषय मुझे सर्वाधिक प्रिय सदा से रहा। यही कारण था आन्दोलन के आरम्भ से लेकर मैं अब तक इनका संकलन करता रहा हूँ। ये संस्मरण अणुव्रतियों की भाषा में ही संकलित हैं। बहुत सारे विचारक अणुव्रतियों का यह सुझाव रहा कि इस संकलन से अणुव्रतियों को आत्म-गरिमा का दोष तो नहीं लगेगा? इस विचार को ध्यान में रखते हुए संस्मरणों के साथ अणुव्रतियों के नाम नहीं जोड़े गए हैं।

दिनांक
१ जनवरी, १९५० } मुनि नगराज

अनुक्रम

में विश्वास रखते हुए मैं अपने संकल्प को कहाँ तक निभा पाया हूँ इस के निर्णायक पाठक ही होंगे।

“अणुव्रत जीवन-दर्शन” के मूल सूत्र आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी द्वारा निर्धारित पंच अणुव्रतों के ४५ नियमोपनियम हैं। पुस्तक में उन नियमोपनियम की शब्द-रचना को नहीं लिया गया है, तथापि विवेचन के केन्द्र और परिधि वे सूत्र ही हैं। प्रस्तुत पुस्तक के नाम और रचनाक्रम के विषय में मैंने मुनि महेन्द्रकुमारजी के सुझावों को चरितार्थ किया है।

पुस्तक के शेष प्रकरण में अणुव्रतियों के जीवन-संस्मरण रखे गए हैं। आन्दोलन के विचारात्मक पक्ष के साथ प्रयोगात्मक पक्ष भी पाठकों के सामने रहे यह आवश्यक माना गया। तथाप्रकार के संस्मरण इससे पूर्व भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जनता के सामने आए। विवेचन तथा विचार की अपेक्षा सर्वसाधारण का आकर्षण संस्मरणों में कहीं अधिक पाया गया। इससे भी विशेष बात यह है संस्मरणों का विषय मुझे सर्वाधिक प्रिय सदा से रहा। यही कारण था आन्दोलन के आरम्भ से लेकर मैं अब तक इनका संकलन करता रहा हूँ। ये संस्मरण अणुव्रतियों की भाषा में ही संकलित हैं। बहुत सारे विचारक अणुव्रतियों का यह सुझाव रहा कि इस संकलन से अणुव्रतियों को आत्म-गरिमा का रोग तो नहीं लगेगा? उस विचार को ध्यान में रखते प संस्मरणों के साथ अणुव्रतियों के नाम नहीं जोड़े गए हैं।

दिनांक
जनवरी १९६०

मुनि नगराज

अनुक्रम

★

अणुव्रत जीवन-दर्शन

अणुव्रत आन्दोलन

मनुष्य अपनी दैहिक रचना से बहिर्मुख है। उसकी इन्द्रियाँ भी बहिर्गामी हैं। शब्द रूप रस गंध स्पर्श आदि ऐन्द्रियिक विषय तो पार्थिव हैं ही। यही कारण हो सकता है कि मनुष्य सुख व शान्ति को बाहर ही खोजता है। पर ऐसा करते समय वह भूल जाता है कि इस पार्थिव आवरण की तह में एक अन्तर जगत् और भी है जो मन की आँखों का विषय है जहाँ शान्ति का निर्द्वन्द्व साम्राज्य है एवं सुख का स्रोत अनायास फूटता है। उसे वीतरागियों ने देखा है, ऋषिमहर्षियों ने पहचाना है। इसीलिए तो वे गाते हैं 'अपनी'[1] आत्मा से आत्मा को देखो। 'अमृत'[2] का इच्छुक वह विरला ही मनुष्य है जो अपने नेत्रों को बाहर से अन्दर की ओर मोड़ता है। अणुव्रत आन्दोलन मनुष्य को अन्तर्मुख बनाने का ही एक सही अनुष्ठान है। वह इस विश्वास पर आगे बढ़ता है कि मनुष्य ज्यों ज्यों अन्तर्मुख बनता जाएगा त्यों त्यों उसकी वैयक्तिक व सामष्टिक समस्याएँ स्वयं निराहित होती जाएँगी। उदाहरणार्थ—अणुव्रती अर्थात् अन्तर्मुख व्यक्ति भी अपने जीवन-धारण के लिए खाएगा पर वह इतना नहीं खाएगा कि उस कारण से दूसरे लोग भूखे रह जाएँ। वह दूसरे के हिस्से को स्वयं संग्रह करके न छोड़ेगा। वह पारिवारिक दायित्व के लिए धन-संग्रह भी यदि करेगा तो वह संग्रह भी उसकी अल्पतम आवश्यकताओं को लांघकर नहीं होगा। उसमें शोषण की गन्ध नहीं रहेगी। इसका परिणाम होगा—समाज में सम धरातल पर एक जगह धन का ढेर नहीं लगेगा और दूसरी जगह गड्ढा नहीं पड़ेगा। अन्तर्मुख-व्यक्ति ज्ञान विज्ञान भी पढ़ेगा पर उसका ज्ञान-विज्ञान अणुबम व उद्जन बम जैसी संहारक शक्तियों का स्रष्टा नहीं होगा। वह तो यही मान कर चलेगा कि "उन" करोड़ों पदों के कण्ठस्थ कर लेने से क्या? यदि उसे इतना

---

1 संपिक्खए अप्पगमप्पएणं

2 पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद् आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥
—कठोपनिषद् २।१।१

3 किं तए पढियाए पयकोडीए पलालभूयाए।
जं इत्तो वि न नायं परस्स पीडा न कायव्वा॥

भी ज्ञान न हो कि दूसरों की हिंसा नहीं करनी चाहिए। वह मानेगा वास्तविक शिक्षा वह है जिससे कि मनुष्य की आत्मौपम्य बुद्धि जागृत हो। इस प्रकार जब पर्याप्त मात्रा में अन्तर्मुखता का उदय होगा तो धार्मिक-वैमनस्य तथा विश्व-युद्ध गोरे-काले का भेद स्पृश्य-अस्पृश्य की धारणा आदि समस्याएँ अपने आप शान्त हो जाएँगी।

अणुव्रत और महाव्रत

व्रत मानस का दृढ़तम संकल्प व जीवन की सुन्दरतम मर्यादा है। यह आत्मानुशासन का प्रतीक और दैवी भावनाओं का विकास है। व्रतों के आरम्भ व क्रमिक विकास की दृष्टि अणुव्रत शब्द में अन्तर्निहित है और अहिंसा सत्य आदि की साधना की पराकाष्ठा महाव्रत शब्द में। अणु से आरम्भ होकर महा की ओर अग्रसर होते रहना अणुव्रती का ध्येय होगा। अहिंसा के अणु अणु को जोड़ता हुआ अणुव्रती चलेगा। उन अणुओं के संगठन में विराट् भावनाएँ साकार होंगी—"अपनी आत्मा के जो प्रतिकूल है वह दूसरों के लिए मत कर[1]।" "समस्त विश्व को मित्र की दृष्टि से देख[2]" "जिसे तू मारता है समझ वह मैं ही हूँ[3]।" इसी प्रकार वह सत्य का अणु लेकर विराट् सत्य की खोज में आगे बढ़ेगा। उसकी निष्ठा होगी "मैं असत्य से सत्य की ओर आगे बढ़ूँ[4]।" "सत्य ही विजयी होगा असत्य नहीं[5]।" "यही संसार में सारभूत है[6]।" उसकी वाणी होगी—"आत्म-साक्षी से सत्य का अन्वेषण करो[7]"। अस्तु ब्रह्मचर्य की साधना का एक कण लेकर वह साधना से सिद्ध होने का प्रयत्न करेगा। अपरिग्रह की दिशा में वह आगे बढ़ता हुआ आत्मस्थित की स्थिति पर पहुँचने को प्रयत्नशील रहेगा। उसकी मान्यता होगी—"तृष्णा क्षयी समस्त दुःख को जीत लेता है[8]।" इस प्रकार व्रत के माध्यम से अणु से महा की ओर अग्रसर होते रहना ही अणुव्रत शब्द का हार्द है। अणुव्रत का शाब्दिक अर्थ है—छोटे व्रत।

---

१ आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्
२ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे—वेद वाक्य
३ जं हंतव्वंति मन्नसि तं तुमंसि चेव—भगवान् महावीर
४ अहमनृतात् सत्यमुपैमि—वेद वाक्य
५ सत्यमेव जयते नानृतम्
६ सच्चं लोगम्मि सारभूयं—भगवान् महावीर
७ अप्पणा सच्च मेसिज्जा
८ तण्हक्खयो सव्वदुक्खं जिनाति—बुद्ध

भारतीय संस्कृति में अणुव्रत

अणुव्रत शब्द यद्यपि जैन-परम्परा का है[1] तथापि उसका हार्द भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य रहा है। योग दर्शन के प्रणेता पतञ्जलि ने देश काल आदि सीमाओं से मर्यादित अहिंसा सत्य आदि इन्हीं पाँच तथ्यों को व्रत और देश काल की मर्यादा से मुक्त इन्हीं पाँच तथ्यों को महाव्रत कहा है।[2]

बौद्ध-परम्परा में इनको पञ्चशील[3] के नाम से कहा गया है। महात्मा गांधी ने अस्वाद और अभय को स्वतन्त्र व्रत के रूप में मानकर इन्हीं तथ्यों को सप्त-व्रत[4] के नाम से कहा है। भारतीय ही नहीं किन्तु इतर धार्मिकों एवं धर्म प्रवर्तकों ने भी बाइबिल कुरान आदि ग्रन्थों में इन्हीं तथ्यों को मूल माना है।

जैन परिभाषा में अणुव्रत शब्द सम्यक् दर्शन के साहचर्य का भाव रखता है और अणुव्रत आन्दोलन में प्रयुक्त अणुव्रत शब्द एक स्वतन्त्र व व्यापक अर्थ का वाचक है। इसमें जैनों की इस तर्क का कि सम्यक् दर्शन के अभाव में कोई अणुव्रती कैसे कहला सकता है समाधान होगा। साथ साथ जैनेतरों की इस तर्क का भी कि जब आन्दोलन का उद्देश्य सार्वजनीन एवं व्यापक है तो किसी धर्म व परम्परा विशेष की संज्ञा का ही व्यवहार क्यों?

धर्म व संस्कृति का निचोड़

धर्म व संस्कृति का मार्ग गहन है। भोला-भाला मनुष्य उसमें भटक जाता है। आत्मा मोक्ष पुण्य पाप आदि प्रश्नों पर ऋषि महर्षि व तत्त्वज्ञ भी एकमत नहीं हो पाते हैं। अणुव्रत मनुष्य को उस राजमार्ग से चलाता है, जिसमें दो विकल्प नहीं हैं। वह समस्त धर्मों समस्त दर्शनों एवं समस्त संस्कृतियों से अनुमोदित है। विविध दर्शनकार चाहे तर्क की पगडंडियों में बँटकर कितने ही गहरे उतरते हों पर जीवन-व्यवहार के इस समान धरातल पर सब एक हैं। इसलिए कहा जा सकता है अणुव्रत-आन्दोलन धर्म व संस्कृति का वह

---

1 अहं णं देवाणुप्पियाणं अन्तिए पंचाणुव्वइयं ------गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि। —उपासक-अध्ययन १

2 अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्। योग दर्शन साधना पाद ३०–३१

3 धम्मपद १८–१०

4 मंगल-प्रभात

समन्वित निचोड़ है जो एक ही स्थान में एक रस करके प्रस्तुत किया गया है।

मानव धर्म

आजकल बहुत सारे लोग धर्म को पचड़ा मानते हैं। वे कहते हैं— हम किसी धर्म को नहीं मानते। हम तो मानव धर्म के उपासक हैं। कुछ अंशों में उनका कथन निराधार नहीं है क्योंकि धर्म के शुद्ध रूप पर जब नाना रूढ़ियाँ, आडम्बर, ईर्ष्या, साम्प्रदायिक व्यामोह आदि छा गए तो मनुष्य को लगने लगा कि जहाँ धर्म के नाम पर मानवता की भी विडम्बना है, ऐसे धर्म से क्या? यह चिन्तन चाहे कुछ ही अंशों में सत्य हो पर यह तो निश्चित ही है कि अणुव्रत आन्दोलन पग-पग द्वारा अभीप्सित मानव धर्म की एक व्यवस्थित रूप रेखा है।

जीवन-व्यवहार में धर्म

आज की धार्मिक स्थिति ने यह तो स्पष्ट ही कर दिया है कि जितना सत्य यह है कि भारतीय धर्म-शास्त्रों में जो जीवन के हेयोपादेय का मन्थन है, आदर्श-जीवन की जो कल्पना है वह बेजोड़ है, उतना सत्य यह भी है कि जीवन-व्यवहार के इन आदर्शों से भारतीय लोग जितने दूर हैं उतने दूसरे नहीं। फिर भी धार्मिक तो सबसे अधिक भारतीय लोग स्वयं को ही मानते हैं। उसका भी एक हेतु है। धर्म के मुख्यतया दो विभाग हैं। एक साधना प्रधान और दूसरा व्यवहार-प्रधान। साधना प्रधान धर्म का देश में आज भी बोलबाला है। लोग अपने अपने विश्वासों के अनुसार मठ मन्दिर मस्जिद गिरजा और साधु-स्थानों आदि धर्मस्थानों में जाते हैं, जप स्तुति व्रत आदि विभिन्न प्रकारों से धर्माराधना करते हैं। पर ज्योंही वे घर, दुकान या कार्यालय में आते हैं यह भूल जाते हैं कि धर्म का मर्म हमें यहाँ भी साथ रखना है। धर्मगुरुओं के द्वारा भी केवल उपासना के पक्ष पर अधिक जोर दे देने के कारण लोगों की यह धारणा बन गई है कि जीवन-व्यवहार में कितना ही अधर्म करते रहें, हमारी उपासना हमें मुक्ति दे ही देगी। ऐसी स्थिति में अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को इस ओर मोड़ता है कि धर्म केवल धर्म-स्थान का ही विषय नहीं है, वह जीवन-व्यवहार का भी विषय है। वह अहिंसा सत्य आदि रूप धर्म तो सही अर्थ में कार्यालय या दुकान में ही आराधा जा सकता है। व्यवसायी तराजू को हाथ में लिए भी यह सोचता रहे, मैं ग्राहक को किसी प्रकार धोखा तो नहीं दे रहा हूँ। अधिकारी कागजों पर हस्ताक्षर करता हुआ यह सोचता रहे कि मैं किसी के साथ अन्याय तो नहीं कर रहा हूँ। यह धर्म की वह साधना है जो कुछ दृष्टियों से धर्म-स्थान में होने के रूप में की जाने वाली साधना से अपना विशेष महत्त्व रखती है। अणुव्रत आन्दोलन सहज ही धर्माराधना के इन दो पहलुओं में सन्तुलन पैदा

करने वाला अमोघ मंत्र सिद्ध होगा।

तीन श्रेणियाँ

अणुव्रती तीन श्रेणियों में विभक्त हैं : प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती और विशिष्ट अणुव्रती। ये श्रेणियाँ क्रमिक-विकास की प्रतीक हैं। प्रत्येक सदस्य के लिए अपनी अपनी श्रेणी के निर्धारित नियम तो अनिवार्य हैं ही। उससे आगे वह यथाक्रम विकास करता चला जाए, यही श्रेणी निर्धारण का हार्द है। निर्धारित नियमों को अपना कर प्रवेशक अणुव्रती सचमुच ही आज के अनैतिकतापूर्ण वातावरण से मुड़कर अपनी मंजिल के तोरणद्वार में प्रवेश कर जाता है। अणुव्रती होता अपने आपको आदर्श नागरिक के रूप में उपस्थित करता है। उसका (अणुव्रती का) आदर्श होगा—चालू समाज-व्यवस्था के आवरण में अपने स्वार्थ के लिए किसी भी अनैतिक प्रवृत्ति में अग्रसर न होना। निर्धारित नियम उसका शरीर व नियमों का हार्द व व्याख्या आदि उसके प्राण होंगे। नियमों के खण्डन को वह अपनी भौतिक (शारीरिक) मृत्यु व नियमों के हार्द के हनन को आत्म हनन (नैतिक मृत्यु) के बराबर समझे, यह उसकी साधना का विषय होगा।

हिंसा व शोषण रहित जीवन-व्यवस्था

तीसरी श्रेणी विशिष्ट अणुव्रतियों की है। यहाँ साधक इस स्थिति पर पहुँच जाता है कि वह चालू समाज रचना के बहुत सारे मूल्यों को चुनौती देकर जीवन-व्यवहार की एक नई व्यवस्था को जन्म देता है। उदाहरण के लिए एक प्रयत्न से आदमी व्यवसाय चलाता है। धन संग्रह उसके आगे से आगे बढ़ता जाता है। उस व्यक्ति का सामाजिक मूल्यांकन अनैतिक व्यक्ति के रूप में नहीं होता। किन्तु विशिष्ट अणुव्रती इससे आगे भी सोचेगा। उसका चिन्तन होगा मैं नैतिक प्रयत्नों से भी यदि सामान्य लोगों से अधिक संग्रह करता हूँ, अपने घर में धन का ढेर लगाता हूँ तो समाज में नाना संकट पैदा होते हैं और विषमता पनपती है। यह आर्थिक विषमता ही एक उत्पन्न हिंसा का निमित्त बनती है अतः मुझे हिंसा व शोषण रहित जीवन-व्यवस्था की [illegible] होकर समाज में खड़ा होना है। अस्तु इस प्रकार विशिष्ट अणुव्रती का चिन्तन ऊर्ध्वमुखी होगा और जीवन व्यवहार के नाना पहलुओं में वह क्रान्ति करता हुआ चलेगा।

आदि से अब तक

बीज में बड़ का विराट् अस्तित्व छिपा रहता है। अनुकूल स्थिति पाते ही वह उभर आता है। इसी प्रकार की विराट् शक्तियों का भी सहज सहज मनोवृत्ति-संस्कार में एक सूत्र उत्पन्न होता है और अनुकूल समय पाते ही वे उस बट की तरह विस्तृत रूप दिखाते हैं। लगभग दस वर्ष पूर्व की

बात है आचार्यश्री तुलसी राजस्थान के छापर नामक ग्राम में चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। जनसाधारण के इन उद्गारों से प्रेरित होकर कि आज की स्थिति में नैतिक रहकर व्यक्ति जीवनयापन कर सके यह असम्भव है—आचार्यवर ने अपने प्रातःकालीन प्रवचन में सहस्रों नर नारियों के बीच सिंह गर्जना करते हुए कहा—"आज मैं पच्चीस व्यक्तियों के नाम चाहता हूँ, जो कठिनाइयों का सामना करते हुए भी नैतिकता के मार्ग पर चलकर लोगों की बनी हुई दुर्बल धारणाओं को चुनौती दे सकें। वातावरण नैतिकता के पक्ष में स्फूर्तिमान था। तड़ातड़ एक एक करके पच्चीस वीर खड़े हुए और उन्होंने निवेदन किया आप हमें मार्ग-दर्शन करें, हम किसी भी कीमत पर नैतिकता के दुरूह मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध हैं। आचार्यवर का हृदय उल्लास से भर गया। उन पच्चीस साहसिक व्यक्तियों के नाम अंकित किए व उन्हें मार्ग-दर्शन करने का भरोसा दिया। यही एक दिन की घटना आज इस विराट् अणुव्रत-आन्दोलन की पहली ईंट साबित हो रही है।

उन साधकों के क्या क्या नियम हों उनके संगठित स्वरूप को कैसे मार्ग-दर्शन दिया जाए, इस समग्र प्रयत्न की स्पष्ट रूपरेखा क्या हो इसी चिन्तन में आचार्यवर ने अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में अशेष मानव जाति के नैतिक अभियान का राजमार्ग खोज निकाला जो आज अपने क्रमिक-विकास में कोटि कोटि जनता के जीवन-निर्माण का आकर्षक विषय बन रहा है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता में भी आचार्यवर की सजीव प्रेरणाएँ ऐसी बलवती होकर चली कि आन्दोलन के उद्घाटन-समारोह में उन्हीं पच्चीस व्यक्तियों को पचास साथी साथ लेकर और मिले। पहले वार्षिक अधिवेशन पर ६२१ व्यक्तियों ने देहली के चाँदनी चौक में समग्र प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कीं। इसी क्रम से पिछले वर्ष कानपुर अधिवेशन पर लगभग साढ़े चार हजार व्यक्तियों ने अणुव्रत-मार्ग पर चलने की शपथ ली। क्षेत्र की दृष्टि से राजस्थान के सरदारशहर कस्बे से शुरू होने वाला आन्दोलन आज पंजाब सौराष्ट्र महाराष्ट्र, गुजरात मैसूर मध्यप्रदेश उत्तरप्रदेश आन्ध्र मद्रास बिहार, उड़ीसा बंगाल आदि भारतवर्ष के सभी प्रमुख प्रान्तों में प्रसार पा रहा है। आज तक के व्रतियों में जैन वैष्णव आर्यसमाजी सिक्ख मुसलमान, ईसाई आदि विभिन्न धर्म व हरिजन किसान व्यापारी पदाधिकारी साहित्यकार एवं सार्वजनिक कार्यकर्ता आदि विभिन्न जाति पेशा व रुचि वाले व्यक्ति सम्मिलित हैं।

इस अवधि में अणुव्रत आन्दोलन को आगे बढ़ाने वाली बहुत सारी कार्य प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हुई हैं। अणुव्रत विचार परिषद् वार्षिक सप्ताह व पखवाड़े अहिंसा दिवस अणुव्रत प्रेरणा दिवस मैत्री-दिवस आदि उनमें

उल्लेखनीय है। देश के विभिन्न भागों में होने वाली विचार परिषदों में अन्य

प्रवृत्तियाँ

मान्य विचारकों के मननशील विचारों के माध्यम से विचार क्रान्ति के रूप में अणुव्रत भावना जन जन में फैली है। वर्गीय सप्ताह व पखवाड़ों में वर्गगत बुराइयों के विरोध के लिए तत्सम्बन्धी नियमों का विशद रूप से प्रसार हुआ। जैसे—विद्यार्थियों में—

१—परीक्षा में अवैधानिक तरीकों से उत्तीर्ण होने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

२—किन्हीं तोड़ फोड़ मूलक हिंसात्मक कार्यवाहियों में भाग नहीं लूँगा। आदि... –

व्यापारियों में—

१—मिलावट नहीं करूँगा।

२—झूठा तोल-माप नहीं करूँगा। आदि

राजकर्मचारियों में—

१—रिश्वत नहीं लूँगा।

२—अपने प्राप्त अधिकारों से किसी के साथ अन्याय नहीं करूँगा। आदि..

देश के विभिन्न क्षेत्रों में उक्त वर्गीय कार्यक्रमों से नई चेतना आई। आन्दोलन से संपृक्त व प्रभावित अनेकानेक व्यक्तियों ने झूठा तोल-माप मिलावट चोरबाजारी आदि से मुंह मोड़ा। अनेकों ने सच्चाई के लिए सहस्रों व लाखों के लाभ को ठुकराया। अनेकों ने अपने व्रत की रक्षा के लिए बेकारी और अर्थाभाव को सहा और अनेकों ने सत्य पर दृढ़ रहकर धन और प्रतिष्ठा गमाई।

विद्यार्थियों में तो वर्गीय कार्यक्रमों से अप्रत्याशित जागरण हुआ। बम्बई दिल्ली जयपुर, उदयपुर इन्दौर, लाडनूं आदि के सहस्रों विद्यार्थियों ने वर्गीय प्रतिज्ञाएँ लीं और अणुव्रत-विद्यार्थी-परिषदों की स्थापनाएँ कीं।

राजकर्मचारियों में भी सामुदायिक चेतना आई। सहस्रों की संख्या में पुलिस के नौजवानों व पुलिस अधिकारियों, मजिस्ट्रेटों व वकीलों तथा सेल्सटैक्स, इन्कमटैक्स आदि विभिन्न विभागों के कर्मचारियों ने वर्गीय प्रतिज्ञाएं ग्रहण कीं।

चुनाव-प्रसंग

आचार्य प्रवर देश के अन्य सामयिक प्रसंगों पर भी अणुव्रतों का प्रभाव डालते रहे हैं। सन् १९५७ में होने वाले चुनावों के अवसर पर आपने समस्त देशवासियों से नैतिकता बनाए रखने की अपील की। उम्मीदवारों मतदाताओं समर्थकों व व्यवस्थापकों के लिए राजनैतिक चर्चाओं की रणभूमि देहली में आपने १०

नियमों की घोषणा की। उस समारोह में मुख्य चुनावायुक्त श्री सुकुमार सेन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेबर, प्रजासमाजवादी दल के नेता आचार्य जे० बी० कृपलानी अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता श्री ए० के० गोपालन आदि प्रमुख लोग उपस्थित थे। इन सभी लोगों ने अपने अपने भाषण में आचार्यश्री की योजना का स्वागत किया और अपने अपने दलों में इन नियमों को पालन करवाने का भरोसा दिया। देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में उस कार्यक्रम की महत्वपूर्ण चर्चाएं रहीं।

मैत्री-दिवस

सन् सत्तावन में आचार्य प्रवर ने प्रतिवर्ष एक मैत्री दिवस मनाने की व्यवस्थित रूपरेखा जनता के सामने रखी। उन दिनों देहली में एक ओर यूनेस्को-कान्फ्रेंस चल रही थी और दूसरी ओर आचार्य प्रवर के तत्वावधान में अणुव्रत-सेमिनार। यूनेस्को के डाइरेक्टर जनरल डा० लूथर ईवान्स ने अणुव्रत-सेमिनार का उद्घाटन किया था। उसी प्रसंग पर आचार्य प्रवर ने मैत्री दिवस मनाने की घोषणा की। डा० लूथर ईवान्स ने इसका समर्थन किया। ३० दिसम्बर को महात्मा गांधी के समाधि-स्थल राजघाट पर प्रथम बार मैत्री-दिवस मनाया गया। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इसका उद्घाटन किया। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने व उनको मिटाने की दिशा में यह एक सही उपक्रम था। लोक भावना में इसका कैसा स्वागत हुआ यह हम इस बात से जान सकते हैं कि प्रथम बार जहां केवल अखिल भारतीय अणुव्रत समिति ने इसकी आयोजना की वहां सन् ५८ के प्रारम्भ में इसे मनाने में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय १५ संस्थाएं इसमें सम्मिलित हो गईं। उनमें यूनेस्को, इण्डियन रेडक्रास सोसाइटी, कारे बान् ऑफ इण्डिया, भारत सेवक समाज-दिल्ली, यूनाइटेड नेशन्स एसोसिएशन, वीमन्स लीग ऑफ नेशन्स पूना, भारत स्काउट एण्ड गाइड्स, इण्डियन कौंसिल फॉर कल्चरल रिलेशन्स, इण्टर नेशनल कल्चरल कोर्स, बालकन जी बारी, इण्डो-नेपाल फैलोशिप एसोसिएशन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने इसका उद्घाटन किया व प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू, यूनेस्को के डाइरेक्टर जनरल डा० लूथर ईवान्स प्रभृति अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त लोगों ने व कनाडा, जापान, नेपाल, पोलैण्ड, लंका आदि देशों के राजदूतों ने अपने अपने समर्थनात्मक सन्देश इस अवसर पर भेजे। इसी प्रकार सन् १९५९ में ५ अप्रैल को अखिल भारतीय स्तर पर मैत्री-दिवस मनाया गया। कलकत्ता में आन्दोलन प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के तत्वावधान में इसकी आयोजना हुई और सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री सुधिरंजनदास ने इसका उद्घाटन किया। भारतवर्ष की राजधानी

देहली में मुनि श्री बुद्धमल्लजी के तत्त्वावधान में १७ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा मनाया गया जिसका उद्घाटन भारत के प्रतिरक्षामंत्री श्री वी० के० कृष्ण मेनन ने किया। वस्तुतः ही मैत्री-दिवस की योजना देकर आचार्यश्री ने अणुव्रत आन्दोलन के इतिहास में एक स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ दिया है।

सुधार या क्रान्ति

सुधार का आगमन विचारों से प्रारम्भ होता है। पर विचारों का आमूल बदलना क्रान्ति का रूप लेता है। आज के लोग सुधार की अपेक्षा क्रान्ति में अधिक विश्वास करने लगे हैं। प्रश्न उठता है, अणुव्रत-आन्दोलन सुधार है या क्रान्ति? यथार्थता तो यह है कि अणुव्रत आन्दोलन सुधार भी है और क्रान्ति भी। व्यक्ति-सुधार से वह समष्टि-सुधार की ओर जाता है इसलिए वह सुधार है और वर्तमान शोषण मूलक व विषमताजन्य परिस्थितियों को मिटा कर समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहता है इसलिए वह एक क्रान्ति है।

व्यापक उपयोगिता

समालोचना की दूसरी दृष्टि है कि ३६ करोड़ भारतीयों में से यदि चार हजार व्यक्ति सद्व्यवहारी बन गए तो देश के सामूहिक चरित्रबल पर क्या प्रभाव पड़ेगा? प्रतिवर्ष २०० अणुव्रती बनते जाएँ तो भी हम नैतिक दुर्भिक्ष का अन्त कब होगा? विस्तृत समीक्षा में जाने से पूर्व यह तो मान ही लेना होगा कि उक्त विचार के समीक्षक भी इसमें दो मत नहीं हैं कि स्वरूप सुन्दर भी प्रभुस्वर तो नहीं है।

आन्दोलन देश के सामूहिक नैतिक पुनरुत्थान में कहाँ तक पर्याप्त होगा यह भी कोई बड़ा प्रश्न नहीं है। क्योंकि चार हजार व्यक्ति व्रत ग्रहण करते हैं इसलिए यह आन्दोलन इतने व्यक्तियों तक ही सीमित, यद्यपि मैं समझता यह मान लेना भूल है। स्थिति यह है कि आन्दोलन जितना व्रतों का प्रचार है उससे भी अधिक विचारों का। सच तो यथार्थ यह है कि जिस आन्दोलन के द्वारा सहस्रों व्यक्ति व्रतों की मर्यादा में आ जाते हैं वहाँ समझना चाहिए, आन्दोलन लाखों और करोड़ों के हृदय को छू गया है। क्योंकि नैतिक विचारों से प्रभावित होने वालों में कुछ ही प्रतिज्ञाबद्ध व्रत-ग्रहण के लिए आगे बढ़ते हैं। आज तक अणुव्रती, प्रवेशक अणुव्रती व वर्गीय अणुव्रतियों की संख्या लाखों में पहुँच गई है। पर इस संख्या का हम स्वतन्त्र कोई या अधिक यह कोई विवाद का विषय नहीं है। आन्दोलन की व्यापक सफलता तो नैतिक विचार प्रसार में ही निहित है। कोई भी सुधार प्रथम विचारों में आता है और पीछे आचार में। चारों ओर से सब साधारण को [illegible] आत्मिक परिणाम चार हुए

भी सामने न आए, किन्तु उसका असर उसी दिन से आरम्भ हो जाता है और एक अवधि के पश्चात् एक ठोस परिवर्तन का रूप ले लेता है। वह सुधार हाथ घड़ी में लगी उस सुई के समान है जिसकी गति आँख का विषय नहीं बनती पर वह निश्चित अवधि के पश्चात् अगले अंक पर मिलती है। इस लिए आशा ही नहीं किन्तु विश्वास है कि अणुव्रत-आन्दोलन देश की अनैतिक स्थिति का अन्त करने में एक व्यापक अनुष्ठान सिद्ध होगा।

पूँजीवाद व साम्यवाद के संघर्ष पर

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन-व्यवहार में एक क्रान्तिकारी अनुष्ठान है। आन्दोलन के नियम कहने में अणुव्रत अर्थात् छोटे व्रत हैं किन्तु इनके पीछे समाज परिशुद्धि का एक विराट् दर्शन है। आज जबकि पूँजीवाद व साम्यवाद का ज्वलन्त संघर्ष है अणुव्रत-दर्शन उस संघर्ष का अपने आप में एक सहज समाधान है। वह साम्यवाद की समतापरक भावना को लेता है किन्तु उसके साथ जुड़ी हिंसा की कड़ी पर सजीव प्रहार करता है। पूँजी समाज के जीवन-यापन का एक माध्यम है यह एक व्यवस्था है पर शोषण व संग्रह जैसी पूँजीवादी दुष्प्रवृत्तियों को अणुव्रत-आन्दोलन एक सीधी चुनौती देता है। अणुव्रतों का दृष्टिकोण है व्यक्ति स्वयं मर्यादित और प्रामाणिक बने। संग्रह व शोषण की प्रवृत्ति से विषमता बढ़ती है। अर्थ का केन्द्रीकरण सर्वहारा समाज में (निम्न वर्ग में) एक क्षोभ पैदा करता है।

अणुव्रत-दर्शन सर्वहारा वर्ग का बोर्जुआ (पूंजीपति) वर्ग पर हमला बोल देने की बात नहीं कहता। वह बोर्जुआ वर्ग से ही चोरबाजारी मिलावट अधिक ब्याज ग्रहण आदि अनैतिक तरीकों से धन-संग्रह न करने की प्रतिज्ञाएं लेने को कहता है। पर वहीं तक उसका कार्य समाप्त नहीं है। वह विशिष्ट अणुव्रती की श्रेणी में आने वाले व्यक्तियों को नैतिक कहे जाने वाले प्रयत्न से भी मर्यादातिरिक्त संग्रह नहीं करने देता। परिणाम यह होता है कि अणुव्रत-दर्शन हिंसा व शोषण के स्थान पर समता व मैत्रीपूर्ण जीवन-व्यवस्था का लक्ष्य रखकर साम्यवाद और पूँजीवाद के संघर्ष पर एक सुलझाव भरी निगाह देता है।

निषेधात्मक शैली

अणुव्रतों की रचना में मुख्यतः निषेधात्मक दृष्टि ही अपनाई गई है। साधारणतया यह बात प्रश्न होकर सामने आ ही जाती है कि केवल निषेध से क्या हो सकता है? जीवन निर्माण के लिए विधि-प्रधान पद्धति की आवश्यकता है किन्तु स्थिति यह है जीवन को मर्यादित बनाने में जितना निषेध सक्षम है उतनी विधि नहीं। निषेध स्वयं मर्यादा है। दूसरी बात मनुष्य

के जीवन में स्वभावतः निषेधात्मकता अधिक है और हेयता का आचरण कम है। इसलिए यह श्रेष्ठ होता है कि हम उसके सामने न करने की सूची उपस्थित करें, न कि करने के कामों की लम्बी फेहरिस्त (तालिका)।

निःश्रेयस् की ओर

आज के इस भौतिकता-प्रधान युग में रोटी व कपड़ा समाज-व्यवस्था व दर्शन का विशेष पहलू बनता जा रहा है। क्षितिज के उस पार कुछ नहीं है यह निष्ठा ही उसका एक बलवान आधार है। इसीलिए ही तो सोचा जाता है हिंसा से या अहिंसा से इच्छित प्रकार की समाज-व्यवस्था सम्पन्न हो किन्तु जिस संस्कृति में क्षितिज के उस पार भी सत् चित् व आनन्द की कल्पना है वहां उक्त प्रकार का जड़वाद उपादेय नहीं हो सकता। वहां व्यक्ति अपने समुचित साध्य को समुचित प्रयत्नों से ही पाना चाहेगा। अध्यात्मवादी देशों की समाज-व्यवस्था ऐहिक और पारलौकिक जीवन के दोनों पहलुओं के सामञ्जस्य पर आधारित रही है। वहां जीवन का परम लक्ष्य निःश्रेयस् की ओर आगे बढ़ना है और ऐहिक समाज-व्यवस्था उसका गौण परिणाम। वहां बताया गया है—हिंसा मत करो असत्य मत बोलो चोरी मत करो संग्रह मत करो इससे तुम्हें निःश्रेयस् मिलेगा। इस प्रकार जब व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता रहेगा, ऐहिक समाज-व्यवस्था अपने आप सहज सुन्दर रूप ले लेगी। जब समाज में हिंसा असत्य संग्रह शोषण आदि दुर्गुण नहीं होंगे तो मैत्री व समानता का उदय अवश्यम्भावी है ही। अणुव्रत आन्दोलन का मूल लक्ष्य व्यक्ति-व्यक्ति को परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना है।

आचार्य श्रीतुलसी

आन्दोलन के प्रवर्तक जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के नवम अधिनायक आचार्यश्री तुलसी हैं। आपका जन्म लाडनूं (राजस्थान) में विक्रम संवत् १९७१ कार्तिक शुक्ला २ को हुआ। आप आरम्भ से ही प्रत्युत्पन्नमति मेधावी नम्रशील व प्रखर कान्तिमान थे। संसार की अन्य आर्य विभूतियों की तरह आपने ११ वर्ष की अल्पावस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण की। यह आपके जीवन के द्वितीय चरण में प्रवेश था। एकादश वर्षीय इस चरणावधि में साधना व ज्ञानार्जन के क्षेत्र में आपने निरुपम सफलता प्राप्त की और बाईस वर्ष की अवस्था में बृहत् तेरापंथ समुदाय के यशस्वी आचार्य बने। इतनी अल्प अवस्था में इतने बड़े समुदाय का कार्यभार सम्भाल लेना इतिहास-पृष्ठों पर अंकित विरली घटनाओं में एक घटना थी। जीवन के इस तृतीय चरण में आपने लगभग ६०० साधु साध्वीजन तथा लाखों अनुयायियों का एक तपस्वी सेनानी के रूप में स्फूर्तिमान सञ्चालन किया। समुदायस्थ शिष्य जनों को प्राचीन व अर्वाचीन

ज्ञान-विज्ञान से समृद्ध कर वाद-प्रवाद से संकुल वर्तमान युग में जन-कल्याण के उपयुक्त बना देना आपका प्रमुख लक्ष्य रहा।

विक्रम संवत् २००५ में आपने ३४ वर्ष की अवस्था काल में अणुव्रत आन्दोलन के रूप में यह पुनीत अनुष्ठान प्रारम्भ किया।

आप संस्कृत प्राकृत व हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं के अधिकारी विद्वान् हैं। राजस्थानी में कालूयशोविलास नामक महाकाव्य आपकी कवित्व शक्ति का अप्रतिम उदाहरण है। संस्कृत में जैनसिद्धान्तदीपिका और भिक्षु न्याय-कर्णिका आदि विस्तृत ग्रन्थ आपके अगाध दर्शन व न्याय सम्बन्धी अनुशीलन के प्रमाण हैं। 'शान्ति के पथ पर' नाम से सामयिक समस्याओं पर दिए गए आपके विचार आपकी बहुमुखी चिन्तनशीलता का परिचय देते हैं। आपके जीवन में कर्मशीलता और विचारशीलता का यथा-समुचित संयोग आपको जन जन का आकर्षण-बिन्दु बना रहा है। अणुव्रत-आन्दोलन की शुरू से अब तक की बहुमुखी सफलता आपकी उक्त विशेषताओं का ही परिणाम है।



लक्ष्य और साधन

किसी भी प्रवृत्ति की सम्पन्नता को परखने के लिए लक्ष्य और साधन का परीक्षण है। हिंसा मनुष्य का सहज धर्म है पर वह साम्राज्य व सत् साधना के मणिकांचनयोग से आभूषित होकर ही सत्प्रवृत्ति का रूप लेती है। निस्संदेह चरणविन्यास जहाँ स्वर्ग उपवन की कोटि में है वहाँ साधन की उदासीनता स्वर्ग और नरक के बीच में एक गहरी खाई है। जीवन का ध्येय शुद्ध साधनों से शुद्ध लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना है। चार प्रचारों के कुहुम में और सूत्रधार की भ्रान्तियों में सहसा मनुष्य दिग्भ्रान्त बनता है और किसी दिव्य-ज्योति व शाश्वत आलोक की अपेक्षा करता है। ऐसी स्थिति में जिस किसी मानव-विभूति को कोई ज्योति से स्फुलिंग मिला है वह उसे सब साधारण के सामने रखे यह उसका सहज धर्म हो जाता है। इसी चिन्तन का प्रेरित परिणाम आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन है। आन्दोलन के लक्ष्य और साधन परम सात्त्विक हैं। उसका अवलोकन मात्र अणुव्रत-आन्दोलन का समग्र देह-दर्शन है। वे हैं —

'जाति वर्ण देश और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मनुष्य मात्र को आत्म-संयम की ओर प्रेरित करना।

'अहिंसा और विश्वशान्ति की भावना का प्रसार करना।

"एकैव मानुषी जातिराचारेण विभज्यते" —मनुष्य जाति एक है और आचार-भेद से वह नाना भागों में विभक्त है। जाति वर्ण और देशकृत भेद काल्पनिक एवं अतात्विक हैं। जाति एक समान आचार-व्यवहार की सूचक है। इससे परे उसमें उच्चावचता की कल्पना कोई मौलिक आधार नहीं रखती। वर्णभेद केवल मनुष्य के रंग पर आधारित है। काले और गोरे के भेद से हीन और महान् की मान्यता मनुष्य की अज्ञान भरी तुच्छ बुद्धि का परिणाम है। देश का ममत्व व उसके नाम पर अन्य देश के प्रति घृणा ग्लानि मनुष्य की संकीर्ण दृष्टि का सूचक है। "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"—उदार चरित वालों के लिए समस्त पृथ्वी ही कुटुम्ब है। नाना धर्म नाना विचार सरणियों पर आधारित हैं और अपनी-अपनी श्रद्धा व निष्ठा के विषय हैं। धर्म के नाम पर स्व और पर की कल्पना पर राग और द्वेष की प्रवृत्ति अवांछनीय है। इन तथ्यों का सार रूप सामने

हुए अणुव्रत उपक्रम बिना किसी भेद भाव के सबके लिए है। आत्म-संयम उसका परम लक्ष्य है जो निःश्रेयस् व सिद्ध बुद्ध अवस्था का स्वयं एक साधन है।

'आत्मा का दमन करने वाला इस लोक और परलोक में सुखी होता है'[1]—इस आर्ष उक्ति पर जब हम गहराई से सोचते हैं तो उससे प्रत्यक्ष और परोक्ष जीवन का स्पष्ट दर्शन मिलता है। आत्म-संयम का पारलौकिक सुखद परिणाम तो निर्विवाद है ही किन्तु आत्म-संयम का यह छोटासा सूत्र वर्तमान व्यष्टि और समष्टि जीवन की आधि-व्याधियों को भी दूर करने वाला है। व्यक्ति-व्यक्ति में आत्म-संयम का विकास हो तो आज के जनजीवन की दुःसाध्य समस्याएं भी अविलम्ब सुसाध्य बनती हैं। इसीलिए आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रतियों के लिए एक प्रगतिमूलक उद्घोष (नारा) दिया—"संयम ही जीवन है"[2]।

आज का संसार हिंसा व अशान्ति के आघातों से उत्पीड़ित है। आज वाणी में अहिंसा और कर्म में हिंसा का साम्राज्य छाया है, इसलिए व्यक्ति गृह-जीवन से अन्तर्देशीय जीवन तक अपने को खोया-खोया सा अनुभव करता है। उसके सामने नाना समस्याएं प्रतिदिन उठती रहती हैं और वह उनका समुचित समाधान नहीं कर पाता। अतः व्यापक रूप से अहिंसा का प्रचार हो और विश्वशान्ति को भंग करने वाली स्वार्थपूर्ण संकीर्ण प्रवृत्तियां व्यापमुखी न हों यह अणुव्रत-आन्दोलन का वास्तविक लक्ष्य है।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है ही कि आज भारतीय जनता का जीवन व्यवहार अनैतिकता की ओर खिसकता जा रहा है। धर्म प्रधान और आर्य कहलाने वाली संस्कृति में पले-पुसे भारतीय आज कर्तव्यहीनता के दुष्प्रवाह में बहे जा रहे हैं। व्यवसायी ग्राहक को ठगता है अधिकारी जनता से अनुचित लाभ उठाने के प्रयत्न में है विद्यार्थी अनुशासन की सीमा को लांघ रहा है उद्योगपति मजदूरों का श्रम अकिञ्चन मूल्य पर खरीदने को उतारू है और मजदूर अधिकारों की मांग के नाम पर उद्योगपतियों पर हावी होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में अनैतिकता की ओर तमिस्रा में सुषुप्त भारतीयों को नैतिक नव जागरण देना अणुव्रत-आन्दोलन का प्रमुख लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनुष्य को अहिंसा सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का धनी बनाना अभीष्ट माना गया है। क्योंकि व्रत बुराइयों से बचने के लिए एक मानसिक बन्धन है। प्रश्न उठता है—मनुष्य

---

१ अप्पा दन्तो सुही होई अस्सिं लोए परत्थ य। उत्तरा० अध्ययन १।
२. संयमः खलु जीवनम्।

जहाँ सामाजिक व राजकीय नाना बन्धनों को तोड़ा जा रहा है वहाँ मानसिक बन्धन कहाँ तक सफल होगा ? समाधान स्पष्ट है—उक्त स्थिति में हृदय से अपनाया गया बन्धन ही एक मात्र उपचार है, इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग हो ही क्या सकता है। व्रत का भारतीय संस्कृति में बहुत ऊँचा स्थान है यह विशेषकर बताने की बात नहीं, क्योंकि भारतीय जन-मानस में व्रत का महत्त्व संस्कारगत ही सदा से रहा है। शिक्षित अशिक्षित व्रतग्रहण करना एक ऊँचा धर्म व पुण्य मानते हैं और व्रत को तोड़ देना महापाप।

अहिंसा की तरह व्रत भी एक आध्यात्मिक तत्त्व है। अहिंसा का प्रयोग राजनैतिक पहलुओं में हुआ और उसके चामत्कारिक परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ अतः जीर्ण समाज-व्यवस्था के सुधार या नवीन जीवन-व्यवस्था के निर्माण में व्रत का उपयोग विधिवत् होकर उतना ही चामत्कारिक हो सकता है।

यद्यपि विधान-रचना में उक्त तथ्यों का व्रती बनाना ही साधन का रूप माना गया है तथापि उन पर आधारित भावना का प्रसार उसके अन्तर्गत आ ही जाता है। व्रत जिस गति से आगे बढ़ते हैं भावना उससे अधिक द्रुत गति से आगे बढ़ती है। व्रतों का विस्तार सहस्रों और लाखों व्यक्तियों तक आंका जा सकता है जबकि भावना का प्रसार करोड़ों तक भी। अत अहिंसा अपरिग्रह आदि की मुक्त भावनाओं को आगे बढ़ाना उद्देश्य सिद्धि के लिए आवश्यक ही है। इसी का परिणाम है कि व्रत प्रसार के साथ-साथ विचार प्रसार के व्यापक उपक्रम भी आन्दोलन के एक प्रमुख अंग माने गए हैं।

"अणुव्रतों को ग्रहण करने वाला अणुव्रती कहलाएगा।

'जीवन-शुद्धि में विश्वास रखने वाले किसी भी धर्म दल जाति, वर्ण और राष्ट्र के स्त्री-पुरुष अणुव्रती हो सकेंगे।

यह संविधान एक समुदाय की संघटना करता है, ऐसा लगता है।

सम्प्रदाय नहीं, साम्प्रदायिक परम्परा बहुधा एक लम्बी अवधि के पश्चात् निष्प्राण होकर रूढ़ बन जाती है यह एक विचार है।

सहज प्रवृत्ति प्रश्न रहता है यदि उक्त विचार को आदर्श मानकर ही मनुष्य चले तो उसके लिए अन्य मार्ग क्या है ? वह कुछ भी न करे ? यदि करना है तो किसी चिरप्रचलित परम्परा को अपनाना है या किसी नई परम्परा का जन्म होना है। कुछ भी न करे तो विश्व चेतन से जड़ हो जाएगा। ऐसी स्थिति में मध्यम मार्ग यही रह जाता है कि मनुष्य सर्वदा जागरूक रहता रहे और सम्भावित दोषों से बचने

के लिए सर्वदा सचेष्ट रहें। अणुव्रत-आन्दोलन और अणुव्रती यह परम्परा भी बनाई नहीं गई, अपितु यह स्वतः एक सत्प्रवृत्ति का परिणाम है। यह स्वाभाविक है कि धर्मनिरपेक्ष व जाति-धर्म के आग्रह-मुक्त वातावरण में एक व अनेक व्यक्ति नैतिकता व आत्म-संयम की सौम्य प्रतिज्ञा लेकर आगे बढ़ें। उनका तो सहज यह है कि विभिन्न आलम्बनों में से किसी एक आलम्बन को चुनें। तदनन्तर स्वतः अणुव्रत-आन्दोलन की रूपरेखा को आलम्बन मानकर आगे बढ़ने वाले परस्पर सहचर हो जाते हैं। यह उनकी पहचान है कि अणुव्रत-आन्दोलन को अपनाते हैं व जीवन-निर्माण की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं इसलिए अणुव्रती हैं। वस्तु किसी भी विचार-सरणि को साध्य या साधन मानकर चलने वालों का एक समुदाय बनना ही है। अणुव्रत-आन्दोलन में भी संगठन को इससे अधिक अपेक्षा नहीं है। वस्तुस्थिति तो यह है कि इसे एक संगठन माना ही न जाए। यह तो जीवन-शुद्धि का एक व्यवहार्य राजमार्ग है जिस पर नाना धर्म व नाना जाति के लोग परस्पर निरपेक्ष चल रहे हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन के इस साधना-क्षेत्र में प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी मार्गदर्शक हैं। व्रत भंग की स्थिति में अणुव्रती उनसे प्रायश्चित्त व पुनरालोचन की विधि पा सकेंगे और नियम-ग्रहण करने में एक पुनीत प्रेरणा। अणुव्रत अनुशासन और आचार्यश्री तुलसी के बीच आध्यात्मिक सम्बन्ध की यही एक कड़ी है।



अहिंसा अणुव्रत

शास्त्रकारों ने गाया—"अहिंसा प्राणी मात्र के लिए कल्याणकर'[1] है।" "अहिंसा प्राणी मात्र के लिए प्रशस्त आचरण[2] बतलाई गई है।" "किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए[3]।" शास्त्रों की बात शास्त्रों तक ही नहीं रही, मनुष्य के जीवन में भी आई है। यदि ऐसा न होता तो परिवार, समाज आदि रूप समष्टि जीवन की कोई स्थिति ही नहीं बनती। एक क्षण के लिए भी मानव-व्यवहार से यदि अहिंसा सर्वांशतः निकल जाए तो मानव जीवन की सारी समष्टियां व्यष्टि में परिणत हो जाएंगी। मानव मानव को खाने के लिए दौड़ेगा और समस्त संसार में एक विप्लव मच जाएगा। अहिंसा ही एक ऐसा सूत्र है जिसमें उलझकर मानव-मन के पिरोए जाकर मानव-समाज रूप एक माला बनी है। फिर भी मनुष्य के जीवन-व्यवहार में हिंसा की प्रबलता है और इसी हेतु उसे प्रति दिन नाना समस्याओं का सामना करना पड़ता है और नाना झगड़े सामने आते हैं। अणुव्रत-भावना है—अहिंसा के विकास का स्रोत मानव-समाज में प्रतिक्षण आगे बढ़ता रहे और हिंसा की मात्रा घटती जाए। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। उसी से यह सब सम्भव है। एक पशु की मौत में दूसरा पशु का फँसना है उसे समझा कर विदा करने का उपाय पशु-समाज में विकसित नहीं है। धूर्तता, चपलता, तीक्ष्णता आदि ही वहाँ अधिकार रक्षा के एक मात्र साधन हैं। मानव ऐसी स्थिति में समझा बुझाकर अहिंसात्मक विधि से ही सहजे सहज अपनी समस्या हल कर लेना चाहता है। जीवन में नाना समस्याएँ हैं, उन्हें अणुव्रती किस प्रकार अहिंसात्मक विधि से हल करता जाए, यह उसकी गवेषणा का इष्ट विषय होना चाहिए।

अहिंसा एक विराट् तत्त्व है। क्षमा मैत्री सहिष्णुता आत्म-संयम, मार्दव विनय अभय आदि उसके नाना अंग हैं। एक एक अंग को परखना और नाना समस्याओं पर उसका दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रयोग करना ही जीवन व्यवहार में अहिंसा अणुव्रत है। अहिंसा की तरह ईर्ष्या द्वेष काम क्रोध

---

१ अहिंसा सब्वभूय खेमंकरी—जैन

२ अहिंसा सब्ब पाणानं अरियोति पवुच्चति—बौद्ध

३ न हिंस्यात् सर्वं भूतानि—वैदिक

मद, माया, लोभ आदि हिंसा के भी नाना अणु हैं जो जीवन-व्यवहार के वायु मण्डल में छाकर मनुष्य के सदय को कुण्ठित ही नहीं, आत्मा से ओझल कर देते हैं और उस राही को आधि-व्याधि की मृगमरीचिका में भटका देते हैं।

अहिंसा मनुष्य को निःश्रेयस् की ओर बढ़ाने वाली तो है ही, इसके साथ-साथ वह उसके वर्तमान जीवन को भी आलोकित करती है। जीवन-व्यवहार का एक भी पहलू ऐसा नहीं जो अहिंसा के आलोक की अपेक्षा न रखता हो, चाहे वह पहलू पारिवारिक हो या अन्तर्राष्ट्रीय। इसीलिए तो आर्ष वाणी में यह उद्घोष निकला—'भगवती' अहिंसा भयभीत के लिए शरण, पक्षियों के लिए गति, प्यासों के लिए जल, क्षुधा-पीड़ित के लिए भोजन, समुद्र तरने के लिए जलपोत, चतुष्पदों के लिए आश्रय-स्थल, रोगी के लिए औषधि, अटवी में भटकने वाले मनुष्य के लिए साथ-संयोग जैसा होता है, उससे भी विशिष्टतर है।[1]

पारिवारिक जीवन में

परिवार से अणुव्रती का समष्टि जीवन आरम्भ होता है। वहाँ उसे माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्र-वधू आदि के बीच अनुशासन मानते हुए और मनवाते हुए चलना पड़ता है। वहाँ यदि वह धैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य व मार्दव आदि गुणों को लेकर चलता है तो उसे मानसिक शान्ति, पारिवारिक जनों का प्रेम, विश्वास व प्रोत्साहन मिलता है और जीवन की गाड़ी सुगमता से चलती रहती है। साथ-साथ क्रोध, मान आदि की अल्पता में निःश्रेयस् का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। इसके बदले जहाँ व्यक्ति आवेश, मद, स्वार्थ, अनीति व अन्याय का आचरण करता है, वहाँ उसे नित नए सवेरे कलह, अशान्ति, अपमान आदि भोगने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ—नौकर यथोचित सेवा नहीं निभा सका या अकस्मात् उससे कोई भूल कर डाली, झट से मालिक का मन क्रोध तथा आवेश से भर जाएगा। वह मूर्ख, बेईमान कहते हुए दो-चार गालियाँ भी दे डालेगा और बन पड़ा तो एक दो चाँटे भी। मन में यह विश्वास हो जाएगा कि इसकी भूल का मैंने सही-सही इलाज कर दिया, किन्तु बहुधा तो उस विश्वास के जमने से पूर्व ही गालियों के बदले गालियाँ और चाँटे के बदले मुक्का उसकी ओर आने लगता है। तत्काल नहीं तो दो-चार प्रसंगों के

---

[1] एसा सा भगवती अहिंसा जा सा भीयाण विव सरणं, पक्खीणं विव गमणं, तिसियाणं विव सलिलं, खुहियाणं विव असणं, समुद्दमज्झे व पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहियाणं व ओसहिबलं, अडवीमज्झे विसत्थगमणं, एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा।

अहिंसा अणुव्रत

शास्त्रकारों ने गाया—"अहिंसा प्राणी मात्र के लिए कल्याणकर' है।"[1] 'अहिंसा प्राणी मात्र के लिए प्रशस्त आचरण' घोषित की गई है।[2] "किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए"[3]। शास्त्रों की बात शास्त्रों तक ही नहीं रही मनुष्य के जीवन में भी आई है। यदि ऐसा न होता तो परिवार समाज आदि सब समष्टि जीवन की कोई स्थिति ही नहीं बनती। एक क्षण के लिए भी मानव-व्यवहार में यदि अहिंसा सर्वथा निकल जाए तो मानव जीवन की सारी समष्टियां व्यष्टि में परिणत हो जायेंगी। मानव मानव को खाने के लिए दौड़ेगा और समस्त संसार में एक विप्लव मच जाएगा। अहिंसा ही एक ऐसा सूत्र है जिसमें समस्त मानव-मनके पिरोए जाकर मानव-समाज रूप एक माला बनी है। फिर भी मनुष्य के जीवन-व्यवहार में हिंसा की प्रबलता है और इसी हेतु उसे नाना विध नाना समस्याओं का सामना करना पड़ता है और नाना आतङ्क भोगने पड़ते हैं। अणुव्रत भावना है—अहिंसा के विकास का स्रोत मानव-समाज में अविरत आगे बढ़ता रहे और हिंसा की मात्रा घटती जाए। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। उसी में यह सब सम्भव है। एक पशु यदि खेत में दूसरा पशु आ घुसता है उसे समझा कर विदा करने का उपाय पशु-समाज में विकसित नहीं है। गुर्राना झपटना नोचना आदि ही वहाँ अधिकार रक्षा के एक मात्र साधन हैं। मानव ऐसी स्थिति में समझ बूझकर अहिंसात्मक विधि से ही पहले पहल अपनी समस्या हल कर लेना चाहता है। जीवन में नाना समस्याएँ हैं उन्हें अणुव्रती किस प्रकार अहिंसात्मक विधि से हल करता जाए, यह उसकी गवेषणा का इष्ट विषय होना चाहिए।

अहिंसा एक विराट् तत्त्व है। क्षमा मैत्री सहिष्णुता आत्म-संयम मार्दव विनय अभय आदि उसके नाना अङ्ग हैं। एक एक अङ्ग को परखना और नाना समस्याओं पर उनका दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रयोग करना ही जीवन व्यवहार में अहिंसा अणुव्रत है। अहिंसा की तरह ईर्ष्या, द्वेष काम क्रोध

---

1 अहिंसा सव्वभूय खेमंकरी—जैन

2 अहिंसा सब्ब पाणानं अरियोति पवुच्चति—बौद्ध

3 न हिंस्यात् सर्व भूतानि—वैदिक

मद, माया, लोभ आदि हिंसा के भी नाना अणु हैं, जो जीवन-व्यवहार के वायु-मण्डल में छाकर मनुष्य के लक्ष्य को धूमिल ही नहीं, आँखों से ओझल कर देते हैं और उस राही को आधि-व्याधि की भूलभुलैया में भटका देते हैं।

पारिवारिक जीवन में

अहिंसा मनुष्य को निश्रेयस् की ओर बढ़ाने वाला तो है ही, इसके साथ-साथ वह उसके वर्तमान जीवन को भी प्रभावित करती है। जीवन-व्यवहार का एक भी पहलू ऐसा नहीं जो अहिंसा के आलोक की अपेक्षा न रखता हो, चाहे वह पहलू पारिवारिक हो या राष्ट्रीय। इसीलिए तो आर्ष वाणी में यह उद्घोष निकला—"भगवती[1] अहिंसा भयभीत के लिए शरण, पक्षियों के लिए गति, प्यासों के लिए जल, क्षुधा-पीड़ित के लिए भोजन, समुद्र तरने के लिए जलपोत, चतुष्पदों के लिए आश्रय-स्थल, रोगी के लिए औषधि, अटवी में भटकने वाले मनुष्य के लिए सार्थ-संगम जैसा होता है, उससे भी विशिष्टतर है।

परिवार में अणुव्रती का समष्टि जीवन प्रारम्भ होता है। वहाँ उसे माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्र-वधू आदि के बीच अनुशासन मानकर और समझौते कर चलना पड़ता है। वहाँ यदि वह धैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य व आर्जव आदि गुणों को लेकर चलता है तो उसे आत्मिक शान्ति, पारिवारिक जनों का प्रेम, विश्वास व प्रोत्साहन मिलता है और जीवन की गाड़ी सुगमता से चलती रहती है। साथ-साथ क्रोध, मान आदि की अल्पता में निश्रेयस् का लाभ भी सधता हो जाता है। इसके विपरीत जहाँ व्यक्ति आवेश, अहं, स्वार्थ, अनीति व अन्याय का आचरण करता है, वहाँ उसे नित नए झगड़े, कलह, आक्रोश, अपमान आदि भोगने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ—नौकर यथोचित सेवा नहीं दे सका या अकस्मात् उससे कोई भूल कर डाली, घर के मालिक का मन क्रोध तथा आवेश से भर जाएगा। वह मूर्ख, बेईमान कहते हुए दो-चार गालियाँ भी दे डालेगा और बस चला तो एक-दो चाँटे भी। मन में यह विश्वास हो जाएगा कि इसकी भूल का मैंने सही-सही इलाज कर दिया, किन्तु बहुधा तो इस विश्वास के बनने से पूर्व ही गालियों के बदले गालियाँ और चाँटे के बदले मुक्का उसकी ओर आने लगता है। तत्काल नहीं तो दो-चार प्रसंगों के

---

1 ऐसा सा भगवती अहिंसा जा सा भियाणंविव सरणं, पक्खीणंविव गमणं, तिसियाणंविव सलिलं, खुहियाणंविव असणं, समुद्दमज्झे व पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्ठियाणं व ओसहिबलं, अडविमज्झे विसत्थगमणं, एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा।

बाद तो प्रायः कोई दुष्परिणाम सामने आ ही जाता है। ऐसी घटनाएँ बहुत देखी जाती हैं कि बड़ा सम्मान्य व्यक्ति अहंवश छोटे आदमियों पर आवेश में आकर प्रहार कर देता है। उस समय वह यह नहीं सोचता कि मेरी तरह छोटे कहे जाने वाले आदमी को भी आवेश आ सकता है। लेकिन ज्यों ही वह छोटा आदमी चांटा या जूता लगा देता है तब उसे अपने आवेश के लाभालाभ का भान होता है। अन्तर से वह स्वयं पश्चात्ताप करता है कि मेरे इस चांटे खाकर भी उसने कुछ नहीं खोया और मैंने बाजार में या बहुत सारे लोगों के बीच एक ही जूता खाकर अपनी स्थिति को नष्ट (Position loose) कर दिया है। दूसरी ओर उसके साथी व सगे सम्बन्धी आकर उसकी बुद्धि का अपमान करते हुए शिक्षा देते हैं—"बड़े आदमी को कभी छोटे आदमी के बराबर नहीं होना चाहिए।"

दूसरा पहलू अहिंसा का है जिसके प्रयोग की बात एकाएक मनुष्य सोचता ही नहीं। साधारणतया यह एक धारणा बन गई है कि अहिंसा केवल कायरों का मोटी धार वाला शस्त्र है या केवल धर्मस्थानों में बैठकर ही चार घड़ी के लिए अपनाया जा सकता है। पर बात उलटी है। जीवन-व्यवहार के प्रसंगों पर भी हिंसा की अपेक्षा अहिंसा अधिक सफल है। मानो कि कमरे के बीच स्याही से भरी दवात पड़ी है। कोई व्यक्ति अचानक आया। दवात के ठोकर लगी। स्याही इधर-उधर पुस्तकों व कपड़ों पर फैल गई। उस समय यदि गुस्से में आकर कोई उस व्यक्ति को कहता है—"अन्धा होकर चलता है? तुझे इतनी बड़ी दवात भी नहीं दीखती? कैसा मूर्ख है।" तो अवश्य यही उत्तर मिलेगा—"मैं क्या मूर्ख हूँ? मूर्ख है दवात को यों ही बीच में रख देने वाला। यह भी कोई दवात रखने का स्थान है?" यदि उस परिस्थिति में शान्ति एवं मधुरता से स्याही के बिखरते ही यह कहा जाता है—"अहा! किसने भूल से दवात बीच में रख दी" तो सामने वाला व्यक्ति कहता है—"दवात रखने-वाले की ही क्या गलती? देखकर तो मुझे भी चलना चाहिए था।" अस्तु, अहिंसा एक ऐसा सुन्दर मनोवैज्ञानिक प्रयोग होता है जिसे काम में लेकर सास बहू को, पिता पुत्र को तथा भाई अपने भाई को बिना किसी कटुता के ही आत्म-निरीक्षण की भूमि पर ला सकता है।

यह शास्त्र-वाणी सत्य है—'अपने सुख-दुःख का कर्ता व्यक्ति स्वयं है।'[1] "अपने असंयम के कारण व्यक्ति दुःखी होता है और अपने संयम से

---

१ अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य

मुझे वह मंत्र तो बता दीजिए। नहीं तो वहाँ मेरा काम कैसे चलेगा? पिता ने उसे नमस्कार मंत्र सिखलाया और कहा—इसकी साधना यह है कि कोई तुम्हारे पर क्रोध करे, तुम्हें गाली दे या भला-बुरा कहे तो चुप रहकर मन ही मन इस मन्त्र का जाप करती रहना। पर याद रखना एक बार भी यदि यह साधना भंग हुई तो पिछली साधना का सारा फल नष्ट हो जाएगा।

विदा कराए बहू घर आ गई। सब लोग टेढ़ी नजरों से उसे देखने लगे। पिछली बातों को याद कर कुछ उपहास करते थे तो कुछ ताना मारते थे। पर वह अपनी मंत्र-साधना में तल्लीन रहती और अपना कर्तव्य निभाती जाती। तीसरे ही दिन की बात होगी, उसकी ननद, देवरानी व जेठानी उसके साथ बड़ा अपमानजनक व्यवहार कर रही थीं तो सास ने उन सबको डाँटा और कहा—जब यह तीन दिनों से किसी को कुछ भी बुरा भला नहीं कह रही है तब तुम सब इसके पीछे पड़ रही हो, यह बहुत बुरी बात है। मैं ऐसा सहन नहीं करूँगी। यह सुनकर बहू को बहुत आश्चर्य हुआ कि सास मेरा पक्ष लेती है। क्योंकि उसके जीवन में ऐसा देखने का यह पहला ही अवसर था। उसे [illegible] स्पष्ट लगने लगा कि मेरे मन्त्र का प्रभाव अब शुरू हो गया है। दिन बीते। महीने बीते। बहू सबको प्यारी लगने लगी। घर का वातावरण शान्त हो गया और घर में प्रेम की अविरल धारा बहने लगी। छः महीने के बाद पिता पुत्र लड़की को लेने आया तो श्वसुराल वालों ने कहा—इतनी जल्दी आप लेने के लिए न आया करें। बहू के बिना हमारे घर में काम नहीं चलता। आज तो आप ले जाइए पर वापिस जल्दी पहुँचा देना।

पिता ने घर आकर लड़की से पूछा—बेटी, मन्त्र कैसा रहा? लड़की—मन्त्र क्या था जादू ही था। छः महीने की क्या बात, केवल तीन महीनों में ही घर वालों पर मेरा प्रभाव छा गया। अब तो मुझे मेरे सास-श्वसुर देवी देवता जैसे लगते हैं और पति परमेश्वर जैसा।"

यह है पारिवारिक जीवन-व्यवहार में क्षमा व सहिष्णुता के प्रयोग का परिणाम। अणुव्रती का और आत्म-संयम का होना चाहिए। इससे परस्पर के साथ-साथ प्रत्यक्ष भी अपेक्षा।

सामाजिक एवं सार्वजनिक क्षेत्र में

जब अणुव्रती पारिवारिक जीवन से सामाजिक एवं सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करता है तब भी उसकी सफलता की कुञ्जी अहिंसा ही रहती है। विचार-भेद के वातावरण में भी शान्ति, धैर्य व सहिष्णुता को अपना कर ही वह आगे बढ़ सकता है। इस क्षेत्र में भी उन समस्याओं की राह खोजनी चाहिए।

को ऊँचा उठाने वाले होते हैं। अहंवाद तो संघर्षों का मूल है ही। जीवन में जितने ही असामञ्जस्य खड़े होते हैं वे सब अहंवाद (मैं वाद) के परिणाम हैं। अहंवाद की त्रिपदी ऐसे बनती है—

१ बुद्धिमान् कौन है? —जो मेरी तरह सोचता है।
२ मूर्ख कौन है? —जिसके विचार मेरे से नहीं मिलते।
३ आचरण क्या है? —जिस पर मैं चलता हूँ।

दूसरे किसी व्यक्ति को परखने का हर एक व्यक्ति के पास अपना अपना यही मानदण्ड है। इससे नापतोल कर किसी व्यक्ति के विषय में हर एक अपनी राय देता है। यहां तक तो फिर भी एक मनोवैज्ञानिक वास्त विकता है, क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई हेय और उपादेय को समझने का व्यावहारिक मानदण्ड बनता ही नहीं। पर उलझन वहां पैदा होती है जहां वह अपने अहं को आगे बढ़ाकर दूसरों से भी अपनी राह पर चलने का आग्रह करता है। बात ठीक है यदि सारे लोग वैसे ही चलने लगें तो कोई झगड़ा शेष नहीं रहता। पुत्र यदि पिता की इच्छानुसार करे समाज के सब कार्य कर्ता यदि किसी एक के चाहने पर ही चलते रहें सब राष्ट्र यदि दूसरे राष्ट्र को उदाहरणार्थ रूस और अमेरिका में से कोई एक दूसरे की सारी शर्तें मान ले तो कोई असमञ्जसता पैदा नहीं होती। पर यह कैसे हो? जैसे एक व्यक्ति चाहता है वैसे दूसरा व्यक्ति क्यों न चाहे कि सब लोग वैसे चलें जैसे मैं चाहता हूँ। मानसिक चिन्तन की यही स्वाभाविकता जीवन-व्यवहार में सन्तुलन लाने के लिए समन्वय व समझौते की बात लाती है। एक दूसरे का सहयोग कायम रखने के लिए दोनों को एक दूसरे के सामने झुकना पड़ता है। नहीं तो वह समष्टि व्यष्टि का मार्ग पकड़ लेती है। जो जितना बड़ा दायित्व रखता है उसे उतने ही अधिक समझौते करने पड़ते हैं। अर्थात् उसे उतनी ही अधिक गम खानी पड़ती है। इस प्रकार अणुव्रती यदि सामाजिक व सार्वजनिक क्षेत्र में समन्वय एवं समझौते के आधार पर आगे बढ़ते रहें तो पग-पग पर आने वाली समस्याओं से मुक्त होंगे और जिन हिंसा-मूलक भाव नाओं को वे अपने जीवन में अनिवार्य मान बैठे हैं उन्हें अनावश्यक मानने लगेंगे। परिणाम स्वरूप वे लौकिक और पारलौकिक जीवन के दोनों पक्ष 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के समीप होंगे।

अन्तर्देशीय वातावरण में

हिंसा का ज्वलन्त स्वरूप विभिन्न देशों के पारस्परिक युद्धों और महायुद्धों में प्रकट होता है। वहाँ निर्दयता साहस का रूप लेती है। क्रूरता नीति का रूप लेती है और मानव का व्यवहार हिंस्र-पशुओं की प्रवृत्ति को भी पीछे धकेल देता

है। लोग कहते हैं—मानव-जीवन के इस पहलू में अहिंसा क्या कर सकती है? किन्तु आज तो विश्व की घटनाएं स्वयं इस प्रकार के प्रश्नों का मुँह तोड़ रही हैं। जहाँ हिंसा से कुछ नहीं हुआ, वहाँ अहिंसा ने आकर सामञ्जस्य स्थापित किया। दक्षिणी और उत्तरी कोरिया से उभरने वाले महायुद्धों के आसारों का शान्त होना, हिन्दचीन की लम्बी लड़ाई का अन्त होना व चालीस करोड़ भारतीय जनता का अपने देश को विदेशी सत्ता से मुक्त कर लेना इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी अहिंसा का स्थान प्रथम है और ऐसा लगता है कि इतिहास के पृष्ठों में अहिंसा की विजय का यह स्वर्णिम युग होगा। आज धीरे धीरे तोपों और तीरों का स्थान सह अस्तित्व, अनाक्रमण आदि पंचशील ले रहे हैं। कौन नहीं जानता, अब तक मानव-जाति की असीम शक्ति, असीम धन और असीम बुद्धि सैनिक शिक्षण व अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में लग रही है। वही शक्ति यदि अहिंसा के विकास की ओर मुड़ जाती है तो अहिंसा की विजय में और चार चाँद लग जाते हैं।

संकल्पी हिंसा

भारतीय विचारधारा के अनुसार मुख्यतः दो प्रकार के प्राणी माने गए हैं—स्थावर और जंगम। स्थावर जिनके एक इन्द्रिय होती है। स्वयं चल-फिर नहीं सकते। जैसे—पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि। दो इन्द्रियों से लेकर पाँच इन्द्रियों तक के प्राणी जंगम हैं। ये स्वयं गतिशील होते हैं। द्वीन्द्रिय—लट, सीप, कृमि आदि हैं। त्रीन्द्रिय—चींटी, मकोड़ा, जूं आदि। चतुरिन्द्रिय—मक्खी, मच्छर, टिड्डी, बिच्छू आदि। पंचेन्द्रिय—साँप, भैंस, मछली, गाय, मोर, कबूतर, मनुष्य आदि हैं। अणुव्रती के लिए चलने फिरने वाले निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक की जाने वाली हिंसा वर्जित है।

सामान्यतः हिंसा तीन कारणों से होती है—समारम्भ, विरोध और संकल्प।

समारम्भ—जहाँ व्यक्ति का ध्येय किसी जंगम (त्रस) प्राणी को मारने का नहीं होता, किन्तु कृषि, वाणिज्य, गृह-निर्माण, गमनागमन आदि समारम्भ में अनायास द्वीन्द्रिय आदि प्राणियों की हिंसा हो जाती है।

विरोध—जहाँ व्यक्ति अपने पर आक्रमण करने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पर प्रहार करता है।

संकल्प—अनिश्चित प्रयोजन व निष्प्रयोजन व्यक्ति स्वयं आक्रान्ता होकर संकल्पपूर्वक मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की हिंसा करे।

यद्यपि अणुव्रत-आन्दोलन संकल्पजा हिंसा का ही विशेष निषेध करता है, तथापि उक्त प्रकार की अन्यान्य हिंसाओं से बचना भी अणुव्रती का आदर्श

है। सांप बिच्छू आदि जहरीले जानवरों को लोग घातक समझकर देखते ही मार देने का प्रयत्न करते हैं। बहुत सारे लोग उन्हें पकड़ कर किसी दूर एकान्त स्थान में छोड़ देते हैं। अणुव्रती पहले प्रकार से तो अवश्य बचे।

टिड्डी, बन्दर व कुत्तों की हिंसा

बन्दर मोर हिरण आदि जानवरों को लोग खेती के विध्वंसक समझ कर मारने और मरवाने का प्रयत्न करते हैं। अणुव्रती एक अहिंसा-निष्ठ प्राणी है। वह यह मानते हुए—'अपना जीवन सबको प्रिय है'[1] इस प्रकार की हिंसा से बचे।

टिड्डी मारने का भी आजकल एक ज्वलन्त प्रश्न है। टिड्डियाँ खेती का सर्वनाश करती हैं, अतः उनकी हिंसा संकल्पजा न होकर विरोधजा है ऐसी भी एक दृष्टि है। राजकीय व्यवस्थाओं से भी कभी कभी सर्वसाधारण जनता को टिड्डी मारने व मरवाने को बाध्य किया जाता है। ऐसी स्थिति में अणुव्रती क्या करे, यह एक प्रश्न है। अणुव्रती साधना के मार्ग पर है। उसका प्रयत्न यथासाध्य हिंसा से बचना होता है। उक्त प्रकार की हिंसा संकल्पजा है या विरोधजा इस विचार को छोड़ कर भी अणुव्रती का आदर्श यही होना चाहिए कि वह तथोक्त हिंसा से बचने के लिए सचेष्ट रहे।

शहरों में कुत्तों को मरवा डालना भी नगरपालिकाओं ने सुधार की दिशा में हो सकने वाला पहला कार्य मान लिया है। स्थिति यह है 'मानव महान्' के इस युग में मनुष्य की सुख-सुविधा में रोड़ा बनने वाले सभी प्राणी जीवन के किनारे पर खड़े हैं। आज का भौतिकवादी मनुष्य जहाँ कम बसता है वहाँ ऐसे प्राणियों को मार देने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग सोचता ही नहीं ऐसा लगता है। हो सकता है कुत्ते शहरी जीवन की व्यवस्था में कुछ गड़बड़ी पैदा करने का अपराध करते हैं किन्तु सड़कों पर चलते हृष्टपुष्ट कुत्तों को जहरीला खाद्य जब नगरपालिकाओं के कर्मचारी डालते हैं और कुत्ते उन्हें खाकर अपने जीवन की सारी शक्ति केवल दो चार छटपटाहट में पूरी करते हैं यह दृश्य देखने और सुनने वाले लोगों को रोमाञ्चित करता हुआ अनिर्वचनीय व्याकुलता में डाल देता है। अणुव्रती कभी कभी पूछा करते हैं नगरपालिका के सदस्य व अध्यक्ष होने के नाते हम ऐसी व्यवस्थाओं के विषय में क्या करें? उत्तर स्पष्ट है—उक्त प्रकार के कार्यों के लिए कभी भी मत दान न करें।

घरेलू वातावरण में भी अणुव्रतियों का समारम्भ हिंसाओं से बचना

---

1 सव्वेसिं जीवियं पियम्।

आवश्यक है। बहुत सारी बहिनें सवेरे उठते ही बिना कुछ देखे चूल्हा जला डालती हैं। ऐसी असावधानी में बहुत बार त्रस प्राणियों की निरर्थक हिंसा हो जाती है। बहुधा घी तेल अचार आदि के बर्तन लोग खुले छोड़ देते हैं। उनसे अपने भी तेल अचार आदि के साथ साथ बहुत सारे त्रस प्राणियों का नाश होता है। जहाँ बहुत सारा अनाज एक साथ संग्रहीत कर असावधानी से रखा जाता है उसमें अगणित घुन इल्ली लट आदि पैदा हो जाते हैं। उसी धान को बिना कुछ देखे चक्की में पीसने के लिए दे दिया जाता है तो वहाँ कितनी निर्मम हिंसा होती है। अस्तु, इन्हीं असावधानी से यूँ खटमल चींटी मच्छर आदि पैदा किए जाते हैं और फिर उनकी हिंसा की अनिवार्यता अनुभव करते हैं। यह अहिंसा की साधना का मार्ग नहीं है। अणुव्रती को विवेक से अहिंसा के पथ पर बढ़ना है अतः वह उपयोग रखे कि मेरी असावधानी से न तो उक्त प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हो और न मैं उनकी हिंसा का भागी बनूँ।

आत्म-हत्या

सामान्यतः हर एक व्यक्ति का जीवन संघर्ष सम्पन्न होता ही है। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसके जीवन में ज्वार भाटे की उथल-पुथल कभी भी नहीं आती हो। इसलिए महाकवि कालिदास ने कहा था— 'जीवन' की दशा रथ चक्र की तरह ऊपर और नीचे होती ही रहती है।[1] किसने जीवन में सुख ही सुख देखा और किसने दुःख ही दुःख। इसलिए मनुष्य को धैर्य और संयम के साथ जीवन का कंटकिल मार्ग पार करना पड़ता है। उन संघर्षों को न सह सकने के कारण मनुष्य मरने की बात सोच लेता है और कभी कभी अस्वाभाविक प्रयत्न से अपने आप मर भी जाता है। उसे आत्म-हत्या कहते हैं। विष खा लेना, पानी में कूद पड़ना, ऊँची इमारत से गिर पड़ना व रेल की पटरी पर आ जाना आदि आत्म-हत्या के नाना प्रकार हैं। आत्म-हत्या के तरीकों की तरह आत्म-हत्या के कारण भी स्पष्ट हैं—सट्टे आदि में धन खो देना, गृह-कलह का उग्र रूप बनना, किसी के प्रेम तथा मोह में आसक्त होना और इस युग में बना हुआ नया कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाना आदि।

कुछ व्यक्ति कहा करते हैं "मैं आत्म हत्या नहीं करूँगा" इस प्रकार के नियम का कोई महत्त्व नहीं है। मरने की स्थिति पर पहुँचा हुआ व्यक्ति क्या कभी अपने नियम की बात याद करेगा ? इसमें तो कोई दो मत नहीं

---

1 नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ॥

होगा—इस प्रकार संकल्प करना व्यक्ति को आत्म-बल देता है। नियम करते समय अवश्य उसके हृदय में ऐसा संस्कार जमता है कि मैं किसी भी कठिन परिस्थिति में आत्म-हत्या तो नहीं करूँगा। यह संस्कार व्यक्ति को आत्म-हत्या करने की स्थिति तक पहुँचने से पहले ही अवश्य रोकेगा। आत्म हत्या की ठान लेने के पश्चात् भी केवल पिछली प्रतिज्ञा को याद कर वह आत्म-हत्या करते करते बचा ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं। इसलिए नियम की उपयोगिता अक्षुण्ण है।

कुछ लोग इस विषय में यह भी कहा करते हैं अपने आप कौन मरता है ? जीना सबको प्रिय है आदमी सबसे अधिक चिन्ता अपने जीवन की रखता है। धन भी उसे प्रिय है पर जब डाकू पिस्तौल तानकर तिजोरी की कुञ्जी मांगता है तब कोई भी व्यक्ति प्राण-रक्षा के हेतु डाकू के कथनानुसार कुञ्जी उसे संभलाता है और अपना सब धन खोकर भी प्राणों की रक्षा करता है। ऐसी स्थिति में आत्म-हत्या नहीं करूँगा इस प्रकार के व्रत-ग्रहण का क्या मतलब ?

यह तर्क ठीक है कि धन से भी प्राण अधिक प्रिय होते हैं, पर निराशा अपमान आदि ऐसी स्थितियां हैं जो बहुत बार प्राणों के महत्त्व पर भी छा जाती हैं। जापान के लोग इस विषय में बहुत आगे हैं। वहाँ निन्दा तिरस्कार आदि कारणों से "हरिकिरी" (आत्म-हत्या) कर लेना श्रेयस्कर समझा जाता है। वहां की राजकीय व्यवस्था में भी यह अपराध नहीं माना जाता है और न धर्म-शास्त्रों में भी पाप माना जाता है। वहां आत्म-हत्याएं बहुत होती हैं। भारतवर्ष में भी यह दैन्य स्थिति बढ़ती ही पाई जाती है। बम्बई विश्वविद्यालय के भवन में रहे उच्चतर घंटाघर पर किसी विद्यार्थी को चढ़ने नहीं दिया जाता क्योंकि परीक्षा का असफल परिणाम सुनते ही वहां से कुछ विद्यार्थी आत्म-हत्या कर चुके हैं। बम्बई सरकार को परीक्षा परिणाम प्रकाशित करने के दिन समुद्र के किनारे रेल की पटरियों व तथा प्रकार के अन्य स्थानों पर पुलिस की विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। दिल्ली में कुतुबमीनार पर किसी अकेले आदमी को चढ़ने नहीं दिया जाता क्योंकि वहां अब तक अनेकों आत्म हत्याएं हो चुकी हैं। केवल उत्तरप्रदेश में सन् १९५८ में १०८०८ आत्म-हत्याएं सरकार की जानकारी में आई हैं। सौराष्ट्र के तत्कालीन मुख्य मन्त्री ने बढ़ती हुई आत्म-हत्याओं से घबड़ाकर इस सम्बन्ध में एक विशेष समिति नियुक्त की थी। वहां ६ महीनों में २८२ महिलाओं ने आत्म-हत्याएं की ऐसा सूचित किया गया है[1]। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है जन-जन में

1. नवभारत टाइम्स (बम्बई)

वे चाहें तो किसी भी प्रान्त व देश में शासन-व्यवस्था को हिला देने वाली हल चल भी पैदा कर सकते हैं किन्तु यह मानकर चलना चाहिए कि हमारा संगठन हमारे सामुदायिक जीवन विकास के लिए है न कि देश में विक्षोभ पैदा करने के लिए।

विद्यार्थी व राजनीति

विद्यार्थियों की हलचलों का एक कारण यह भी है कि वे किसी दल गत राजनीति में पड़कर ही जब तब उत्पात मचाने पर उतारू हो जाते हैं। सक्रिय राजनीति में भाग लेना विद्यार्थी जीवन का ध्येय नहीं है। राजनीति में ध्यान बँट जाने से वे विद्याध्ययन में आगे नहीं बढ़ सकते जो कि उनके जीवन का सही ध्येय है। राजनीति में भाग लेकर भी तोड़ फोड़ की सीमा तक पहुँच जाना यह तो वैधानिक अपराध भी है जिसमें फँसकर बहुधा विद्यार्थी सदा के लिए अपनी मंजिल को छोड़ कर इधर उधर भटक जाते हैं।

तोड़-फोड़ व मजदूर

तोड़-फोड़ की बात विद्यार्थियों की तरह मजदूरों से भी प्रारम्भ होती है। पूंजीपतियों के साथ उनका जीवन का घनीभूत स्वार्थ जुड़ा रहता है। उनका संघर्ष विद्यार्थियों की तरह केवल भावावेश नहीं होता। वहाँ उनके जीवन की मूलभूत कड़ियों पर पूंजीपतियों के कठोर प्रहार होते रहते हैं। वे शोषण की निरन्तर वेदना से व्याकुल होकर छटपटाते रहते हैं। उनके शोषित कलेवरों की समवेत शक्ति जब केन्द्रित होकर फूट पड़ती है तब हत्या व तोड़-फोड़ के लिए वे उठ खड़े होते हैं। पर अणुव्रत जीवन-दर्शन के अनुसार हिंसा व तोड़-फोड़ का मार्ग उनके लिए भी उतना ही अप्रशस्त है जितना विद्यार्थियों के लिए। हिंसा किसी समस्या का अन्त नहीं कर देती प्रत्युत प्रतिहिंसा का और पथ कर देती है। इससे तो समस्या और जटिल होती है। उद्योगपतियों द्वारा होने वाले शोषण में पहले केवल अर्थ-संग्रह ही हेतु था अब उसमें प्रतिहिंसा व विद्वेष और मिल जाते हैं। हिंसा व उत्तेजना के साथ साथ वे भी उसी मात्रा में बढ़ते ही जाएंगे। समस्या सुलझने के बदले और जटिल होती जाएगी। उसमें किसी भी पक्ष का हित अपेक्षा यह सोचा ही नहीं जा सकता।

प्रश्न रहता है बेचारे मजदूर करें क्या? पहली बात तो यह है कि अणुव्रत-आन्दोलन जैसे अहिंसा की बात मजदूरों से कहता है वैसे ही अशोषण की बात उद्योगपतियों से भी। उसका पक्ष न्याय अशोषण व अहिंसा का है न कि मजदूरों व पूंजीपतियों का। उसकी रूपरेखा में जितने नियम मजदूरों द्वारा होने वाली अनैतिकताओं के लिए हैं उतने ही नियम पूंजीपतियों द्वारा होने वाली अनैतिकताओं के लिए भी हैं। इस समस्या पर अणुव्रत

दृष्टि यही है कि अहिंसा व प्रेम के आधार पर दोनों पक्षों के असामञ्जस्य दूर होते रहें और समन्वय और मैत्री की भावना बढ़ती रहे। उक्त कथन का यह तात्पर्य नहीं कि मजदूर अपने उचित अधिकारों की माँग व उसकी पूर्ति के हेतु नैतिक प्रयत्न भी न करें। उसकी मर्यादा तो यहीं तक है कि मजदूर वर्ग, असहिष्णु व आवावेशी बनकर तोड़-फोड़ व रक्त क्रान्ति के लिए प्रस्तुत न हों। इस युग में अहिंसा ने ही जब बड़ी-बड़ी समस्याएं सबके सामने हल कर दी हैं तो रक्त क्रान्ति का अमानवीय मार्ग क्यों न अपनाए।

देश में तोड़-फोड़ की और भी अनेक प्रसंगों पर सामूहिक घटनाएं होती रहती है। मनोभावना के प्रतिकूल किसी कानून का बनना प्रान्त भाषा जाति धर्म आदि हेतुओं से किसी मत-भेद का खड़ा होना आदि उसके अनेक कारण हैं। जहाँ तक पुलिस व जनता के झगड़े का प्रश्न है अणुव्रती सहज ही अपने आपको ऐसे झगड़ों में भाग लेने से बचा सकता है परन्तु कई झगड़े जाति धर्म आदि को लेकर जनता-जनता के बीच खड़े हो जाते हैं जैसे कि हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच होते रहे हैं। वैसी स्थिति में अणुव्रती क्या करे यह एक प्रश्न है। क्योंकि एक ओर उसे तोड़-फोड़ व हत्यामूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेना है और दूसरी ओर आक्रमण प्रत्याक्रमण के चक्र चल रहे हैं। अपनी जाति धर्म व मुहल्ले के लोग उसे साथ होने को बाध्य करते हैं। उस समाज में रहते हुए वह अपने आपको यदि किसी प्रकार से भी सहयोगी नहीं बनाता है तो अपने वर्ग के लोग उसे गद्दार मानते हैं। इसका समाधान यही है जहाँ तक अपनी तथा अपने धर्म की रक्षा का सम्बन्ध है उसे उस हेतु से अपने दल के साथ जा खड़ा होना पड़ता है वह तो नियम की भावना के अन्तर्गत आता ही नहीं। जहाँ अपना धर्म ही आक्रान्ता होता है वहाँ अणुव्रती को उसमें भागभूत नहीं होना चाहिए। बात रह जाती है प्रतिशोध की कि अमुक स्थान पर हमारे वर्ग के लोगों को प्रतिपक्षियों ने मारा है, उसके बदले हम यहाँ के निरपराधी लोगों को भी मारें क्योंकि वे उसी जाति व धर्म के हैं। यह घृणित मनोवृत्ति है। इसमें हिंसा की ज्वाला बढ़ती ही जाती है और एक विप्लव फैल जाता है। ऐसे अवसरों पर जनता में धैर्य एवं विवेक को जगाने की आवश्यकता रहती है इस विश्वास पर अणुव्रती अपने जीवन-व्यवहार को समुन्नत बनाने का प्रयत्न करें।

अस्पृश्यता

अस्पृश्यता का आधार जाति है। जातिवाद स्वयं निर्मूल तथा अतात्विक है। जाति का अर्थ है—समानता। उस समानता के आधार पर पशु जाति से मानव-जाति पृथक् हुई। प्राणी वर्ग में मनुष्य तथा पशु दोनों जातियों का समावेश है और प्राणियों में मनुष्य

भूतकाल के विकट अनुभव

एक युग था जिसमें सत्यासत्य के निर्णय के लिए विभिन्न धर्मों में शास्त्रार्थ हुआ करते थे। उसका मौलिक दृष्टिकोण तो यही होगा कि "वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः" अर्थात् वाद-विवाद से ज्ञान वृद्धि होती है किन्तु आगे चलकर इस प्रवृत्ति से विभिन्न धर्मों के बीच में असहिष्णुता का भाव बहुत बढ़ गया। लोगों के मुँह से ऐसी उक्तियाँ निकलने लगीं—"हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम्" अर्थात् गली छोटी है, सामने से मदोन्मत्त हाथी आ गया है और वह मारने को उद्यत है एक ओर जैनमन्दिर का दरवाजा खुला है तो हाथी के सामने जाना श्रेयस्कर है पर जैनमन्दिर में नहीं जाना चाहिए।

यह असहिष्णुता वाचिक ही न रहकर व्यवस्थित हिंसा के रूप में भी कभी-कभी परिणत होती रही है। प्राचीन ग्रन्थों में यहाँ तक उल्लेख मिलते हैं—

"आसेतुरातुषाराद्रे बौद्धानां वृद्धबालकम्।
न हन्ति यः स हन्तव्य इत्येवमादिशत् नृपः॥"

"हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक बौद्ध बालकों एवं वृद्धों का जो हनन नहीं करता वह स्वयं हन्तव्य है।" लगता है विरोधी धर्मों के प्रति असहिष्णुता का भाव जनता में भी कूट-कूट कर भर गया था। वैदिक धर्म ब्राह्मण प्रधान था जैन और बौद्ध श्रमण कहलाते थे। श्रमण और ब्राह्मण में संघर्ष स्वाभाविक हो ऐसा मान लिया गया था। व्याकरणाचार्यों ने जहाँ नित्य वैरी शब्दों के समासका उल्लेख किया वहाँ 'अहि-नकुलम्' 'मार्जार-मूषिकम्' की तरह 'श्रमण-ब्राह्मणम्' का उदाहरण भी दिया। वहाँ यह माना गया—सर्प और नकुल की तरह बिल्ली और चूहे की तरह श्रमण और ब्राह्मण भी परस्पर शाश्वत वैर वाले हैं।

यह स्थिति तो भारतवर्ष के प्रमुख धर्म वैदिक, जैन और बौद्ध में रही। पश्चिम जगत् की ओर जब हम निगाह डालते हैं वहाँ तो धर्म के नाम पर मानवता की और भी विडम्बना मिलती है। जहाँ ईसा ने उपदेश दिया—"जो आदमी तुम्हारे एक गाल पर चाँटा लगाए, उसके सामने दूसरा भी कर दो" वहाँ प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक नामक एक ही ईसाई धर्म के दो सम्प्रदायों में जो हिंसा की बर्बर होली खेली गई, इतिहास के रक्तरंजित पृष्ठ आज भी उसकी साक्षी भरते हैं। जीवित आदमियों को जलाया गया नाना मर्दन ऐसे गए और नाना युद्धों से पृथ्वी लहू-लुहान हुई। तलवार के बलपर अपना धर्म फैलाने वाले लोग भी संसार में आए। उन्होंने कहा—"हमारा धर्म तर्क में नहीं तलवार में है। सिकन्दरिया का विश्व-प्रसिद्ध

पुस्तकालय जलाया गया। उसमें लगभग दस लाख पुस्तकें थीं। साढ़े चार हजार रुपए कीमत तक की पुस्तकें भी उसमें थीं। खलीफा उमर ने कहा—यदि ये पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं तो भी जरूरी नहीं क्योंकि कुरान मौजूद है ही। यदि ये कुरान के प्रतिकूल हैं तो मिथ्या हैं लोगों को अज्ञान देती हैं अतः ये निरर्थक हैं। तत्पश्चात् सारी पुस्तकें पाँच हजार रसोइयों को बाँट दी गईं जो छः महीने तक ईंधन के रूप में जलाई गईं। दूर क्यों जाएं, स्वतन्त्र भारतवर्ष का पहला अध्याय भी हिन्दू-मुसलमानों की पारस्परिक हिंसा के अक्षरों में लिखा गया है। वह रौद्र दृश्य भुलाया नहीं जा सकता। स्त्रियों को नग्न कर उनके जुलूस निकाले गए, बड़े-बड़े परिवारों को जीवित जलाया गया तोड़-फोड़ और लूट-खसोट हुई। अस्तु धर्मान्धता के इन विकृष्ट अनुभवों की एक लम्बी परम्परा है जो धर्म के लिए ही नहीं मानवता के लिए भी अभिशाप बनी है। आज केवल उस पर पश्चात्ताप करने का युग नहीं प्रत्युत उस प्रकार के सात्त्विक प्रयत्नों का युग है, जिससे वह परम्परा दुहराई न जाए और न उसमें कोई नई कड़ी जुड़े।

प्रश्न उठता है इन सब धार्मिक असहिष्णुताओं के पीछे दोष किसका है ? धर्म प्रवक्ता का या धर्म शास्त्रों का ? दोष है मनुष्य दोष किसका ? के अज्ञान व व्यामोह का। धर्म-शास्त्रों व धर्म प्रवर्तकों ने कहीं भी ऐसा कहा हो ऐसा नहीं लगता। महाभारत में लिखा है—'दूसरे धर्म को बाधित करने वाला धर्म, धर्म ही नहीं है वह तो दुर्मार्ग है[1]।

शास्त्र स्वयं कुछ नहीं बोलते इसलिए साम्प्रदायिकता को पुष्ट करने के लिए लोग कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी कर देते हैं। कहते हैं गीता में लिखा है—'अपने धर्म में मर जाना अच्छा है परन्तु पर-धर्म भयावह होता है[2]।" बात अवश्य गीता की है पर जो इसका साम्प्रदायिक अर्थ किया जाता है वह अर्थ का अनर्थ है। स्व धर्म—आत्म-धर्म अहिंसा सत्य आदि। पर धर्म—पौद्गलिक पदार्थ व काम क्रोधादि। इस स्व-धर्म में निधन श्रेय है और आत्म-विनाश के हेतु जड़-पदार्थ व काम क्रोधादि भयावह हैं। उक्त कथन के पूर्वापर प्रसंग को देखते हुए यही अर्थ संगत है। विभिन्न विद्वान् आचार्यों ने

---

1 धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्मतत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः सधर्मः सत्य विक्रमः॥
—महाभारत वन पर्व १३१—११

2 स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः।

विभिन्न प्रकार से उनमें धर्म की संगति बताई है, पर साम्प्रदायिक धर्म किसी भी टीकाकार ने स्वीकार नहीं किया है।

शास्त्रकारों ने तो स्थान-स्थान पर सत्य की खोज पर बल दिया है और विरोधियों के युक्त पक्ष को भी स्वीकार करना बताया है। एक ऋषि कहते हैं—"महीपाल! विरोधी धर्मों में से भी लाघव और गौरव का विवेक कर, जहाँ बाधा न हो उसी धर्म का आचरण कर[1]। ईसा ने क्षमा धर्म को सबसे उत्तम बताया—एक के स्थान पर दो चाँटे खाने की शिक्षा दी। कुरान में मुहम्मद साहब ने कहा है—"तेरा धर्म है तेरे लिए, मेरा धर्म है मेरे लिए[2]।" 'खुदा झगड़े को पसन्द नहीं करता[3]'। जैन व बौद्ध-शास्त्र तो अहिंसा से भरे ही हैं। भगवान महावीर का उपदेश है—"प्राणी मात्र में मैत्री रख[4]।" महावीर के उत्तरवर्ती आचार्यों ने भी यही स्तुतियाँ गाई हैं—"वीर में मेरा पक्षपात नहीं है और कपिल में द्वेष नहीं है। युक्त वचन जिसका है वह ग्राह्य है[5]।" "भव भ्रमण के हेतु राग व द्वेष जिन आत्माओं के क्षय हो गए हैं उन्हें मेरा प्रणाम है चाहे वे ब्रह्मा हैं, महादेव हैं या जिन हैं[6]। मुक्ति की मीमांसा करते हुए उन्होंने बताया—"मुक्ति न श्वेताम्बरत्व में है न तर्कवाद में है और न तत्त्ववाद में। कषायों से मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है"[7]। समन्वय सभी धर्म-शास्त्रों में मन को या मनों को जोड़ने वाली सुई की तरह बताया पर लोगों ने उसमें एक वस्त्र के दो टुकड़े करने वाली कैंची का काम लिया।

इस विषय में इतना परिष्कार तो अपेक्षित है ही कि अपने मत-प्रचार में दूसरों के प्रति आक्षेप व छींटाकशी न की जाए। किसी व्यक्ति को प्रलोभन, भय आदि से प्रभावित कर उसका धर्म-परिवर्तन न किया जाए और न

---

१ विरोधिष्वपि महीपाल! निरीक्ष्य गुरुलाघवम्।
न बाधा विद्यते यत्र तं धर्मं समुपाचरेत्॥

२ लकुम दीन कुम व ली दीनी।

३ खुदा झगड़ा पसन्द नहीं करता।

४ मित्तिं भूएसु कप्पए।

५ पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः॥

६ भवबीजाङ्कुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

७ श्वेताम्बरत्वे न दिगम्बरत्वे न तर्कवादे न च तत्त्ववादे।
न पक्षसेवाश्रयणेन मुक्तिः, कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव॥

कोई दूसरे धर्म में जाता हो तो उक्त प्रकार से उसे अपने धर्म में रखने को विवश किया जाए। भारतवर्ष में क्रिश्चियन मिशनरियों का कार्यक्रम एक समस्या बन गया है। लोग आतुर भी हो बैठे हैं कि उनके प्रचार को कैसे रोका जाए। बहुत सारे लोग राज्य सत्ता को भी प्रेरित करते हैं कि वह उन पर प्रतिबन्ध लगाए या उन्हें भारतवर्ष आने ही न दिया जाए। भारतवर्ष एक असाम्प्रदायिक राज्य (Secular State) है। हर एक व्यक्ति को धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता है। लोग क्रिश्चियनों पर व सरकार पर कुढ़ते हैं, पर इस बात का ध्यान नहीं देते कि लोग क्रिश्चियन बनते क्यों हैं? समस्या का वैध समाधान यही रह जाता है—भारतीय लोग भी अपने धर्मों के प्रति जन-जन के मन में होने वाले अनादर को न होने दें। क्रिश्चियन लोग अपने धर्म से लोगों को प्रभावित करते हैं। क्या भारतीय धर्मों में वह तेजस्व नहीं है कि वे उन्हें अपनी ओर आकर्षित रख सकें। स्थिति यह है कि लोग धर्म हानि का नारा तो लगा देते हैं पर धर्म रक्षा के लिए करते कुछ भी नहीं। धर्म-परिवर्तन के लिए जो अनैतिक व अवैध उपाय यदि किसी भी धर्म के द्वारा काम में लाए जाते हैं तो अवाञ्छनीय हैं और उन्हें रोकने का तो शासन व्यवस्था में भी विधान है।

साम्प्रदायिक मैत्री के पांच सूत्र

विभिन्न मत भेदों के रहते हुए भी सब धर्मों में मैत्री और सहिष्णुता कैसे रह सके इसके लिए अणुव्रत-आन्दोलन प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी ने पाँच सूत्र प्रस्तुत किए हैं जिनमें सर्वधर्म तितिक्षा का भाव समग्र रूप से प्रस्तुत हो गया है। वे सूत्र निम्न रूप में हैं —

१ मण्डनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किए जाएं।

२ दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।

३ दूसरे सम्प्रदाय और उनके साधु सन्तों के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।

४ कोई सम्प्रदाय परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि के रूप में अवाञ्छनीय व्यवहार न किया जाए।

५ धर्म के मौलिक तथ्य अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन व्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

मनुष्य की बुद्धि जब भेद-दर्शन पर केन्द्रित होती है तब अपनाव बढ़ता है। अपने सगे भाई में भी उसे दूरत्व लगता है। वह मानता है—मैं बड़ा भाई हूँ वह छोटा भाई है। वह गरीब है मैं धनी हूँ वह अशिक्षित है मैं शिक्षित

हूँ आदि। इस भेद दर्शन वृत्ति से अपने में एक अहम् पैदा होता है जिससे दूसरे के प्रति अप्रेम बढ़ता है। जहाँ अभेद दर्शन होगा एक भिखारी को भी देखकर मनुष्य सोचेगा—यह भी मेरे जैसा एक मनुष्य है। हाथ पैर, नाक आँख उसके और मेरे बराबर हैं। हम दोनों एक देश के हैं, एक ही शहर में रहते हैं और एक ही मुहल्ले में। इस प्रकार वहाँ एकत्व बढ़ता है। दोनों पक्ष एक दूसरे के निकट होते हैं। धर्म सम्प्रदायों के बीच अब तक एक दूसरे को समझने में भेद दर्शन की प्रमुखता रही है। भिन्न भिन्न धर्मों के बीच जो नहीं मिलने वाली बातें थीं उन्हें ही आगे रखकर शास्त्र विग्रह से लेकर शस्त्र निपात तक लोग पहुँचते रहे हैं। इस दृष्टिकोण से कटुता और कालुष्य बढ़ा। आज का युग अभेद दर्शन का है। नाना विरोधों के रहते हुए भी अभेद दर्शन के द्वारा लोग एक दूसरे के निकट होते जा रहे हैं। सबसे ज्वलन्त विरोध आज के युग में वाद प्रवादों का माना जाता है। साम्यवाद, समाजवाद, पूँजीवाद आदि एक दूसरे के विरोधी वाद हैं। विभिन्न देशों में शासन-व्यवस्था भी विभिन्न वादों के आधार पर चलती है। अपने अपने वाद को संसार भर में फैलाने का आग्रह भी सब में दीखता है फिर भी संसार में शान्ति और सुव्यवस्था रखने के लिए "संयुक्त राष्ट्र संघ" नामक संस्था का उदय हुआ है। उस संस्था में रूस और अमेरिका जैसे परस्पर विरोधी माने जाने वाले राष्ट्र भी सम्मिलित हैं। वे सब भेद की उपेक्षा कर अभेदमूलक बातों के लिए एक साथ बैठकर संसार भर की स्थिति में सन्तुलन बनाए रखने का प्रयास करते हैं। इसमें भी विशेष बात यह है आज सारे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अनाक्रमण, सह अस्तित्व आदि पंचशील का नारा गूँजा है। सह अस्तित्व का भी यही अर्थ है भेद के रहते हम साथ रह सकें। धार्मिक क्षेत्र में तो आज अभेद दर्शन की और भी आवश्यकता है। विभिन्न सम्प्रदायों के व्यवहार में जब अभेद दृष्टि का उदय होगा तो भेदमूलक बातों की उपेक्षा होगी और अभेद मूलक बातों पर सबकी दृष्टि लगेगी। सच बात तो यह है विभिन्न धर्मों के बीच भेदमूलक बातें तो लगभग पाँच प्रतिशत हैं और अभेदमूलक पंचानवें प्रतिशत। यह क्या जरूरी है कि पंचानवें प्रतिशत की उपेक्षा कर पाँच प्रतिशत को महत्त्व दें। समन्वय और सामञ्जस्य उस बात में है और स्वाभाविक भी यही है कि नहीं मिलने वाली पाँच प्रतिशत बातों की परस्पर के व्यवहार में उपेक्षा की जाए और मिलने वाली पंचानवें प्रतिशत बातों को महत्त्व दिया जाए यह है भेद में अभेद निकालने का मूल मन्त्र। पाँच अंगुलियाँ अपना अपना पृथक अस्तित्व रखती हैं उनका अपना अपना काम है पर आवश्यकता

भेद दर्शन से अभेद-दर्शन की ओर

पड़ने पर पाँचों मिलकर बड़ा से बड़ा काम सम्पादित करती हैं। पृथक् स्वरूप में वे एक दूसरे से निरपेक्ष हैं पर वे परस्पर लड़ती नहीं हैं क्योंकि वे कमाई रूपी सह अस्तित्व के बन्धन में हैं। पारस्परिक व्यवहार के लिए मार्ग सब धर्मों के लिए प्रशस्त है।

धर्म-प्रचार और धर्म-परिवर्तन

धार्मिक सह-अस्तित्व में सबसे बड़ी यदि कोई बाधा है तो वह धर्म प्रचार व धर्म-परिवर्तन की है। हर एक धर्म अपना प्रचार चाहता है और अपने अनुयायी भी बनाता है। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म में जाते भी रहें और परस्पर सहिष्णुता भी बनी रहे यह एक कसौटी है जिस पर बहुत थोड़े लोग खरे उतर सकते हैं। तो क्या विभिन्न धर्मों के बीच प्रेम बनाए रखने के लिए धर्म प्रचार और धर्म-परिवर्तन बन्द हों? यह समस्या का समाधान तो अवश्य है पर यथार्थ नहीं। विचार-स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है और धार्मिक स्वतन्त्रता तो उससे भी अधिक। आज के विकासशील सभी देशों में धर्म-प्रचार व धर्म-परिवर्तन वैध माना जाता है। रूस जैसे साम्यवादी देश के विधान में भी धर्माचरण और धर्मोपासना की प्रत्येक व्यक्ति को छूट दी गई है। धार्मिक स्वतन्त्रता विकासशील समाज की आद्य पहली बात है। प्रश्न यही अवशेष रहता है कि धर्म-प्रचार व धर्म-परिवर्तन को मान्यता देते हुए धार्मिक सहिष्णुता की बात कैसे चल सकती है? समाधान इतना कठिन नहीं है जितना सोचा जाता है। जीवन के ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें स्वार्थ टकराते हैं पर मनुष्य धैर्य नहीं खोता। एक ही बाजार में सैकड़ों दुकानदार बैठते हैं। अपने अपने माल का विज्ञापन करते हैं। ग्राहक चाहे जिस दुकान पर जा सकता है। दुकानदारों के अपने अपने स्थायी ग्राहक भी होते हैं। कभी कभी वे भी बदल जाते हैं। उस स्थिति में चतुर दुकानदार अपना आत्मान्वेषण करता है कि मेरे ग्राहक को मेरे प्रति असन्तोष क्यों पैदा हुआ? न कि उस दुकानदार के ऊपर कीचड़ उछालता है जिसके यहाँ अपना ग्राहक चला गया। और न उस ग्राहक को भी वह बुरा भला कहता है। यही स्थिति विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के बीच भी सामञ्जस्य रख सकती है।

क्रूर-व्यवहार

क्रूरता हिंसा का एक व्यापक रूप है। हिंसा की व्यापकता इसी पर टिकी हुई है। क्रूरता का उपादान स्वार्थपरता है जो मनुष्य की नस-नस में भरी है और वह उसका दास है।

स्वामी की क्रूरता नौकर पर रहती है। वह अधिक श्रम लेने की और कम से कम द्रव्य देने की नीति बना कर ही चलता है। बहुत थोड़े स्वामी ही यह सोचते होंगे कि नौकर के प्रति मेरा न्याय क्या है? बहुतों के द्वारा

...ने पर पाँचों मिलकर बड़े से बड़ा काम सम्पादित करती हैं। पृथक् स्वरूप ...में वे एक दूसरे से निरपेक्ष हैं पर वे परस्पर लड़ती नहीं हैं क्योंकि वे कर्माई ...पी सह अस्तित्व के बन्धन में हैं। पारस्परिक व्यवहार के लिए आज सब ...र्मों के लिए प्रशस्त है।

धार्मिक सह-अस्तित्व में सबसे बड़ी यदि कोई बाधा है तो वह धर्म प्रचार व धर्म-परिवर्तन की है। हर एक धर्म अपना प्रचार

धर्म-प्रचार और धर्म-परिवर्तन

चाहता है और अपने अनुयायी भी बनाता है। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म में जाते भी रहें और परस्पर सहिष्णुता भी बनी रहे यह एक कसौटी है जिस पर बहुत थोड़े लोग खरे ...तर सकते हैं। तो क्या विभिन्न धर्मों के बीच प्रेम बनाए रखने के लिए धर्म ...चार और धर्म-परिवर्तन बन्द हों? यह समस्या का समाधान तो अवश्य है ...र यथार्थ नहीं। विचार-स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है और ...र्मिक स्वतन्त्रता तो उससे भी अधिक। आज के विकासशील सभी देशों में ...र्म-प्रचार व धर्म-परिवर्तन वैध माना जाता है। रूस जैसे साम्यवादी देश के ...विधान में भी धर्माचरण और धर्मोपासना की प्रत्येक व्यक्ति को छूट दी गई ...है। धार्मिक स्वतन्त्रता विकासशील समाज की आज पहली बात है। प्रश्न ...ही अवशेष रहता है कि धर्म प्रचार व धर्म-परिवर्तन को क्षम्यता देते हुए ...र्मिक सहिष्णुता की बात कैसे बन सकती है? समाधान इतना कठिन नहीं है, जितना सोचा जाता है। जीवन के ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें स्वार्थ टक...राते हैं पर मनुष्य चैन नहीं खाता। एक ही बाजार में सैकड़ों दुकानदार बैठते हैं। अपने अपने माल का विज्ञापन करते हैं। ग्राहक चाहे जिस दुकान पर जा सकता है। दुकानदारों के अपने अपने स्थायी ग्राहक भी होते हैं। कभी कभी वे भी बदल जाते हैं। उस स्थिति में चतुर दुकानदार अपना आत्मान्वेषण करता है कि मेरे ग्राहक को मेरे प्रति असन्तोष क्यों पैदा हुआ? न कि उस दुकानदार के ऊपर कीचड़ उछालता है जिसके यहाँ अपना ग्राहक चला गया। और न उस ग्राहक को भी वह बुरा भला कहता है। यही स्थिति विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के बीच भी सामञ्जस्य रख सकती है।

क्रूरता हिंसा का एक जघन्य रूप है। हिंसा की व्यापकता इसी पर टिकी हुई है। क्रूरता का उपादान स्वार्थपरता है जो

क्रूर-व्यवहार

मनुष्य की नस-नस में भरी है और वह उसका दास है।

स्वामी की क्रूरता नौकर पर रहती है। वह अधिक श्रम लेने की और कम से कम द्रव्य देने की नीति बना कर ही चलता है। बहुत थोड़े स्वामी ही यह सोचते होंगे कि नौकर के प्रति मेरा न्याय क्या है? बहुतों के द्वारा

तो प्रस्तुत नौकर की अतिशय गरीबी उसके भोलेपन व उसकी श्रमशीलता का

नौकर और मालिक

अनुपयुक्त (नाजायज) लाभ उठाया जाता है। मालिकों की क्रूर व स्वार्थपूर्ण वृत्तियों का नौकरों पर यह असर पड़ता है कि वे भी अपने मालिक के साथ सौदागिरी से पेश आते हैं अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहकर नहीं। वे भी यही सोचकर चलने लगते हैं कि मुझे जब तक इस नौकरी की आवश्यकता है तब तक मालिक के काम का बराबर ध्यान रखना है वह भी इतना ही कि जिससे नौकरी छूटने की नौबत न आए। नौकर सोचता है अधिक श्रम करके मैं क्यों अपना शरीर मारूं? यही पृष्ठभूमि है जो नौकर और मालिक के बीच अपनत्व का अंकुर नहीं फूटने देती। स्थिति यह हो गई है कि मालिक नौकरों को कोसते हैं। पुराने जमाने में नौकर कितने स्वामीभक्त हुआ करते थे। आज कल के नौकर तो अधिकांशतः मक्कार, धोखेबाज काम न करने वाले होते हैं। इधर नौकर कहते हैं कि कैसा जमाना आया है? पुराने जमाने में मालिक नौकर को पुत्र मानता था। उसके सुख में सुखी व उसके दुःख में दुःखी होता था। आजकल के मालिक मुफ्तखोर व मतलबी हो गए हैं। उनके दिल में नौकर के प्रति न्याय व दया नहीं है। दोष किसका है नौकरों का या मालिकों का? एकान्त रूप में कुछ भी कह देना असंगत होगा। कुछ भी हो समस्या का अन्त इसमें है कि व्यक्ति दूसरे पर दोषारोपण न कर आत्म-द्रष्टा बने। अणुव्रती यह न सोचे मेरा नौकर या मेरा मालिक अपना कर्तव्य नहीं निभाता तो मैं भी उनके साथ अनैतिकता करता जाऊं। यह अणुव्रती का मार्ग नहीं है। वह तो कोई भी सुधार अपने से आरम्भ करेगा और स्वयं का परिमार्जन करेगा। इससे अपनी भी शुद्धि होगी और बद्धमूल समस्या के भी पैर उखड़ जाएंगे।

मजदूर और पूंजीपति

प्रतिशोध लेने की मनोवृत्ति से ही आज मजदूर-वर्ग में तोड़फोड़ का समाभाव आ रहा है। "तोड़फोड़ व मजदूर" शीर्षक में यह विवेचन किया गया है कि वे तोड़-फोड़ व रक्त क्रान्ति के रास्ते पर न जाएं, पर यह तभी सम्भव है जब कि पूंजीपति अपनी बद्धमूल शोषणपरक वृत्तियों को छोड़ें और अपने कर्तव्य व न्याय का लंघन न करें। पूंजीपतियों की शिकायत है, हमारे औचित्य की मर्यादा क्या है? मजदूर तो आजकल हमें मजदूर बनाकर स्वयं मालिक होना चाहते हैं। उनकी मांगों का कभी अन्त होता ही नहीं। आए दिन हड़ताल व धीमा काम (slow work) का झंझट उठाकर हमें हानि ही पहुंचाते रहते हैं। मजदूरों का कहना है शरीर का खून सुखा कर व पसीना बहा कर माल हम पैदा करते हैं और हमें मिलता कुछ नहीं। जीवन भर काम करते रह कर

भी हम अपने जीवन स्तर (standard of living) को जरा भी ऊँचा नहीं उठा सकते हम बच्चों को पढ़ा नहीं सकते बीमार होने पर किसी पारिवारिक-जन की पर्याप्त चिकित्सा नहीं करवा सकते जब कि हमारे ही श्रम पर पूंजीपति लाखों-करोड़ों का धन इकट्ठा कर सीमातीत ऐश्वर्य बढ़ाते रहते हैं और धन का उचित-अनुचित उपभोग करते हैं। सचमुच ही यह ऐसा वैषम्य है जिसे आज का समाज क्षम्य नहीं मान सकता। पर साथ साथ अब तक यह भी निर्विवाद रूप से स्पष्ट नहीं हो पाया है कि मजदूरों का उचित अधिकार क्या है ? फिर भी इतना तो स्पष्ट हो चुका है कि जिस पारिश्रमिक पर मजदूर सैकड़ों सहस्रों वर्षों से जीवन-होम रहे हैं उनके जीवन की इस युग में कीमत बढ़ गई है। धीरे-धीरे उनके श्रम के मूल्य का एक मानदण्ड दुनियां के एक छोर से दूसरे छोर तक बनता जा रहा है। पूंजीपति वही अपना पुराना राग आलापते रहें यह किसी मूल्य पर आज की समाज-व्यवस्था सहन नहीं करती यह कैसे सम्भव हो सकता है जब समाज में आमूल परिवर्तन होने जा रहा है पूंजीपति बस उस परिवर्तन से अछूता ही रह जाए जब कि परिवर्तन का मध्य बिन्दु ही अर्थ-संग्रह है। *पूंजीपति उस बात को न भूलें कि आज स्वतन्त्र देश* के स्वतन्त्र मजदूरों ने समाज-क्रान्तियों द्वारा अपने आपको मजदूर नहीं अपितु एक हिस्सेदार के रूप में प्रमाणित करा लिया है। उसके साथ सामञ्जस्य बिठाने के लिए आज उद्योगपतियों को युग के आलोक में आत्म-निरीक्षण करने व बद्धमूल संस्कारों को बुद्धि व न्यायपूर्वक बदलने की आवश्यकता है।

मजदूरों का इस दिशा में यह मानकर नहीं चलना है कि आज हमारा युग है जिससे हमारे पक्ष की मोड़ पर है इसलिए हम पूंजीपतियों से प्रतिशोध लें। प्रतिशोध लेने का तात्पर्य प्रतिशोध के बीज डालना है। इस परम्परा का कभी अन्त नहीं होता। प्रतिशोध की भावना में बहकर मजदूर कुछ पाएंगे नहीं खोएंगे। समस्या का अन्त वैषम्य व विरोध दोनों के अन्त में होगा वैषम्य मिटाने की धुन में यदि विरोध को जीवित रख दिया तो समझना चाहिए वैषम्य मिटा नहीं स्थानान्तरित हुआ। जो पक्ष निबल था वह सबल हुआ और जो सबल था वह निबल। एक तटस्थ द्रष्टा की दृष्टि में समाज व्यवस्था का वैषम्य मिटा नहीं उसके मार्ग (पात्र) बदल गए। समय का अधिक भी लगे पर दोनों वर्गों का संघर्ष अहिंसा मैत्री व सामञ्जस्य के धरातल पर समाप्त हो ताकि वह हमेशा के लिए समाप्त ही हो जाए, यह अणुव्रत जीवन-दर्शन है।

मालिक अभिभावक से इसके साथ यह बात भी जुड़ी हुई है कि मजदूर भी श्रम से जी न चुराए। वस्तु की चोरी होती है उसी प्रकार समय की

चोरी होती है। जो समय जितने मूल्य पर बेच दिया उसे फिर पूर्ण नहीं चुकाना चोरी नहीं तो क्या है? पर यह चोरी मजदूर-वर्ग में बहुतायत से है। इससे मालिक के मन में खीज उत्पन्न होती है और परिणाम स्वरूप गुत्थी उलझती ही जाती है।

समय की चोरी

अतिश्रम की परिभाषा

जो श्रम लोक-व्यवहार में दमनीय माना जाए, नौकरी छोड़ देने की धमकी देकर व कर्मचारी की इच्छा के प्रतिकूल राजकीय प्रतिबन्ध से अधिक लिया जाए, वह अतिश्रम की मर्यादा में आता है। नौकर व कर्मचारी रुग्ण हो फिर भी राजकीय नियम का ध्यान बिसाकर उनसे श्रम लेते ही रहना अतिश्रम के अन्तर्गत आ जाता है।

खाद्य-पेय व आजीविका विच्छेद

क्रूरता के नाना भेदों में खाद्य-पेय का विच्छेद भी एक है। उसके नाना प्रकार हैं। बहुत सारे लोग गाय आदि रखते हैं। जब तक वह दूध देती है, उसकी सार-संभाल रखते हैं। दूध नहीं देने की स्थिति में उसे उसके भाग्य भरोसे छोड़ देते हैं। वह खेतों में बाजारों में भटकती रहती है। जब पुनः दूध देने की स्थिति में होती है उसे घर ला बांधते हैं। समझने के लिए यह खाद्य-पेय विच्छेद का सुस्पष्ट उदाहरण है। इस उदाहरण से अणुव्रती तथा प्रकार के अन्य प्रसंगों को भलीभांति समझ सकता है।

खाद्य-पेय का विच्छेद मुख्यतः लोभ भावना व क्षोभ भावना से होता है। गरीबी व अन्य तथा प्रकार की विवशता से अणुव्रती अपने आश्रित प्राणियों के प्रति चाहते हुए भी खाद्य-पेय सम्बन्धी दायित्व को नहीं निभा सकता तो वह उसकी अपनी असमर्थता है।

आश्रित का तात्पर्य अपने ऊपर निर्भर रहने वाले स्त्री पुत्र नौकर गाय भैंस घोड़े आदि से है। जो आश्रित प्राणी खाद्य-पेय सम्बन्धी सामग्री पाने का अधिकारी है उसे लोभ या क्षोभवश वञ्चित रखना खाद्य-पेय विच्छेद है। आश्रित प्राणी के अधिकार का मानदंड लोक-व्यवहार है या अणुव्रती की स्वयं आत्मा है।

आश्रित प्राणियों को खाद्य-पेय आदि देने का दायित्व व्यक्ति का रहता है। अतः खाद्य-पेय विच्छेद का सम्बन्ध आश्रित प्राणियों से ही माना गया है। अनाश्रित प्राणी के खाद्य-पेय का विच्छेद करना अर्थात् जो वस्तु जिसके द्वारा जिसको मिल रही है उसे हड़प लेना या उसे नहीं पाने देना तो अणुव्रती के लिए वर्जित हो ही जाता है।

प्रश्न आता है, यदि कोई अन्य पशु अणुव्रती के धान्य आदि को खाने

जमता है और अणुव्रती उसे दूर करता है तो क्या उसका नियम-भंग है ? नहीं क्योंकि वह उस पशु के अधिकार की वस्तु नहीं है।

गाय आदि को प्रसव काल में जो विशेष खाद्य द्रव्य देते हैं और सामान्य अवस्था में नहीं देते वह भी नियम निषिद्ध नहीं है क्योंकि यह तो प्रचलन मात्र व्यवहार है।

बछड़े को लोक-सम्मत विधि के अनुसार स्तन-पान से मुक्त किया जाता है तो वह खाद्य-पेय विच्छेद नहीं है। इसके विपरीत यदि बछड़े को स्तन-पान से पूर्णतया वञ्चित ही रखा जाए या नाम मात्र का स्तन-पान कराया जाए तो अवश्य वह खाद्य-पेय विच्छेद की कोटि में है। खाद्यपेय की तरह आजीविका-विच्छेद भी निन्द्य व वर्जित है। जितना वेतन जिस नौकर को देना निश्चित किया उसमें अनुचित न्यूनता करके रखने का प्रयत्न करना व न देना नितान्त अनैतिकता है। किसी व्यक्ति की आजीविका पर प्रहार करना अर्थात् उसे लगी नौकरी से हटवा देना तो अणुव्रती के लिए त्याज्य है ही।

पशुओं पर अतिभार

मनुष्य पशुओं के प्रति न्याय नहीं बरतता। वह अपने स्वार्थ के सामने पशुओं के प्राणों का जरा भी मूल्य नहीं मानता। पशुओं के साथ वह अनगिन क्रूर-व्यवहार करता रहता है। इस विषय में बहुत सारी संस्थाएं भी जनता का इस ओर ध्यान खींच रही हैं। पशु क्रूरता निषेधक प्रस्ताव भी संसद व विधानसभाओं में आने लगे हैं। अणुव्रत-आन्दोलन विभिन्न नियमों से क्रूरता निषेधक भावनाओं को आगे बढ़ाता है। क्रूरताओं के कुछ व्यवहार क्रूर कहलाने वाले आदमियों द्वारा ही हुआ करते हैं पर अतिभार सम्बन्धी क्रूरता तो क्रूर व अक्रूर, सभ्य व असभ्य सभी लोगों में दिखाई देती है। व्यापारी लोग सोचते हैं बैलगाड़ी में भार लादना है तो गाड़ी के पैसे कौन काटेगा, दो पैसे गाड़ी वान को अधिक देकर एक गाड़ी में ही काम निकाल लेंगे। किसान सोचता है अनाज घास आदि खेत से घर ले जाना है बार बार आने की झंझट अच्छी नहीं दो बार का काम एक बार में ही हो जाए तो अच्छा। इस प्रकार अनेकों प्रसंग होते हैं जहां अतिभार रूप क्रूरता का पाप मनुष्य सीधे सीधे कर लेता है। अणुव्रती को इस विषय में अपनी मर्यादा स्थापित करनी होगी। पहली मर्यादा उसकी आत्मा है। वह ऐसे प्रसंगों पर उसी से उत्तर ले यह अतिभार तो नहीं है ?

अन्य मर्यादाओं का मानदण्ड लोक-व्यवहार व राजकीय नियम है। वह उनका उल्लंघन न करे। जहां जितनी सवारी तांगे आदि में बैठने का नियम हो और जहां बैलगाड़ी आदि पर जितने मन भार डालने का नियम हो वहां

उन का अतिक्रमण न करे।

जहाँ जितने मन भार डालने का कानून है, वहाँ दो चार सेर वजन यदि अधिक हो जाता है या कि कानून की दृष्टि से भी नगण्य है वह व्रत में बाधक नहीं माना गया है। तांगे आदि में जहाँ तीन या चार व्यक्तियों के एक साथ बैठने का नियम है अणुव्रती यथाक्रम चौथा या पाँचवां होकर न बैठे। यदि अणुव्रती नियमानुसार बैठ चुका है और तांगे वाला फिर अपने स्वार्थ से तीसरे या चौथे को बिठाता है तो वहाँ अणुव्रती दोषी नहीं है।

जो भार अणुव्रती ने ठेके पर दे दिया है, गाड़ीवान अणुव्रती के निषेध करते हुए भी अपने स्वार्थ के लिए उसे धीमे-धीमे ले जाता है, उसमें अणुव्रती दोषी नहीं है।

जहाँ अन्य साधन नहीं है और किसी कारण से सवारी पर चढ़ना अनिवार्य है वहाँ नियम लागू नहीं है।

ऊपर बताई गई क्रूरताओं के अतिरिक्त और भी जीवन-व्यवहार में विविध क्रूरताएं रहती हैं। बहुत सारे व्यक्ति गाय भैंस आदि पशुओं को इतनी निर्दयता से पीटते हैं कि शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं। बहुत से मां बाप छोटे बालक-बालिकाओं को ऐसा पीटते हैं मानो उन्होंने उनके घर में जन्म लेकर भारी अपराध कर लिया है। ऊँट बैल आदि पशुओं पर लोग सुन्दरता के लिए त्रिशूल चक्र आदि भी अत्यन्त कष्टदायक तरीकों से बनाते हैं। अणुव्रती को उक्त प्रकार की तथा अन्य क्रूरताओं से बचना है।



सत्य अणुव्रत

'सच्चमेव भयवं' सत्य ही भगवान् है—यह आप्त-वाक्य है। इस छोटे से वाक्य रूप बीज में सत्य का विराट् रूप अस्तित्व पा रहा है। सत्य का पा लेना ही जीवन ध्येय होता है, क्योंकि 'सत्य'[1] ही संसार में सारभूत है। सत्य जीवन का साध्य है अहिंसा आदि उसके साधन हैं इसलिए कहा गया है "अप्पणा सच्च मेसिज्जा" आत्मा से सत्य का अन्वेषण करो। सत्य की विशेषता यह है जहाँ वह जीवन का साध्य बनता है वहाँ वह जीवन-व्यवहार में साधन भी बन जाता है। यहाँ साध्य सत्य की दार्शनिक विवेचना में न उतर कर साधन सत्य को ही समझ लेना है। अणुव्रत आन्दोलन जीवन-व्यवहार का दर्शन है। *सत्य की व्यवहार्य स्थिति को समझ कर ही अणुव्रती साधना के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है।*

निर्भयता और तेजस्व

सत्यवादी निर्भय होता है। असत्य एक प्रकार की चोरी है। असत्य भाषी चोर की तरह भयभीत रहता है कि मेरा असत्य खुल न जाए। उसकी वाणी में कभी ओज नहीं आता है। उसकी लड़खड़ाती जबान हर एक व्यक्ति के हृदय में अविश्वास पैदा करती है। सत्य भाषी की वाणी में ही नहीं उसके चेहरे पर भी निर्भयता व तेजस्व टपकते रहते हैं। वे उसमें एक आकर्षण पैदा करते हैं, जो कि उसे सफलता की दिशा में आगे बढ़ाता है। उसकी आत्मा प्रसन्न तथा बलवान् रहती है। मानसिक दैन्य उसे कभी छूता तक नहीं।

असत्य का अभ्यास

कुछ लोग ऐसे देखे जाते हैं जो असत्य बोलने का अभ्यास करते हैं। साधारण व बिना किसी स्वार्थ के झूठ बोलते हैं वह इसलिए कि बड़ी से बड़ी झूठ को आदि से अन्त तक निभाने में हम कुशल हो जाएंगे। गुप्तचर विभाग में रहने वाले एक व्यक्ति से कुछ वर्ष पूर्व वास्ता पड़ा। उसने बहुत सारी बातें अपने जीवन के विषय में बताईं और हमारी सुनी भी। वह प्रतिदिन हमारे पास आने लगा। उसका बात करने का ढंग बड़ा ही रोचक व आकर्षक था। उसके चले जाने पर हमारे दिल में आता इतनी बातें यह कहता है, ये यद्यपि सत्य

1 सच्चं लोगम्मि सारभूयं।

नहीं हो सकती पर साथ साथ उसके असत्य बोलने का कोई तात्पर्य नहीं लगता था। धीरे धीरे हमें तो यह पता लग गया कि वह पोले सोलह आने असत्य बोलता है पर हम साधुजनों के पास वह क्यों आता है क्यों इतनी निरर्थक बातें करता है यह एक कौतूहल का विषय था। बहुत दिनों के सम्पर्क के पश्चात् हम लोगों ने उससे कहा—भैया तुम्हारी बातें तो सारी की सारी असत्य निकलती जा रही हैं, तुम्हारा इस असत्य-भाषण का तात्पर्य क्या ? उसने अत्यन्त स्वाभाविक रूप से कहा—मैं गुप्तचर-(सी आई डी) विभाग में काम करता हूँ। मेरी तो निपुणता ही झूठ सीखने में है। तब हम लोगों ने समझा—यह मरघन तो हम साधुजनों का समय लेकर झूठ बोलने का अभ्यास कर रहा है। कुछ भी हो झूठ छिपा नहीं रहता। एक बार उसका प्रयोग कर आदमी अपना साधारण सा काम बना लेता है और कुछ होता है पर वास्तव में वह अपनी प्रतिष्ठा का बहुत बड़ा हिस्सा उस एक बार के प्रयोग में ही खो देता है। पुनः पुनः के प्रयोगों से तो वह झूठे आदमी का खिताब ही अपनी समाज में पा जाता है।

असत्य का रोग बालकों एवं विद्यार्थियों में बहुत कुछ फैल चुका है। जैसे तैसे ही झूठ बोलकर अपने आपको पकड़ में आने से बचा लेना चतुरता समझा जाने लगा है। प्रश्न होता है बालकों में असत्य आया कहाँ से ? यह कोई पूर्व जन्म की विरासत वे साथ नहीं लाते हैं। इसी जन्म के चारों ओर के वातावरण से उन्हें उपहार मिलता है। पहला उपहार माता पिता से मिलता है। घर पर कोई ऐसा व्यक्ति आए, जिससे पिता मिलना नहीं चाहता लड़के को बुलाकर सिखलाएगा—जाओ आगन्तुक से कह दो—पिताजी घर पर नहीं हैं। कभी कभी तो ऐसा भी होता है आगन्तुक पूछ बैठता है—तुम्हें यह किसने कहा पिताजी घर नहीं हैं ? भोला बच्चा झट कह देता है— पिताजी ने। कुछ भी हो माता पिता व अन्य घर वालों का जैसा आचरण बालक देखता है वैसा ही वह सीखता है।

बालकों में असत्य

अपने बचाव के लिए भी बच्चा असत्य बोलना सीखता है। पाठ याद नहीं कर सका, वह साथियों के साथ कहीं सैर करने चला गया इसलिए स्कूल में देरी से पहुँचा। अध्यापकों द्वारा पूछे जाने पर वह झट कह देगा—पेट में दर्द हो गया था, सिर में दर्द हो गया इसलिए पाठ याद नहीं कर सका व समय पर स्कूल नहीं पहुँच सका। पेट दर्द व सर-दर्द का बहाना एक ऐसा बहाना है जिसकी असलियत एक्सरे से भी नहीं जानी जा सकती। इस प्रकार [illegible] बचाव हो जाता है और बालक के हृदय में असत्य

का एक संस्कार जम जाता है। असत्य संस्कारों का पनपना राजयक्ष्मा के कीटाणुओं के उद्गम जैसा है। असत्य के कीटाणु उसके जीवन के क्रमिक-विकास के साथ बढ़ते ही जाते हैं और आगे चल कर उसके जीवन के निखरने से पहले उसको प्राणहीन सा बना देते हैं। बालक यदि बुद्धिमान् है तो धीरे-धीरे असत्य को छोड़ भी देता है। जो नहीं छोड़ सकता उसका भविष्य अन्धकार में चला जाता है। क्योंकि यह स्वाभाविक है यदि वह स्कूली जीवन में असत्य आचरण पर ही चलता है तो आगे चलकर किसी कार्यालय या दुकान में बैठने की उम्र में भी वह उसी मार्ग पर चलेगा। यह निश्चित है जहाँ वह जाएगा वहीं अपना विश्वास खो देगा और निराश लौटेगा। जीवन के किन्हीं क्षणों में असत्य पर चलने वाला व्यक्ति कुछ भी प्रगति कर सकेगा यह असम्भव है।

व्यवहार के नाम पर मानसिक असत्य

बड़ों के जीवन-व्यवहार में भी असत्य नाना रूपों में आ गया है। लोग कहते हैं मनुष्य को व्यवहार-कुशल होना जरूरी है। व्यवहार कुशलता आदर्श पर चलने से काम नहीं चलता। उस व्यवहार कुशलता का अर्थ होता है अपना सिद्धान्त व विचार कुछ नहीं केवल तिकड़मबाजी से अपने चारों ओर के वातावरण को प्रसन्न बनाए रखना। ऐसी स्थिति में सत्य का गला घुटता है। असत्य भी व्यक्ति अपने ही प्राण बोलता है क्योंकि सत्य वहाँ मन में होता है और असत्य वाणी में।

व्यवहार-कुशलता कोई बुरी वस्तु नहीं यदि उसकी यथार्थता को पकड़ा जाए। व्यवहार-कुशलता का मर्म है—व्यक्ति अपने सत्य एवं अन्य आदर्शों को सुरक्षित रख कर सबके साथ मृदु एवं नम्र व्यवहार करे। अवसर आने पर वह बोले और चुप भी रहे पर वह चापलूसी करने के लिए कुछ भी न करे।

कूटनीति के नाम पर मानसिक असत्य

असत्य-आचरण का एक अन्य रूप कूटनीति भी है। आज की राजनीति में यह बड़े गौरव से चलती है। राजनैतिक अपने आपको कूटनीतिक (Diplomate) कहलाकर हर्षित होते हैं। उस कूटनीति का सत्य से कितना-सा सरोकार है इस बात को भी जानने का किसी ने प्रयत्न किया होगा? लगता है कूटनीति का जन्म युद्धों और महायुद्धों से हुआ है। महाभारत के रणक्षेत्र में कृष्ण की कूटनीति ने भीष्मपितामह द्रोणाचार्य कर्ण जयद्रथ दुर्योधन को परास्त करा कर पाण्डवों को विजयी बना दिया। महाभारत से जब हम मौर्यकाल में आते हैं तो सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामंत्री चाणक्य पिण्डीभूत कूटनीति के रूप में प्रस्तुत मिलते हैं। उन्होंने तो व्यवस्थित शास्त्र भी बना कर विश्व के सामने रख दिया है। राजपूतों

तथा यवनों के संघर्षकाल में धार्मिक भावनाओं से संस्कारित व्यक्तियों ने बहुधा कूटनीति को हेय ही माना है। यवन इस बात में बहुत ही आगे रहे। अंग्रेजों की कूटनीति ने उनको भी परास्त कर दिया। आज तो सामान्य राजनीति भी कूटनीति कही जाने लगी है। इसमें कोई दो मत नहीं होगा कि कूटनीति में असत्य के ही ताना बाना निकलते हैं। आज के अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में जितना ध्यान अहिंसा ने अपनी ओर खींचा है उतना सत्य ने नहीं। पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में स्वस्थता लाने के लिए जितनी अहिंसा आवश्यक है, उतना ही आवश्यक सत्य है। आज अपेक्षा है विभिन्न देशों के पारस्परिक व्यवहार में कूटनीति (Diplomacy) का स्थान सत्यता (Truthfullness) ले।

कूटनीति राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित रहती यह एक बात थी। उसका दुष्परिणाम जन जन का आक्रान्त नहीं करता क्योंकि वह कुछ अवसरों व कुछ लोगों तक ही सीमित होती। पर दुःख की बात तो यह है कि वह अपने नाना रूपों में जन-जन का विषय बन गई है। अनैतिकता भ्रष्टाचार, चालाकी विश्वासघात आज कहाँ नहीं मिलते? जो कूट-व्यवहार दो राष्ट्रों के बीच चलता था वह अब दो पड़ोसियों और दो सगे-सम्बन्धियों के बीच चलता है। इस युग में सरलता मूर्खता में परिणत हो गई है और धूर्तता चतुरता में। किसी भी व्यक्ति को पहचान लेना कि वास्तव में वह क्या है किसी दार्शनिक-गुत्थी को समझ लेने से सहज नहीं है। मनुष्य की शाब्दिक व कायिक प्रवृत्तियाँ उसके हार्दिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं।

सफल नेतृत्व का मार्ग निष्कपट आचरण

मनुष्य की स्वाभाविक रुचि सत्य व ऋजुता में होती है। असत्य एवं कुटिलता को वह किसी स्वार्थ से ही अपनाता है। वह स्वार्थ है उद्देश्य की सफलता। एक कार्यकर्ता व नेता स्वभावतः चाहता है—मेरा व्यक्तित्व व नेतृत्व बढ़े सब लोग मुझे विश्वास व प्रेम की दृष्टि से देखें। किन्तु समष्टि के वातावरण में बहुत सारे लोग उसके सहयोगी एवं बहुत सारे विरोधी होते हैं। वहाँ वह दूसरों के प्रभाव से अपना प्रभाव अधिक देखना चाहता है। इसी महत्त्वाकांक्षा का जब अतिरेक हो जाता है तब व्यक्ति असत्य एवं दम्भता का आश्रय लेता है। अपने कार्य को अतिरंजित करके बताना दूसरों के विशेष कार्य को भी न्यून या असद् बताना दूसरों के श्रेय पर अपनी छाप लगाना आदि उसके लिए सहज हो जाता है। यह मार्ग श्रेयस्कर नहीं है। कुत्सित प्रयोजनों में अपने आत्म-धन का गमाना है, घाटे का सौदा है। ऐहिक लाभ भी इस गर्हास्पद मार्ग से नहीं मिल सकते। वहाँ भी वह जो चाहता है उससे उल्टा होता है। प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ ऐसे नेता मिलते हैं, जो

अपनी कूटचालों से सबको प्रभावित करना चाहते हैं। ऐसे लोग अपने कार्यों से अपने विषय में वाहवाही सुनते हैं किन्तु उनके परोक्ष की स्थिति समाज में सदा दयनीय रहती है। वहाँ उनके प्रति सामूहिक प्रेम व श्रद्धा नहीं देखी जाती और न कोई सुदृढ़ विश्वास भी। जनता के अन्तःकरण में उनका आदर्श व्यक्तित्व नहीं बनता। समाज के हर कार्य में उनका हस्तक्षेप रहते हुए भी वे बड़े आदमी नहीं माने जाते। अन्दर में सभी लोग उनसे सशंक रहते हैं। उनके मुँह पर उनकी तारीफ करते हैं पर पीठ पीछे यह बड़ा चालाक है, धूर्त है, जान लेने योग्य है आदि कहते रहते हैं। ऐसे अवसरों से विचारक जन समझ लेते हैं वञ्चना व असत्य के आधार पर नेतृत्व की कामना करने वाले क्या खोते व क्या पाते हैं।

दूसरे पक्ष में समाज में हम उन व्यक्तियों को देखते हैं जिनका हृदय कपट से खाली और प्रेम से पूरित रहता है। वे हर स्थिति को अपने साथियों में सरल एवं सुस्पष्ट रखते हैं। उनकी वाणी और कर्म में कोई विरोध नहीं होता। वे कार्य स्वयं करते हैं पर श्रेय साथियों को देते हैं। ऐसे व्यक्तियों का प्रत्यक्ष और परोक्ष में समाज के व्यक्ति-व्यक्ति पर अमिट प्रभाव रहता है। समाज उन्हें श्रद्धा सम्मान और भक्ति के पुष्प चढ़ाता है।

प्रश्न रहता है—चतुर व्यक्ति भी ऐसी कूटनीतियों के आचरण में फँस क्यों जाता है? उसका भी हेतु है। वह यह समझता है कि कूटनीति बुरी है पर मैं इसे खुलने नहीं दूँगा। इससे मैं जनता में आदर्शवादी होने का यश भी पाता रहूँगा और इस अन्तरंग छद्म से मेरा काम भी सफल हो जाएगा पर ऐसा होता नहीं। होता यह है काम भी नहीं बनता और आदर्श का ढोंग भी नहीं ठहरता। आज की जनता में तो किसी भी वञ्चना का सफल होना नितान्त असम्भव है। वञ्चना भी एक बार सफल होती है जहाँ कि अन्य सब लोग वैसी वञ्चनाओं से अपरिचित होते हैं पर आज तो ऐसी बातों में एक से एक आगे नम्बर लेने वाले देखे जाते हैं। व्यापारी ग्राहक को कैसे ठग लेगा जब ग्राहक स्वयं उसे ही ठगने के लिए आता है।

वञ्चना प्रकट होकर रहती है। कोई भी कुशलता उसे रोक नहीं सकती। बहुधा तो व्यक्ति अपने वञ्चक होने का परिचय अपने आप दे देता है। एक के साथ वञ्चना करके अपनी कुशलता का वर्णन अपने मित्रों में करता है। वह समझता है—मेरे मित्र मेरी चतुरता से बहुत प्रभावित हो जाएँगे पर होता यह है कि वे मित्र स्वयं उसके आत्मा की तह पा जाते हैं।

सत्य शास्त्र-सम्मत है इसीलिए वह जीवन का सिद्धान्त है ऐसी बात नहीं। वह जितना शास्त्र-सम्मत है उतना तर्क सम्मत भी। कुछ लोग कहा

करते हैं—सत्य व असत्य का भेद ही अनावश्यक होता है। बोलने का उद्देश्य जैसे फलित होता हो वैसे ही बोलना चाहिए। यदि यह नियम होता कि सत्य बोलने से ही फलित सिद्ध हो तो अवश्य हम सत्य को जीवन सिद्धान्त मानते किन्तु ऐसा नहीं है। असत्य भाषण से भी मनुष्य बहुत सारी सफलताएं पाता है। तर्क रुचिकर लगता है पर उसके नीचे सुदृढ़ आधार नहीं है। सफलता मिलने पर ही जीवन का कोई प्रयत्न उपादेय बने यह मानने योग्य बात नहीं है। चोरी से भी धन मिलता है व्यभिचार में भी वैषयिक आनन्द है पर ये जीवन के उपादेय तत्त्व कभी नहीं बनते। उपादेयता को परखने के लिए देखना होगा सत्य और असत्य में सहज क्या है स्वभाव व विभाव क्या है? सहज सत्य है जिसे मनुष्य अनायास बोलता है। असत्य-भाषण में विशेष प्रयत्न अपेक्षित है। जीवन सिद्धान्त वह होता है जो व्यवहार्य हो। सत्य व्यवहार्य है। मैं सदा सत्य ही बोलूंगा ऐसा व्रत लेकर अनेक लोग चलते हैं सब लोग चल सकते हैं। मैं असत्य ही बोलूंगा ऐसा व्रत लेकर न कोई चलता है और न चल सकता है। कोई भी व्यक्ति सतत झूठ कैसे बोलेगा? क्या वह खाते हुए भी कहेगा नहीं खाता हूँ? बोलते हुए भी कहेगा मैं नहीं बोल रहा हूँ और वह जीवित होते भी कहेगा मैं मर गया हूँ? अस्तु असत्य जीवन में व्यवहार्य नहीं होता इसलिए वह जीवन का सिद्धान्त भी नहीं बन सकता और न वह जीवन में उपादेय भी बन सकता है। सत्य स्वभाव है असत्य विभाव सत्य 'स्व' है असत्य 'पर' है। 'पर' भी क्या कभी 'स्व' होगा?

सत्य की तर्क सिद्ध उपादेयता

'मैं सत्य बोलूंगा' सत्य के इस विधेय-रूप में समग्र अभिप्रेत नहीं आता। सत्य भी कुछ मर्यादाओं में वाच्य है, कुछ में अवाच्य। "मैं असत्य न बोलूंगा" यह अभिप्रेत अपने आप में पूर्ण है, इसमें कोई अपवाद व विकल्प जोड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती। अणुव्रत-आन्दोलन सार्वजनिक है। इसलिए इसमें नकारात्मक सत्य को विशेष स्थान दिया गया है। विधानात्मक सत्य में नाना मत सम्भव हैं जैसे—कटु-सत्य मर्म प्रकाश को ही लें। ये सब कहाँ तक उपादेय हैं इसमें व्यक्ति-व्यक्ति का भिन्न मत सम्भव है। इस विषय में सुप्रसिद्ध उक्ति तो यह है ही "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" अर्थात् सत्य बोलो परन्तु अप्रिय सत्य मत बोलो। क्योंकि एक सत्यनिष्ठ वक्ता अनैतिकता और भ्रष्टाचार का धर्म के नाम पर चलने वाले अधर्म का व न्याय के नाम पर चलने वाले अन्याय का खण्डन नहीं करेगा? क्या एक आदर्श अभिनेता दूसरे तथाकथित अभिनेता व अधिकारी के द्वारा

सत्य का शुद्ध रूप नकारात्मक

होने वाले गबन को चुपचाप देखता रहेगा ? अणुव्रत-आन्दोलन ने सत्य के निषेधात्मक रूप को स्थिरता देने का तात्पर्य यह नहीं कि उक्त प्रकार के विधानात्मक सत्यों को बाध्य की सम्भ्रान्त स्थिति में यों ही छोड़ देता है। किन्तु उक्त विषयों पर भी वह एक न्यायपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अप्रिय सत्य और मर्म प्रकाश के विषय में अणुव्रती का मार्ग यह है कि वह कटु-सत्य भी बोलते समय या किसी के गबन का रहस्योद्घाटन करते समय अपने आपको टटोले कि मेरा दृष्टिकोण सामाजिक हित की रक्षा का है या प्रतिपक्ष को गिराने का। दूसरे को हतप्रभ करने की बुद्धि से बोला गया सत्य असत्य से कम नहीं होता।

राजनीति और सत्य

व्यवसायी लोगों ने जैसे आवश्यकता बताकर असत्य को अपने व्यवसाय में प्रश्रय दे रखा है लगता है—राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों ने भी यही रास्ता पकड़ा है। एक दल के व्यक्ति जब राजनैतिक मञ्च पर आकर दूसरे दल पर बोलना आरम्भ करते हैं तब इतने असत्य तक कोई आपत्ति मानते ही नहीं जितना कि जनता में चल सकता है। अपने पक्ष की असत्य श्लाघा व दूसरे पक्ष की असत्य निन्दा वहां अत्यन्त ही सहज होती देखी जाती है। वही वक्ता कुशल माना जाता है जो अपने शब्दों की चादर में लपेट कर अधिक से अधिक असत्य जनता के हृदय तक पहुँचा देता है। दल के लोग दूसरे दल पर ही असत्य का प्रयोग करते हों ऐसी बात नहीं। बहुधा एक बड़े दल में नाना अवान्तर दल देखे जाते हैं वहां की पारस्परिक खींचतान में भी असत्य खुले हाथों बँटता है। स्थितियाँ यहां तक पहुँच जाती हैं कि सत्तारूढ़ पक्ष को तोड़ने के लिए व अपने पक्ष को सत्तारूढ़ बनाने के लिए तटस्थ व दूसरे पक्ष के व्यक्तियों को गुमराह किया जाता है। अमुक अमुक प्रमुख व्यक्ति व अमुक-अमुक सदस्य हमारे पक्ष में आ गए हैं। हमारा पक्ष सत्तारूढ़ होने वाला है। यदि आप हमारे साथी नहीं होंगे तो बनने वाली स्थिति में कोरे के कोरे रह जाएंगे। यही बात उन पाँच सदस्यों को दूसरे पाँच सदस्यों का नाम लेकर कहेंगे और उन पाँचों को इन पाँचों का नाम लेकर। पहले पाँच यह सोच कर कि वे पाँच भी उनके साथ हैं तब तो उनका बहुमत है व हमें भी इनके साथ हो जाना चाहिए। यही बात दूसरे पाँच सोच लेते हैं। तात्पर्य यह होता है कि असत्य बहुमत का प्रचार कर लोग सच्चा बहुमत बनाने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी ऐसे अवैध प्रयत्न सफल भी होते देखे जाते हैं पर वह बिना नींव का प्रासाद आगे चलकर एकाएक ढह जाता है। राजनीति में और भी नाना असत्य हैं।

असत्य के स्थूल आचरण से बहुत सारे राजनीतिक बच भी जाते हैं पर राजनीति में रहकर असत्य से पूर्णतः बच जाना वे स्वयं ही कठिन बताते हैं। बहुत सारे आदर्श पर चलने वाले राजनीतिक हैं, जो अणुव्रत-आन्दोलन में सक्रिय रस लेते हैं। उनका जीवन भी ऐसा मंजा हुआ है कि अणुव्रतों का पालन उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं लगता। अणुव्रती बनने की बात चलने पर उनमें से बहुतों ने कहा—अणुव्रती बनने में हमारे कोई आपत्ति नहीं है केवल सत्य-अणुव्रत का हम यथार्थ पालन नहीं कर सकते क्योंकि हम राजनीतिक क्षेत्र के प्राणी हैं। और उन्होंने बताया कि आज के वातावरण में राजनीतिक झंझटों में कोई भी व्यक्ति पूर्ण सत्य नहीं पर्याप्त सत्य का भी पालन कर सके यह कठिन है।

राजनीतिक क्षेत्र में सत्य किस दुविधा में फंसा है यह उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है। अणुव्रती अनुचित बात को क्षम्य मानकर उसका अनुसरण न करे। एक साधक यह कभी नहीं देखता इस रास्ते में मेरे कितने साथी हैं। वह केवल यही देखेगा मेरा रास्ता सही है न? साधक व्यक्तियों को दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिए कि हम निर्वाचन में सफल हों या न हों किसी दल में रहकर व उससे जुड़कर लाभ उठा सकें या न उठा सकें जीवन के इन तुच्छ प्रलोभनों के उपासक होकर तो नहीं चलेंगे।

शब्द की रक्षा और सत्य की हत्या

सत्य का सम्बन्ध शब्दों से है या भावना से यह एक गम्भीर विषय है। इसमें बड़े-बड़े साधक उलझ जाते हैं। अपनी सत्यप्रियता को बचाने के लिए शब्दों का आश्रय लेते हैं। मेरे शब्द ये हैं—यह उनका नारा-सा बन जाता है किन्तु सत्य की बात यह है कि सत्य का सम्बन्ध शब्दों से अधिक भावना से है। लोग कहते कुछ और करते कुछ हैं फिर अपने ही शब्दों को तोड़-मरोड़ कर उसका दूसरा अर्थ लगाया जाता है। कभी कभी शब्द की मारामारी में सामने वाले व्यक्ति को धोखा भी दिया जा सकता है पर अपनी आत्मा से व सामने वाले व्यक्ति की आत्मा से वह असत्य छिप नहीं सकता। कभी कभी लोग जान बूझ कर द्व्यर्थक भाषा बोल देते हैं फिर जरूरत पड़ने पर अपना इच्छित अर्थ जनता को समझाते हैं यह सब असत्य है वञ्चना है।

कुछ व्यक्ति नियमों के पालन में भी शब्द-प्रधान चिन्तन करते रहते हैं। ऐसे लोग व्रत की आत्मा का हनन करते हैं और कलेवर को उठाए फिरते हैं। व्रत भावना-प्रधान होता है। भावना से ही उसका पालन होना चाहिए। उसके अभाव में बहुधा व्यक्ति नियम-भंग और असत्य-आचरण, ये दो पाप

कमा सके हैं।

व्यावसायिक जगत् में यह एक सर्वमान्य-सी भाषा बन गई है कि व्यापार में सत्य पर डटे रहने से काम नहीं चलता। सत्य का आग्रह रखने वाले अपने व्यवसाय को नहीं चला सकते। यही कारण है व्यावसायिक जगत् में असत्य इतना सहज हो गया है कि लोगों के अनुभव में भी नहीं आता कि हमारे जीवन में असत्य नाम की कोई बुराई है। इस कुसंस्कार के कारण भारतवासियों ने विरासत में मिली सच्चरित्रता के गौरव का बहुत बड़ा भाग खो दिया है। प्रायः सभी कहते हैं—क्या करें ऐसी ही स्थिति है पर सोचना यह है कि स्थिति मनुष्य की स्रष्टा है या मनुष्य स्थिति का। प्रथम तो यह विचार ही मिथ्या है कि असत्य का सहारा लिए बिना व्यावसायिक उन्नति नहीं हो सकती। व्यावसायिक सफलता की दृष्टि से भी सत्य ही श्रेयस्कर है। असत्य पर चलने वाला व्यवसाय आरम्भ में भले ही कुछ अधिक चले पर धीरे धीरे समाप्त होने को होता है। सत्य पर चलने वाला व्यवसाय आरम्भ में भले ही सूक्ष्म रहे किन्तु क्रमशः विस्तृत होता देखा जाता है। यह कहावत असत्य नहीं है Honesty pays in the long run अर्थात् ईमानदारी लम्बी दौड़ में फल देती है।

व्यापार और सत्य

इस विषय में विदेशी लोग भारतवर्ष के लिए उदाहरण बन सकते हैं। उनके व्यवसाय में भारतवासियों की अपेक्षा अब तक कहीं अधिक सत्य व प्रामाणिकता देखी जाती है और वे व्यावसायिक जगत् की उन्नति के शिखर पर भी हैं जबकि असत्य में निष्ठा बनाकर चलने वाले भारतवासी उनसे बहुत पिछड़ हुए हैं। इसलिए इस कथन की कोई यथार्थता नहीं है कि असत्य से व्यापार अधिक फलता फूलता है। बहुत सारे अणुव्रतियों के संस्मरण भी सामने आए हैं जिनमें वे बताते हैं—अणुव्रती होने के बाद हमारे व्यवसाय में चार चांद लग गए हैं। सारे बाजार में विश्वास हो गया है कि यहाँ असत्य-व्यवहार नहीं होता इसलिए ग्राहक सबसे पहले हमारी ही दुकान पर पहुंचते हैं। अतः यह निर्मूल धारणा है कि सत्य का आग्रह व्यापार में बाधक है।

सत्यमेव जयते या सत्यमेव मर्त्यं

सत्य से सफलता मिलती है यह एक गौण पक्ष है। साधक सत्य को सफलता का धर्म मानकर नहीं किन्तु आत्मा का धर्म मानकर अपनाता है। "सत्यमेव जयते" अर्थात् सत्य की ही विजय होती है केवल इसलिए एक साधक सत्य की उपासना न करे क्योंकि यह निष्ठा किसी भी समय डह सकती है। ऐसे प्रसंग हर एक मनुष्य के जीवन में आते रहते हैं जबकि सत्य

दृढ़ रहते भी वह सफलता से वञ्चित रह जाता है। बहुत बार लोगों से यह सुना जाता है, ऐसा सत्य का आग्रह रखने से मुझे इस प्रकार नुकसान उठाना पड़ा या इस प्रकार हार खानी पड़ी। विजय में निष्ठा रखकर सत्य की उपासना करनेवाला व्यक्ति ऐसी स्थिति में एकाएक सत्य को छोड़ देता है। वह इसकी प्रतीक्षा नहीं करता कि सत्य एक लम्बी अवधि के बाद ही फल दिया करता है। इसके बदले साधक की निष्ठा यदि यहाँ केन्द्रित होती है 'सच्चमेव भयवं' अर्थात् सत्य ही भगवान् है या "सच्चं लोगम्मि सारभूयं" सत्य ही लोक में सारभूत है तो वह जीवन के नाना उतार चढ़ावों में भी कभी स्खलित नहीं होती।

क्रय-विक्रय में असत्य वर्तन

क्रय विक्रय में असत्य का प्रसंग अधिकांशतया माप तोल संख्या प्रकार से जुड़ा रहता है। माप में गज फुट इंच आदि का हेर फेर, तोल में वजन की न्यूनाधिकता, संख्या-गिनती में कमी-बेशी और प्रकार (क्वालिटी) में परिवर्तन स्पष्ट व स्थूल असत्य हैं जिन्हें अणुव्रती को अपने व्यवहार में नहीं लाना चाहिए। वस्तु-सापेक्ष भी नाना प्रचलित असत्य [illegible] जो अणुव्रती के लिए वर्जनीय हैं। उनमें भूमि मकान के सम्बन्ध में जैसे—किसी दूसरे व्यक्ति की जमीन व मकान को अपना बताकर उसका पट्टा व खत अपने नाम से बना लेना, दूसरों की अच्छी भूमि व मकान जिसके कुछ हिस्सेदार हों तो अपनी कहकर बेचना, कुआँ मन्दिर धर्मशाला आदि बनाने का व जीर्णोद्धार का झूठा बहाना कर लोगों से चन्दा लेना, अपनी भूमि की कीमत बढ़ाने के लिए असत्य कहना कि अमुक व्यक्ति मेरी भूमि के इतने रुपए कह चुका है, अपने मकान आदि की झूठी रजिस्ट्री करवाकर उसे दूसरे का बताना आदि प्रमुख हैं। पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में जैसे—गाय भैंस घोड़ा ऊँट आदि के वह दोषों (जिसके कारण खरीददार को सोचना पड़े कि मेरे साथ धोखा हुआ है) के सम्बन्ध में असत्य बोलकर बेच देना, दूसरे के पशु को अपना कहकर बेच देना और इसी प्रकार पशुओं की आयु, दूध, प्रसव आदि को अन्यथा बताकर बेच देना आदि प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। इस प्रकार माप तोल संख्या प्रकार आदि को लेकर तत्सदृश अनेकों असत्य हैं जो शब्दों में बाँधे नहीं जा सकते। उस प्रकार के किसी भी असत्य को अणुव्रती भावना से समझ कर छोड़ता रहे।

न्याय-व्यवस्था और सत्य

लोग कहते हैं व्यवसाय में तो फिर भी व्यक्ति असत्य से बहुत कुछ बच सकता है, पर न्यायालयों में जाकर तो असत्य से बचना नितान्त असम्भव है। लोगों का कथन एक दम निराधार है, ऐसा नहीं लगता। आज की न्याय-व्यवस्था अनुभूति

प्रधान नहीं तर्क प्रधान है। न्यायाधीश की अनुभूति कुछ भी बोलती हो उसे तर्क समर्थित पक्ष को सत्य मानना होगा। न्यायालय में सत्य की गवेषणा गौण और वकीलों का बुद्धि-व्यायाम प्रबल देखा जाता है। अभियुक्त कितना ही सत्य हो उसे सत्य को प्रमाणित करने के लिए गवाह चाहिए। यदि घटनास्थल पर कोई था ही नहीं तो गवाह कौन होगा? पर न्याय-व्यवस्था विवश करती है और वह झूठे गवाह करके लाता है। गवाह यदि असत्य गवाही देने में चतुर है तो अभियुक्त सत्य फैसला पा लेता है नहीं तो उसे असत्य निर्णय ही भोगना पड़ता है।

थैली लाल भी और धोली भी

वकीलों का बुद्धि-व्यायाम असत्य की सुरक्षा में सफल हो जाता है। लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं। एक बार की घटना है। एक आदमी ने एक दूसरे आदमी पर १०००) का दावा किया। दूसरे व्यक्ति ने रुपए वापिस नहीं दिए, पर वकील की सलाह से उसने यही बयान दिए, मैंने अमुक तिथि के दिन इसके १०००) रुपए वापिस कर दिए। अगली तारीख पर झूठे गवाह उपस्थित किए गए। वकील ने कैसे बोलना इसकी सारी तरकीब बतादी थी और कह दिया—थैली से रुपए निकाल कर उसे वापिस देते हुए हमने आँखों से देखा यह सभी गवाहों को एक ही प्रकार से कहना है। पर न्यायाधीश ने पहले गवाह से ही एक अचूक प्रश्न कर लिया। उसने गवाह से पूछा, बोलो भैया! उस थैली का रंग कैसा था? गवाह को इस विषय में कुछ बताया नहीं गया था। उसने कहा—लाल। दूसरे गवाह को न्यायाधीश ने अन्य प्रश्नों के बीच में यही प्रश्न कर लिया थैली कैसे रंग की थी? वह बोल पड़ा—धोली थी। वकील ने देखा हमारे गवाह तो नकली साबित हो गए। उसने अपने तीसरे गवाह को नए सिरे से पक्का कर उपस्थित किया। उससे भी न्यायाधीश ने पूछा—थैली कैसी थी? वह बोला—महोदय एक ओर से लाल थी और एक ओर से धोली। तात्पर्य यह हुआ कि तीसरे झूठे गवाह ने पिछले दो झूठे गवाहों को भी सच्चा कर दिया। न्यायाधीश की आत्मा कुछ भी कहे वह इन गवाहों को झूठा करार नहीं दे सकता। यह है आज की न्याय-व्यवस्था में सत्य की दुर्दशा। मामला जीतने के लिए सत्यवादी होना इतना महत्त्व नहीं रखता जितना असत्य बोलने में कलाकार होना।

असत्य निर्णय

निर्णय देने का सम्बन्ध मुख्यतया न्यायाधीश व पंचों से है। एक अणुव्रती न्यायाधीश व पंच किसी के प्रति अन्याय पूर्ण फैसला नहीं दे सकता। उस पर रिश्वत अपने निजी व्यक्ति का पक्षपात या किसी बड़े आदमी की सिफारिश

आदि के प्रभाव नहीं पड़ने चाहिए।

वास्तव में वर्तमान न्याय-व्यवस्था की कठिनाइयों से लोग पूर्णतः ऊब गए हैं। भले आदमी जहाँ तक सम्भव हो न्यायालय का मुँह भी नहीं देखना चाहते। समाज में यदि अणुव्रतियों का प्रभाव बढ़ा तो वे एक बहुत बड़े कार्य की पूर्ति कर सकेंगे। अब तक भी बहुत सारे अणुव्रती बहुत से प्रसंगों पर पंच माने गए हैं और उनके तटस्थ निर्णय से जनता में सन्तोष भी हुआ है। जनता से कभी-कभी सुझाव भी आते हैं कि विचारक अणुव्रतियों का एक आरबिट्रेशन बोर्ड (पंचायत) स्थापित होना चाहिए, जो जन-साधारण के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करता रहे। इसमें सन्देह नहीं, यदि ऐसा हुआ और अणुव्रती अपनी प्रामाणिकता का ध्यान रखते रहे तो लोग न्याया लय की व्याधि से बहुत कुछ बच सकते हैं।

असत्य साक्षी व असत्य मामला

न्यायालयों की जटिल व्यवस्था के कारण झूठी गवाही का भी एक स्वतन्त्र धंधा बनता जा रहा है। यह समाज और न्याय व्यवस्था के लिए कलंक की बात है। अणुव्रती के सामने भी यह एक समस्या है। सत्य उसका आदर्श है, तथापि प्रस्तुत स्थिति में उसकी साधना कहीं-कहीं जटिल हो जाती है। यह तो निर्वि वाद है कि अणुव्रती किसी झूठे पक्ष को सिद्ध करने के लिए गवाह न बनाए। समस्या वहाँ उत्पन्न होती है कि अणुव्रती स्वयं व उसका पक्ष सत्य है, किन्तु उस सत्य को प्रमाणित करने में कहीं कहीं यत्किंचित् असत्य की अनिवार्य अपेक्षा सी हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह क्या करे? आदर्श तो यह है कि वह अपनी बड़ी से बड़ी क्षति के लिए भी असत्य का तनिक भी आश्रय न ले। ऐसा शक्य न हो तो यथा सम्भव वह असत्य से बचने के लिए प्रयत्नशील रहे।

अणुव्रती को मर्मकारी साक्षी नहीं देनी चाहिए। मर्मकारी का सम्बन्ध में महलोग समझते हैं—जिससे किसी को मृत्यु-दण्ड होता हो पर ऐसा और इसी प्रकार है। जहाँ विपक्षी मुराद मस्त है उसके विषय में जानबूझ कर देना आदि प्रभृ देना मर्मकारी साक्षी के अन्तगत आ जाता है।

को लेकर लम्बोर्ट इस विषय में एक प्रश्न तक उपस्थित किया करते हैं। प्रकार के किसी अणुव्रती का नियम है—असत्य साक्षी न देना पर जब ऐसी लोग कहअणुव्रती की असत्य साक्षी न किसी का मृत्यु-दण्ड टलता हो तो

रे? ऐसे प्रश्न और उनके समाधानों का जीवन-व्यवहार में

न्याय-व्यवस्था और ...

अर्थ नहीं रहता। सहस्रों व्यक्तियों में यदि एक साथ पूछा जाए तो कभी ऐसा प्रसंग आया है तो सम्भवतः सबका

यही उत्तर होगा कभी नहीं आया। बहुधा ऐसे प्रश्न सत्य को विघटित करने के लिए ही गढ़े जाते हैं। जरा सोचने से तो स्पष्ट यही लगेगा कि ऐसा निश्चय हो ही कैसे सकता है कि अमुक की असत्य गवाही से अमुक की मृत्यु सदा टल ही जाएगी। साथ-साथ असत्य बोलने में वक्ता का आत्महनन तो निश्चित है ही।

असत्य मामला खड़ा करना अणुव्रती क्या किसी भी नागरिक के लिए अवाञ्छनीय है। फिर भी आजकल यह मनोवृत्ति बहुत बार देखी जाती है। अमुक व्यक्ति मेरे पर मामला करेगा इसलिए उस पर एक झूठा मामला पहले ही मैं क्यों न लगा दूं ताकि फिर दोनों का निपटारा सुगमता से हो सकेगा। कभी-कभी किसी व्यक्ति को तंग करने के लिए भी उस पर झूठा मामला लगा दिया जाता है। अणुव्रती ऐसे मामलों में न तो रस ले और न किसी को ऐसा मामला करने की सम्मति भी दे।

असत्य मामले की तरह अर्द्ध सत्य मामले का भी एक प्रकार होता है। कोई व्यक्ति किसी से २१ ००) रुपए मांगता है। ४००००) रुपए का दावा उस पर कर देता है ताकि आगे मामले की हार-जीत में वह उससे लाभ उठा सके। अणुव्रती के लिए यह मार्ग भी अवाञ्छनीय है।

किसी व्यक्ति के मार्मिक रहस्य को प्रगट करना एक महान् हिंसा है। समय समय पर इससे बड़े अनर्थ भी हो जाया करते हैं। कभी कभी मर्म-प्रकाश न करने में भी सामूहिक अहित उपस्थित हो जाता है। उदाहरणार्थ—एक अधिकारी या मन्त्री (Minister) रिश्वत लेता है या गबन करता है। ऐसी स्थिति में चुप रहना एक सामाजिक अन्याय माना गया है। इसलिए अणुव्रती के मर्म-प्रकाश का हेतु व्यक्तिगत स्वार्थ या द्वेष नहीं होना चाहिए। साधारणतया तो बहुत सारे व्यक्ति केवल मनोविनोद के लिए दूसरों के चरित्र की अवाञ्छनीय घटनाएं प्रकाश में लाते रहते हैं। यह आध्यात्मिक और सामाजिक दोनों पक्षों में बुरा है। आध्यात्मिक पक्ष में तो ऐसी प्रवृत्तियों से प्रमाद बढ़ता है और सामाजिक पक्ष में गन्दी व अश्लील घटनाओं का जन-जन के सामने आना अश्रेयस्कर है ही। आधुनिक मनोविज्ञान बताता है अश्लील व अभद्र घटनाओं को किसी अच्छे उद्देश्य से भी समाज में प्रसारित नहीं करना चाहिए। क्योंकि वे बहुतों के मानस पर बुरी प्रतिक्रिया अंकित कर जाती हैं।

किसी अन्य की वस्तु जो उसके आग्रह पर सुरक्षा के लिए अपने पास रख ली जाती है वह धरोहर कहलाती है। जो जमीन मकान गहना आदि आवश्यकता वश किसी से रुपए लेकर अस्थायी रूप से उसके हस्तगत कर दिए जाते हैं,

धरोहर और बंधक वस्तु

इस शर्त पर कि जब रुपए वापिस करूंगा अपनी वस्तु वापिस लूंगा बंधक वस्तु कहलाती है। धरोहर या बन्धक-वस्तु को लेकर समाज में आए दिन झगड़े होते रहते हैं। अणुव्रती का व्यवहार विश्वस्त होना चाहिए। वह किसी धरोहर या बन्धक वस्तु को लौटाने से इन्कार नहीं कर सकता। कानून की दृष्टि से भी कहीं कहीं बचाव होता है पर ऐसे सम्बन्धों में लोक-व्यवहार का भी ध्यान रखना अणुव्रती के लिए आवश्यक है। जैसे किसी व्यक्ति ने अणुव्रती के पास गहना रखा। गहने की कीमत उसके लिए रुपयों से दुगुनी चौगुनी है। निश्चित अवधि तक वह व्यक्ति अणुव्रती को रुपए नहीं दे सका। अवधि समाप्त होने से वह अपनी वस्तु मांगने का कोई अधिकार नहीं रखता। अवधि के कुछ पश्चात् ही वह अपनी वस्तु को रुपए देकर लेना चाहता है। ऐसी स्थिति में कानून की बात आगे रखकर उसकी दुगुनी चौगुनी धन-राशि को रोक लेना अपहरण की कोटि में आ जाता है। लोक-व्यवहार में अपवाद का हेतु भी है।

कभी-कभी ऐसा होता है बन्धक की अवधि समाप्त हो जाती है रखने वाला उसे बार-बार सूचित भी कर देता है कि अब मैं तुम्हारी बंधक को बेच रहा हूँ और उसे बेच देनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में भी मय ब्याज के मूल से अधिक रुपए अपने मानकर रख लेना भी अनैतिकता की कोटि में है।

धरोहर रखने का भी समाज में अधिक प्रचलन है। क्योंकि इसके बिना काम नहीं चलता। जहाँ व्यक्ति अपने ग्राम से दूसरे ग्राम जाता है उसे अपनी बहुमूल्य वस्तुएं किसी मित्र व सगे सम्बन्धी को सम्भलानी ही पड़ती हैं। प्रेम व विश्वास के वातावरण में ऐसी चीजों के लिए कोई लिखा पढ़ी नहीं हुआ करती। ऐसी स्थिति में धरोहर रखने वाले का भी मन चल जाता है तो वह वस्तु देने से इन्कार हो जाता है। कानून वहाँ कोई काम नहीं करता। वह एक घोर विश्वासघात होता है। अणुव्रती का आदर्श तो यहाँ तक अनिवार्य है कि धरोहर रखने वाला व्यक्ति स्वयं मर गया उसके वारिसों को उसका कुछ भी पता नहीं तो भी अणुव्रती उस धरोहर को अपनी न करे।

हस्ताक्षर मनुष्य की सहमति का अनन्य प्रमाण है। प्रमाण भी वह इसलिए माना गया है कि एक व्यक्ति की लिपि दूसरे व्यक्ति
जाली हस्ताक्षर से पूर्णतः कभी नहीं मिलती जैसे कि एक मनुष्य का चेहरा दूसरे मनुष्य से। न्यायालय बैंक बही-खातों के हस्ताक्षर सर्वत्र प्रमाण माने जाते हैं पर अनैतिक लोग समाज के किसी मान-दण्ड को स्वस्थ नहीं रहने देते। हर सदाचार की ओट में दुराचार खड़ा कर देते हैं। भारतीय संस्कृति में साधु, सदाचार का उत्कृष्ट रूप एवं पूजनीय होता है। दुष्ट

लोगों ने उस चेक को भी ठगबाजी का साधन बना लिया है। हस्ताक्षरों की भी यही बात है। जाली हस्ताक्षरों के नाना रूप बन गए हैं। उन जाली हस्ताक्षरों से न्यायालय बैंक आदि को खूब धोखा दिया जाता है। लोग पकड़े भी जाते हैं दण्डित भी होते हैं फिर भी आदत से लाचार। अणुव्रती इस प्रकार के कार्यों से कोसों दूर रहेगा।

जाली हस्ताक्षर दो तरह से चलते हैं। एक तो जैसे कि ऊपर बताया गया—तन्मय लिपि बना लेना, दूसरा किसी के नाम से अपना दस्तखत कर देना। दूसरा प्रकार दो तरह का होता है—एक तो दुर्बुद्धिपूर्वक धोखा देने का और दूसरा सामान्य व्यवहार-साधन का। उदाहरणार्थ—किसी व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसके पुत्र, भाई, मुनीम आदि बहुत प्रसंगों पर हस्ताक्षर करते हैं। वहाँ यह समझ रहती है, हस्ताक्षर करने वाले व जिसके लिए किए जाते हैं उन दोनों पक्षों का उसमें विरोध व असन्तोष नहीं है, अतः उक्त उपक्रम जालसाजी में नहीं आता।

झूठा खत या दस्तावेज

तथाप्रकार की अनैतिकताओं में झूठा खत या दस्तावेज लिखवाने की अनैतिकता भी प्रमुख है। आज का मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि जहाँ एक सामाजिकता के नाते किसी विपत्ति में पड़े मनुष्य की सहायता करना उसका एक व्यवहार होता है वहाँ वह ऐसे अवसरों में भी आपत्ति के आपदा भी व अपने स्वार्थ-पोषण की बात सोचता है। एक व्यक्ति जिसे १००) रुपयों की अनिवार्य आवश्यकता हुई है। उसकी प्रतिष्ठा व जीवन-व्यवहार खतरे में है। वह किसी परिचित से ऋण के रूप में उतना द्रव्य लेने जाता है। समाज के कलंक स्वरूप ऐसे व्यक्ति बहुत मिलते हैं जो उसे पाँच सौ देकर हजार का खत लिखवाते हैं। बेचारा मुसीबत में फंसा होता है सब कुछ लिख देता है। निश्चित अवधि तक वह हजार रुपये नहीं चुका सकता तो येन केन प्रकारेण उसके घर, दुकान आदि नीलाम करके भी रुपये वसूल किए जाते हैं। सभ्यता व सदाचरण के इस युग में यह घोर अनैतिकता है। समाज में ऐसी घटनाएं कदाचित् ही होती हों ऐसी बात भी नहीं है। बहुत सारे लोगों का तो व्यापार ही यही बन गया है। इससे गरीब व ग्रामीण लोगों का असीम शोषण होता है।

ऐसी चिट्ठियां लिखाने वालों में भी दो प्रकार के लोग होते हैं। एक वास्तविक गरीबी वाले व दूसरे दुर्व्यसनी। माता-पिता धनवान हैं, लड़के दुर्व्यसनी हैं, उन्हें दुर्व्यसन में उड़ाने के लिए धन चाहिए। आवश्यकता प्रखर होने पर वे स्वयं हजार लिखकर पाँच सौ लेने को तैयार होते हैं। इतना ही नहीं कभी कभी वे युवक इस बात पर भी रुपए लेते हैं—"माँ के मरते ही चुकाना व बाप

के मरते ही चौगुना दूँगा।" अणुव्रती किसी भी स्थिति में झूठे खत न लिखे न लिखवाए।

जाली सिक्का और नोट

सिक्का समाज-व्यवहार का एक अभिन्न पहलू है। करेंसी से निकला हुआ ही वह प्रामाणिक होता है। करेंसी का भरसक प्रयत्न रहता है तत्सम दूसरा सिक्का बन ही न सके पर आखिर मनुष्य की कृति पर मनुष्य विजय पा सकता है। जाली सिक्का व नोटों का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है। आए दिन ऐसे ऐसे व्यक्ति व गिरोह पकड़े जाते हैं। पटना में एक बार पाँच व्यक्तियों का एक गिरोह इस अपराध में पकड़ा गया। एक अभियुक्त के बयान से पता चला वे जाली नोट बनाने वाले एक अन्तर्राष्ट्रीय गिरोह से सम्बन्धित हैं। वह गिरोह अब तक इक्कीस करोड़ के जाली नोट चला चुका[1] है। अस्तु, अणुव्रती ऐसे काम करना तो दूर, ऐसे व्यक्ति व गिरोह को एतद् सम्बन्धी योग-दान भी नहीं कर सकता।

मिथ्या प्रमाण पत्र

झूठे प्रमाण-पत्र (Certificates) का सम्बन्ध मुख्यतः मास्टर, डाक्टर आदि व्यक्तियों से होता है। पर वैसे उन सभी व्यक्तियों से उसका सम्बन्ध है जिनका प्रमाण-पत्र कहीं भी चलता हो। असत्य प्रमाण-पत्र देने के मुख्य कारण हैं—रिश्वत दबाव सिफारिश निजीपन आदि। अणुव्रती किसी भी उक्त प्रकार के कारण से किसी को भी असत्य प्रमाण-पत्र न दे।

मिथ्या विज्ञापन

लोग कहते हैं आज की दुनिया विज्ञापन की है। जो जितना अधिक विज्ञापन कर सकता है वह उतना ही अधिक अपने व्यवसाय में सफल हो सकता है। इसी सफलता के नाम पर आज विज्ञापन असत्य ज्ञापन हो रहा है। अपनी वस्तु का लोगों को परिचय देना व वह परिचय अच्छे ढंग से देना कोई अनीति की बात नहीं है। पर इस प्रवृत्ति में अनैतिकता यहाँ तक बढ़ गई है कि लोग असत्य प्राय व मानव-जाति के लिए अहितकर पदार्थों का भी विज्ञापन करने में लाखों रुपये खर्च करते हैं। अणुव्रती इस विषय में अपनी प्रामाणिकता समझे। अतिश योक्ति पूर्ण असत्य-बहुल विज्ञापन उसके लिए वर्जनीय है।

अनैतिकता की महामारी इतनी बढ़ चली है कि विद्यालयों में पढ़ने वाले सुबोध बालक भी उससे आक्रान्त हो गए हैं। इस महामारी से उनका बचना जरूरी है। बालक भावी समाज की ईंट हैं। उन पर ही भविष्य की

---

1 नवभारत टाइम्स ३ नवम्बर १९५२ बम्बई।

प्रासाद खड़ा होने वाला है। यदि भावी प्रासाद की मूलभूत ईंट ही जर्जरित एक खोखली रहेगी तो तुम्हारे भविष्य की क्या आशा की जा सकती है। आज प्रति-वर्ष प्राइमरी हाईस्कूलों तथा कॉलिजों में सहस्रों विद्यार्थी उत्तीर्ण होने के लिए अवैध प्रयत्न करते हुए पकड़े जाते हैं। कुछ परीक्षा में जाते समय किसी प्रकार छिपा करके संकेत-पत्र ले जाते हैं और कुछ वहाँ बैठ कर परस्पर नकल करने का प्रयत्न करते हैं। यह बीमारी यहाँ तक भी बढ़ गई है कि कहीं-कहीं एक छात्र के बदले दूसरा छात्र भी परीक्षा देने चला जाता है। विद्यार्थियों में और भी नाना रहस्य मय प्रकार इस सम्बन्ध में प्रचलित हो चले हैं। विद्यार्थी-जीवन के लिए यह एक कलंक की बात है। इसका प्रतिकार स्वयं विद्यार्थियों द्वारा ही हो यही एक मात्र रास्ता अब बच गया है। व्यवस्थापकों की सावधानी दिन प्रतिदिन बढ़ती जारही है फिर भी वह विद्यार्थियों की चालाकी से बहुत पीछे है।

परीक्षा और अवैध प्रयत्न

पिछले वर्ष की घटना है। एक स्कूल में विद्यार्थियों की परीक्षा चल रही थी। एक बाहर का लड़का निरीक्षक अध्यापक के पास आया और बोला—मेरा भाई परीक्षा में बैठा है। शीघ्रतावश बिना कुछ खाए पिए चला आया है। उसके लिए मैं यह दूध का ग्लास व बिस्किट लाया हूँ। बड़ी कृपा होगी यदि आप यह सब उसके पास पहुँचा दें। अध्यापक उदार था। दूध का गिलास व बिस्किट अपने हाथों में लेकर उसे देने के लिए चला। रास्ते में अचानक उसके हाथों से एक मक्खनी बिस्किट गिर पड़ा। गिरने से दो बिस्किट अलग अलग हो गए। दोनों के बीच में एक कागज था। जिसे मास्टर ने उठा कर देखा तो उसमें चालू परीक्षा सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर थे। मास्टर बोला—इतने दिन कहा जाता था कि पाप का घड़ा फूट जाता है पर यह आज पता चला कि पाप का बिस्किट भी टूट जाता है। अस्तु, आवश्यकता है विद्यार्थी स्वयं अपने आपको सम्भालें और शुद्ध प्रतिभा का इस प्रकार दुरुपयोग न करें।

विद्यार्थी के जीवन में बहुत सारी महत्त्वाकाङ्क्षाएं होती हैं—मैं एक असाधारण कवि बनूँ एक अप्रतिम राजनीतिज्ञ बनूँ और देश के गौरव को ऊँचा करने वाला एक वैज्ञानिक बनूँ किन्तु सब महत्त्वाकाङ्क्षाएं तथाप्रकार के दुरुपयोग से देखते देखते ध्वस्त हो जाती हैं। ऐसे बालकों का जीवन चौर्य और मायाचार से भर जाता है और अपने असफल जीवन में इधर उधर भटकते रह जाते हैं। उक्त प्रकार की महत्त्वाकाङ्क्षाओं के फलित होने में सत् परिश्रम व बुद्धि का सदुपयोग ही एक मात्र हेतु बन सकता है।

विद्यार्थी जीवन में नाना प्रकार की बुराइयाँ आ कैसे जाती हैं, यह एक प्रश्न है ? उसके नाना कारण हैं। प्राचीनकाल में विद्यार्थी-समूह नैतिक

का प्रयत्न करते हैं। अध्यापक-जीवन के लिए इससे बढ़कर और क्या अनैतिकता हो सकती है? जिस अध्यापक के हाथ में देश और समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति होकर विद्यार्थी आता है उस बालक को अवैध प्रयत्न से उत्तीर्ण करके अध्यापक अपना आरम हलका करता है विद्यार्थी को भविष्य के लिए वञ्चना का मार्ग बताता है और देश व समाज के साथ एक गद्दारी करता है। क्योंकि वह देश व समाज की एक बहुमूल्य सम्पत्ति को बिगाड़ता है। बहुत कम आशा है जो बालक एक या दो बार इस प्रकार के सहयोग से उत्तीर्ण हो जाता है वह आगे चलकर परिश्रमशील रह सके व जीवन में कोई सात्त्विक विकास कर सके।

अणुव्रती अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिए स्वयं एक पुस्तक होगा। अध्यापक किसी विशेष उपक्रम से जैसे विद्यार्थियों को वञ्चना सिखाने में हेतुभूत हो जाता है, वैसे ही वह अपने आचरण से भी हो जाता है। अध्यापक धूम्रपान करता है यह कैसे हो सकता है विद्यार्थी उससे बचा रहे। इस प्रकार पाठ्यक्रम की पुस्तकों से भी बढ़कर अध्यापकों के जीवन से प्रेरणाएं मिलती हैं। अपेक्षा तो ऐसी लगती है बालकों के जीवन को नैतिक व आदर्श बनाने के लिए हर एक अध्यापक अणुव्रती या उस प्रकार के आदर्शों पर चलने वाला ही हो।

पत्रकार व अनैतिकता

पत्र पत्रिकाएं आज के मनुष्य की खुराक हैं। बिछौने से उठते ही शारीरिक खुराक चाय और मानसिक खुराक समाचार पत्र होते हैं। प्राचीनकाल में प्रातःकाल का समय शास्त्र-स्वाध्याय के लिए होता था। उठते ही नित्य-कर्म से निवृत्त होकर लोग गीता रामायण आदि का वाचन करते स्वाध्याय-चिन्तन करते व मन्त्र-स्मरण करते। धीरे-धीरे आज वह स्थान पत्र-पत्रिकाएं ले रही हैं। पत्रकारों को यह भूलना नहीं है, जन जन के जीवन में सत् प्रेरणाएं देने का दायित्व जो शास्त्रीय साहित्य का था वह अब व
का होने लगा है। पत्रकारों का यह सोचना है
को इसके उपयुक्त बना सकेंगे? पत्रकारों का काम
हो जाता कि कल दिन में होने वाली चोरी
अन्यान्य दुर्घटनाएं प्रातःकाल होते ही जनता के सामने
जनता के सामने न भी आएं तो कोई बृहत् हानि
जनता को आवश्यकता है—नैतिक पाथेय की।

सभी सामाजिक पहलुओं में अनैतिकता हो
रह सके यह कैसे सम्भव था। आदर्श की छाया में

और धार्मिक दृष्टि से इतना पवित्र समझा जाता था कि उसको ब्रह्मचारी संज्ञा से सम्बोधित किया जाता था। जिसका अर्थ ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करने का व्रतधारी समझा जाता था। छात्रावस्था केवल उस ज्ञान के लिए ही नहीं होती थी किन्तु उसमें संयमी होकर इस लोक व पर लोक के सुधरने की साधना भी की जाती थी। उस समय के विद्यार्थी अधिकांशतया ग्राम और नगर के दूषित वातावरण से दूर गुरुकुलों में शिक्षा-ग्रहण करते थे। शिक्षा के विषय में आज वह व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थी अपने घर, मुहल्लों बाजार व सिनेमा आदि के दूषित वातावरण में पलता है। व्यवस्था के अनुसार वह ४-६ घन्टे अध्यापकों के वातावरण में रहता है। शेष समय वह क्या करता है? उसके लिए कोई जिम्मेवार नहीं। विद्यार्थी माता-पिता और अध्यापक इन दो संरक्षणों में आवारा बन जाता है। उसके समग्र जीवन के संरक्षक व्यवस्था के अनुसार न माता-पिता रह सकते हैं न अध्यापक। यह एक असाधारण हेतु है कि बालकों के मस्तिष्क में भी समाज के चारों ओर के अनैतिक वातावरण से नाना दुर्बुद्धियाँ घर कर लेती हैं और अपने शिक्षा विकास के साथ साथ वे अन्यथा विकास भी करते जाते हैं। समस्या जटिल हो जाती है।

वर्तमान वातावरण से बालकों में अनैतिकता आती है और वे ही जब आगे चलकर समाज के कर्णधार बनते हैं तब अनैतिकता समाज में पुनः आ जाती है। फिर भी सुधार आवश्यक है। सोचना है वह कहाँ से शुरू हो। प्राचीनकाल की तरह पढ़ने के लिए बालकों को जंगल में खदेड़ देना भी पर्याप्त समाधान नहीं है। आज की पीढ़ी जिसमें बालकों के अध्यापक माता-पिता व अन्य सामाजिकजन आ जाते हैं पहले वे स्वयं सुधरें। बचकानापूर्ण व्यवहारों से वे दूर रहें तो बालकों के आचरण स्वतः स्वस्थ रह सकेंगे।

दूसरा मार्ग है—बालक स्वयं अपने अनुशासक बनें। किसी भी काम को करते समय वे यह सोचें मेरे अभिभावक या अध्यापक-जन सामने होते तो मैं यह करता या नहीं। यदि आत्मा से उत्तर मिलता है—नहीं तो वे उस काम को न करें। इससे वे आवारा नहीं बनेंगे और गुरुजनों की स्मृति उनका पथ प्रदर्शन करती रहेगी। अणुव्रती विद्यार्थी इस दिशा में पहल करें, यह अत्यन्त अपेक्षित है।

अध्यापक और अवैध सहयोग

विद्यार्थियों की दुष्प्रवृत्ति में अध्यापक भी कभी कभी योगभूत देखे जाते हैं यह तो और भी दुःख की बात है। रिश्वत लेकर, किसी की सिफारिश से व अपनी ट्यूशन की आय बढ़ाने के लिए अध्यापक अवैध प्रयत्नों से किसी विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने

और धार्मिक दृष्टि से इतना पवित्र समझा जाता था कि उसको ब्रह्मचारी संज्ञा से सम्बोधित किया जाता था। जिसका अर्थ ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करने का अधिकारी समझा जाता था। छात्रावस्था केवल ग्रन्थ ज्ञान के लिए ही नहीं होती थी किन्तु उसमें संयमी होकर इस लोक व पर लोक के सुधारने की साधना भी की जाती थी। उस समय के विद्यार्थी अधिकांशतया ग्राम और नगर के दूषित वातावरण से दूर गुरुकुलों में शिक्षा-ग्रहण करते थे। शिक्षा के विषय में आज वह व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थी अपने घर, मुहल्लों बाजार व सिनेमा आदि के दूषित वातावरण में पलता है। व्यवस्था के अनुसार वह ४-५ घन्टे अध्यापकों के वातावरण में रहता है। शेष समय वह क्या करता है? उसके लिए कोई जिम्मेवार नहीं। विद्यार्थी माता-पिता और अध्यापक इन दो संरक्षणों में आवारा बन जाता है। उसके समग्र जीवन के संरक्षक व्यवस्था के अनुसार न माता पिता रह सकते हैं न अध्यापक। यह एक असाधारण हेतु है कि बालकों के मस्तिष्क में भी समाज के चारों ओर के अनैतिक वातावरण से नाना दुर्बुद्धियां घर कर लेती हैं और अपने शिक्षा विकास के साथ साथ वे कल्पना विकास भी करते जाते हैं। समस्या जटिल हो जाती है।

वर्तमान वातावरण से बालकों में अनैतिकता आती है और वे ही जब आगे चलकर समाज के कर्णधार बनते हैं तब अनैतिकता समाज में पुनः आ जाती है। फिर भी सुधार आवश्यक है। सोचना है, वह कहाँ से शुरू हो। प्राचीनकाल की तरह पढ़ने के लिए बालकों को जंगल में छोड़ देना भी पर्याप्त समाधान नहीं है। आज की पीढ़ी जिसमें बालकों के अध्यापक माता-पिता व अन्य सामाजिकजन आ जाते हैं पहले वे स्वयं सुधरें। कल्पनापूर्ण व्यवहारों से वे दूर रहें तो बालकों के आचरण स्वतः स्वस्थ रह सकेंगे।

दूसरा मार्ग है—बालक स्वयं अपने अनुशासक बनें। किसी भी काम को करते समय वे यह सोचें मेरे अभिभावक या अध्यापक-गण सामने होते तो मैं यह करता या नहीं। यदि आत्मा से उत्तर मिलता है—नहीं तो वे उस काम को न करें। इससे वे आवारा नहीं बनेंगे और दुष्कर्मों की स्मृति उनका पथ प्रदर्शन करती रहेगी। अणुव्रती विद्यार्थी इस दिशा में पहल करें, यह अत्यन्त अपेक्षित है।

अध्यापक और अवैध सहयोग

विद्यार्थियों की दुष्प्रवृत्ति में अध्यापक भी कभी कभी योगभूत देखे जाते हैं यह तो और भी दुःख की बात है। रिश्वत लेकर, किसी की सिफारिश से व अपनी ट्यूशन की लाज बचाने के लिए अध्यापक अवैध प्रयत्नों से किसी विद्यार्थी को उत्तीर्ण करते

का प्रयत्न करते हैं। अध्यापक-जीवन के लिए इससे बढ़कर और क्या अनैतिकता हो सकती है? जिस अध्यापक के हाथ में देश और समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति होकर विद्यार्थी आता है उस बालक को अवैध प्रयत्न से उत्तीर्ण करके अध्यापक अपना आत्म हनन करता है विद्यार्थी को भविष्य के लिए वञ्चना का मार्ग बताता है और देश व समाज के साथ एक गद्दारी करता है। क्योंकि वह देश व समाज की एक बहुमूल्य सम्पत्ति को बिगाड़ता है। बहुत कम आशा है जो बालक एक या दो बार इस प्रकार के सहयोग से उत्तीर्ण हो जाता है वह आगे चलकर परिश्रमशील रह सके व जीवन में कोई वास्तविक विकास कर सके।

अणुव्रती अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिए स्वयं एक पुस्तक होगा। अध्यापक किसी विशेष उपक्रम से जैसे विद्यार्थियों को वञ्चना सिखाने में हेतुभूत हो जाता है वैसे ही वह अपने आचरण से भी हो जाता है। अध्यापक धूम्रपान करता है यह कैसे हो सकता है विद्यार्थी उससे बचा रहे। इस प्रकार पाठ्यक्रम की पुस्तकों से भी बढ़कर अध्यापकों के जीवन से प्रेरणाएं मिलती हैं। अपेक्षा तो ऐसी लगती है बालकों के जीवन को नैतिक व आदर्श बनाने के लिए हर एक अध्यापक अणुव्रती या उस प्रकार के आदर्श पर चलने वाला ही हो।

पत्रकार व अनैतिकता

पत्र पत्रिकाएं आज के मनुष्य की खुराक हैं। बिछौने से उठते ही शारीरिक खुराक चाय और मानसिक खुराक समाचार पत्र होते हैं। प्राचीनकाल में प्रातःकाल का समय शास्त्र-स्वाध्याय के लिए होता था। उठते ही नित्य-कर्म से निवृत्त होकर लोग गीता रामायण आदि का वाचन करते तथा ध्यान-चिन्तन करते व सूत्र-श्रवण करते। धीरे-धीरे आज वह स्थान पत्र-पत्रिकाएं ले रही हैं। पत्रकारों को यह भूलना नहीं है जन-जन के जीवन में सत् प्रेरणाएं देने का दायित्व जो शास्त्रीय साहित्य का था वह अब पत्र-पत्रिकाओं का होने लगा है। पत्रकारों को यह सोचना है क्या वे अपने पत्र-पत्रिकाओं को इसके उपयुक्त बना सकेंगे? पत्रकारों का काम केवल यहीं समाप्त नहीं हो जाता कि सब दिन में होने वाली चोरी डकैती हत्या अग्निकाण्ड व अन्यान्य दुर्घटनाएं प्रातःकाल होते ही जनता के सामने रख सकें। ये बातें तो जनता के सामने न भी आएं तो कोई बृहत् क्षति होने वाली नहीं है। आज जनता को आवश्यकता है—नैतिक पाथेय की।

सभी सामाजिक पहलुओं में अनैतिकता हो और पत्रकारिता अछूती रह सके, यह कैसे सम्भव था। स्वार्थ की छाया में अनात्म सदा चलता ही

और चारित्रिक दृष्टि से इतना पवित्र समझा जाता था कि उसको ब्रह्मचारी संज्ञा से सम्बोधित किया जाता था। जिसका अर्थ ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करने का व्रतधारी बताया जाता था। छात्रावस्था केवल ज्ञानार्जन के लिए ही नहीं होती थी किन्तु उसमें संयमी होकर इस लोक व परलोक के सुधरने की साधना भी की जाती थी। उस समय के विद्यार्थी अधिकांशतया ग्राम और नगर के दूषित वातावरण से दूर गुरुकुलों में शिक्षा-ग्रहण करते थे। शिक्षा के विषय में आज वह व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थी अपने घर, मुहल्लों बाजार व सिनेमा आदि के दूषित वातावरण में पलता है। व्यवस्था के अनुसार वह ४-६ घण्टे अध्यापकों के वातावरण में रहता है। शेष समय वह क्या करता है? उसके लिए कोई जिम्मेवार नहीं। विद्यार्थी माता-पिता और अध्यापक इन दो संरक्षकों में आवारा बन जाता है। उसके समग्र जीवन के संरक्षक व्यवस्था के अनुसार न माता पिता रह सकते हैं न अध्यापक। यह एक असाधारण हेतु है कि बालकों के मस्तिष्क में भी समाज के चारों ओर के अनैतिक वातावरण से नाना दुर्बुद्धियाँ घर कर लेती हैं और अपने शिक्षा विकास के साथ साथ वे वञ्चना विकास भी करते जाते हैं। समस्या जटिल हो जाती है।

वर्तमान वातावरण से बालकों में अनैतिकता आती है और वे ही जब आगे चलकर समाज के कर्णधार बनते हैं तब अनैतिकता समाज में घुस आती है। फिर भी सुधार आवश्यक है। सोचना है वह कहाँ से शुरू हो। प्राचीनकाल की तरह पढ़ने के लिए बालकों को जंगल में खदेड़ देना भी पर्याप्त समाधान नहीं है। आज की पीढ़ी जिसमें बालकों के अध्यापक माता-पिता व अन्य सामाजिकजन आ जाते हैं पहले वे स्वयं सुधरें। वञ्चनापूर्ण व्यवहारों से वे दूर रहें तो बालकों के आचरण स्वतः स्वस्थ रह सकेंगे।

दूसरा मार्ग है—बालक स्वयं अपने अनुशासक बनें। किसी भी काम को करते समय वे यह सोचें मेरे अभिभावक या अध्यापक-जन सामने होते तो मैं यह करता या नहीं। यदि आत्मा से उत्तर मिलता है—नहीं तो मैं उस काम को न करूँ। इससे वे आवारा नहीं बनेंगे और गुरुजनों की स्मृति उनका पथ प्रदर्शन करती रहेगी। अणुव्रती विद्यार्थी इस दिशा में पहल करें, यह अत्यन्त अपेक्षित है।

विद्यार्थियों की दुष्प्रवृत्ति में अध्यापक भी कभी कभी योगभूत देखे जाते हैं यह तो और भी दुःख की बात है। रिश्वत लेकर, किसी अध्यापक और की सिफारिश से व अपनी ट्यूशन की माँग बढ़ाने के लिए अवैध सहयोग अध्यापक अवैध प्रयत्नों से किसी विद्यार्थी को उत्तीर्ण करते

का प्रयत्न करते हैं। अध्यापक-जीवन के लिए इससे बढ़कर और क्या अनैतिकता हो सकती है? जिस अध्यापक के हाथ में देश और समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति होकर विद्यार्थी आता है उस बालक का अवैध प्रयत्न से उत्तीर्ण करके अध्यापक अपना आत्म हनन करता है विद्यार्थी को भविष्य के लिए वञ्चना का मार्ग बताता है और देश व समाज के साथ एक गद्दारी करता है। क्योंकि वह देश व समाज की एक बहुमूल्य सम्पत्ति को बिगाड़ता है। बहुत कम आशा है जो बालक एक या दो बार इस प्रकार के सहयोग से उत्तीर्ण हो जाता है वह आगे चलकर परिश्रमशील रह सके व जीवन में कोई सात्त्विक विकास कर सके।

अणुव्रती अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिए स्वयं एक पुस्तक होगा। अध्यापक किसी विशेष उपक्रम से जैसे विद्यार्थियों को वञ्चना सिखाने में हेतुभूत हो जाता है वैसे ही वह अपने आचरण से भी हो जाता है। अध्यापक धूम्रपान करता है यह कैसे हो सकता है विद्यार्थी उससे बचा रहे। इस प्रकार पाठ्यक्रम की पुस्तकों से भी बढ़कर अध्यापकों के जीवन से प्रेरणाएं मिलती हैं। अपेक्षा तो ऐसी लगती है बालकों के जीवन को नैतिक व आदर्श बनाने के लिए हर एक अध्यापक अणुव्रती या उस प्रकार के आदर्श पर चलने वाला ही हो।

पत्रकार व अनैतिकता

पत्र पत्रिकाएं आज के मनुष्य की खुराक हैं। बिछौने से उठते ही शारीरिक खुराक चाय और मानसिक खुराक समाचार पत्र होते हैं। प्राचीनकाल में प्रातःकाल का समय धार्मिक-स्वाध्याय के लिए होता था। उठते ही नित्य-कर्म से निवृत्त होकर लोग गीता रामायण आदि का वाचन करते स्वाध्याय-चिन्तन करते व मन्त्र-श्रवण करते। धीरे धीरे आज वह स्थान पत्र-पत्रिकाएं ले रही हैं। पत्रकारों का यह भूलना नहीं है जन-जन के जीवन में सत् प्रेरणाएं देने का दायित्व जो शास्त्रीय साहित्य का था वह अब पत्र-पत्रिकाओं का होने लगा है। पत्रकारों का यह सोचना है क्या वे अपने पत्र-पत्रिकाओं को इसके उपयुक्त बना सकेंगे? पत्रकारों का काम केवल यहीं समाप्त नहीं हो जाता कि गत दिन में होने वाली चोरी डकैती हत्या अग्निकाण्ड व अन्यान्य दुर्घटनाएं प्रातःकाल होते ही जनता के सामने रख सकें। ये बातें तो जनता के सामने न भी आएं तो कोई बृहत् क्षति होने वाली नहीं है। आज जनता को आवश्यकता है—नैतिक पाथेय की।

सभी सामाजिक पहलुओं में अनैतिकता हो और पत्रकारिता अछूत रह सके यह कैसे सम्भव था। पावस की छाया में अनाचार सदा पनपता।

है। जहाँ एक ओर देश में आदर्शवादी पत्रकार अपने पत्रों का स्तर सदैव उच्च बनाए हुए जन-व्यवहार को उच्च बनाने में प्रयत्नशील हैं, वहाँ ऐसे भी पत्रकार हैं जिन्होंने पत्रकारिता को केवल व्यवसाय बना लिया है। जन-रुचि को कैसे सात्त्विकता की ओर ले जाना है इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। उन्हें चिन्ता है—अच्छी-बुरी जो जन-रुचि है उसका पोषण करते हुए अपने व्यवसाय को बढ़ाने की। व्यवसाय बढ़ाने की वृत्ति भी यहाँ तक आगे बढ़ गई है कि समाजों को लड़ा देना, अश्लील विचार-सामग्री एवं विज्ञापन देना, अप्रमाणित व अल्प प्रमाणित समाचारों को घनी-घनी पूर्ण बना कर किन्हीं बड़े आदमियों से धन ऐंठना आदि कार्य तो सहज होने लगे हैं।

पत्रकारिता एक व्यवसाय

ऐसे लोग कहा करते हैं—ऐसा किए बिना हम लोग अपने पत्रों को चला नहीं सकते। यह तो पत्रकारिता व्यवसाय की कुशलता है। उन्हें यह सोचना चाहिए, उक्तप्रकार की नीति पर आधारित पत्र यदि नहीं भी चलेंगे तो देश व समाज की कोई हानि होने वाली नहीं है। पत्रकारिता को यदि व्यवसाय भी माना जाए तो उसका अर्थ यह तो नहीं है कि उसे अनैतिकता के आधार पर ही चलाया जाए? व्यवसाय नाना प्रकार के हैं, पर अर्थोपार्जन के हेय तरीके तो किसी व्यापार में क्षम्य नहीं हैं। अणुव्रती पत्रकार किसी भी स्थिति में स्वार्थ, लाभ व भयवश भ्रमोत्पादक व मिथ्या समाचार, लेख व टिप्पणी प्रकाशित न करे।



अचौर्य-अणुव्रत

अदत्त-ग्रहण के विषय में विवेचना करते हुए भगवान् श्री महावीर ने कहा—'लोभी आदमी अदत्त को ग्रहण करता है'[1]। श्री गौतम बुद्ध ने कहा—"जो अदत्त का ग्रहण नहीं करता उसे ही मैं ब्राह्मण कहता[2] हूँ। महात्मा ईसा ने कहा—'तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए।" सभी धर्म-शास्त्रों में अदत्त को एक महान् पाप माना है। अदत्त-ग्रहण एक समासाश्रित शब्द है जो चोरी डकैती आदि नाना रूपों में फलित हुआ है पर यह चोरी का स्थूल रूप है। विशेष मीमांसा करते हुए तो शास्त्रकारों ने बताया—"दंत शोधनार्थ तृणमात्र का भी अदत्त ग्रहण विवर्जित है"[3]। चोरी क्या है? इसका उत्तर शास्त्रकारों ने दिया—'इच्छा मूर्च्छा गृद्धि असंयम कांक्षा हस्तलघुता पर धन हरण स्तैन्य कूटतोल कूट-माप'[4] और बिना दी हुई वस्तु लेना ये सब चोरी के ही प्रकार हैं। अस्तेय की उक्त प्रकार से व्यापक मीमांसा होने का यही नवीन समाज-व्यवस्था के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होती है। वहाँ महात्मा गांधी ने कहा—"आवश्यकता से अधिक जो संग्रह है, मैं मानता हूँ वह चोरी है पर आज का नया चिन्तन समाजवादी समाज-रचना की ओर मुड़ चला है। वहाँ तो यहाँ तक भी मान लेना होगा—प्रत्येक वस्तु समाज की है। उसे वैयक्तिक मान लेना भी अदत्त और चोरी है।

भगवान् महावीर ने मूर्च्छा और तृष्णा मात्र को चोरी कहा। उन्होंने बताया—चोरी धनादि पदार्थों की ही नहीं उसके और भी नाना रूप हैं—"जो तपस्वी नहीं है और समाज में तपस्वी होने का भाव प्रदर्शित करता है वह तप

१—लोभाविले आययइ अदत्तम्।

२—चोरे अदिन्नं नादियति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।

३—दन्त सोहण माइस्स अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स गिण्हणा अवि दुक्करं।
—उत्तराध्ययन अ० १९ गा० २८

४—इच्छा मुच्छा तण्हागेहि असंजमो कंखा।
हत्थलहुत्तणं परहडं तेणिक्कं कूडया अदत्ते।
—प्रश्न व्याकरण १, ३ : १०

की चोरी है उसी तरह वचन का चोर, रूप का चोर, आचार का चोर आदि नाना चोर होते हैं और वे किल्विष (क्षुद्र) योनि में उत्पन्न[1] होते हैं।' इस प्रकार अस्तेय के नाना प्रकार होते हैं पर यहाँ उसकी दार्शनिक चर्चा में न जाकर उसके स्थूल रूप को ही अधिक समझना है। क्योंकि अणुव्रत-आन्दोलन जीवन-व्यवहार का ही एक सरल और सहज दर्शन है।

चौर्य के समाज में दो रूप प्रचलित हैं। पहला किसी की वस्तु को आँख बचाकर या बलात् उठा लेना। दूसरा रूप है—झूठा तोल-माप मिलावट आदि व राजकीय कर आदि न देना। कुछ लोग कहते हैं—चोरी का सही अर्थ तो पहला प्रकार ही है। यह ठीक नहीं। यदि ऐसा होता तो अचौर्य अणुव्रत आवश्यक न होकर हरएक गृहस्थ के लिए अचौर्य-महाव्रत जरूरी होता। पर इसे अणुव्रत इसलिए कहा गया है कि अचौर्य के मानसिक व वाचिक नाना सूक्ष्म भेद हैं। जिनकी साधना समाज-व्यवहार में चलते हुए मनुष्य के लिए असम्भव है। अतः दूसरों की वस्तु को उठा लेना व झूठा तोल-माप करना आदि जो चोरी के स्थूल रूप हैं उन्हें अचौर्य-अणुव्रत के द्वारा समाप्त करना अपेक्षित है।

चोर-वृत्ति

मेगस्थनीज फाहियान ह्वेनसांग आदि विदेशी यात्री भारतवर्ष में आए और उन्होंने यहाँ के सांस्कृतिक वातावरण का एक तटस्थ अवलोकन किया। अपने देशों में जाकर अपनी यात्रा के जो संस्मरण लिखे उसमें उन्होंने बताया—भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिसमें सोने चाँदी और मोतियों की दुकानों पर भी ताले नहीं लगते। यह स्थिति चाहे कितने अंशों ही सत्य हो उसमें भारतवर्ष का एक नैतिक गौरव प्रकट होता है। आज की स्थिति ऐसी नहीं है। हो सकता है रात को किसी के घर में घुस कर, सेंध आदि लगाकर की जाने वाली चोरियाँ आजकल अत्यधिक न होती हों पर स्फुट चोरियों का बोलबाला तो बहुत ही बढ़ गया है। सार्वजनिक सभाओं में मन्दिरों में व अन्यान्य धर्मस्थानों में जूते उठा लेना छाता उठा लेना आदि तो बहुत व्यापक हो गया है। घरों में दुकानों में आँख चूकते ही चोरी हो जाती है। उससे ऐसा लगता है आम जनता में चोरी की प्रवृत्ति काफी बढ़ गई है। रात को सेंध लगाकर चोरी करने वाले चोरों से जितना समाज का अहित नहीं होता था उतना इन सस्ते चोरों से हो रहा है।

१—तवतेणे वयतेणे रूवतेणे य जे नरे।
आयारभाव तेणे य कुव्वइ देवकिब्बिसं।
—दशवैकालिक २ २ ४६।

पाकेटमारी के भी अजब-गजब तरीके आए दिन सुने जाते हैं। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि पाकेटमारी के रास्ते पर पुरुषों की अपेक्षा लड़के अधिक बढ़ रहे हैं। यह समाज के लिए कितना अहितकर है। मनुष्यता के नाते दूसरों की किसी वस्तु को चाहे वह छोटी हो या बड़ी चोरवृत्ति से उठाना अक्षम्यनीय है। अणुव्रती के लिए तो इस विषय में और भी कुछ ध्यान देने की बातें हैं। मार्गादि में पड़ी वस्तु को भी वह इस बुद्धि से न उठाए कि यह तो मुझे अनायास मिली है इसका मालिक भी मिला तो मैं उसे यह चीज नहीं बताऊँगा।

दो भाइयों के अधिकार की वस्तु यदि एक भाई के अधिकार में है और उस वस्तु को लेकर झगड़ा चल रहा है व उसमें ताला है तो अणुव्रती ताला तोड़कर-तिजोरी खोल कर चोर विधि से वह वस्तु अपने अधिकार में न ले।

अणुव्रती दो या अधिक व्यक्तियों के अधिकार की वस्तु को हजम करने की नियत से अपने पास न रखे। जब तक वह वस्तु विवाद-ग्रस्त हो तब तक यदि सुरक्षा के ध्येय से उसे अपने अधिकार में रखना पड़े वह दूसरी बात है।

चोरी में सहायता

चोरी, डकैती जैसे घृणित कार्यों में बुद्धि धन आदि देकर सहयोगी होना भी एक प्रकार से चोरी ही है। सहयोगी होने का एक दूसरा भी प्रकार है जिसमें व्यक्ति का यह उद्देश्य नहीं होता कि मैं चोर को सहयोग करूं पर चोरी में लाई हुई चीजों को सस्ती देखकर मुँह में पानी चल आता है और उन्हें वह खरीद लेता है। यह चोरी को परोक्ष योग-दान है। चोरी की वस्तु को खरीदना राजकीय अपराध भी है। अणुव्रती यह जान लेने पर कि यह वस्तु चोर-वृत्ति से उठाकर लाई गई है उसे न खरीदे।

राज्य-निषिद्ध व्यापार

जिस वस्तु का व्यापार करने में राजकीय नियम के अनुसार लायसेन्स लेना अनिवार्य है उसे बिना लायसेन्स लिए तथा प्रकार का व्यापार करना राज्य-निषिद्ध की कोटि में है। जो ठेके के व्यवसाय हैं अर्थात् जिन व्यवसायों के लिए राज्य व्यक्ति विशेष को ही अधिकार देता है ऐसे व्यवसाय बिना राजकीय अधिकार पाए करना भी राज्य निषिद्ध व्यापार में है। अब तक प्रायः मद्य अफीम भांग गांजा आदि नशीली वस्तुओं के लिए ही ठेका देने की प्रथा है। मद्य मांस आदि के व्यापार से तो अणुव्रती को अनिवार्यतया बचना है ही साथ साथ उक्त प्रकार की अन्य नशीली वस्तुओं के व्यवसाय से भी बचना श्रेयस्कर है।

लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने सामूहिक स्वार्थ को कहाँ तक भुला देते हैं और किस प्रकार के भ्रष्टाचार करते हैं इसकी एक दिलचस्प घटना है। एक व्यापारी ने स्वयं बताया—हम फ्रान्सीसी बस्तियों से बिना चुंगी चुकाए कपड़ा बंगाल में लाया करते थे। बहुत सारे तरीकों में हमारा एक तरीका यह था—हम लोग बांस की एक अर्थी (सीढ़ी) बनाते। जितना कपड़ा बांसों में भरा जा सकता था व अर्थी पर लपेटा व बिछाया जा सकता था बिछा देते। हमारे साथियों में से एक आदमी मुर्दा बन कर उस अर्थी पर सो जाता। हम चार आदमी उसे उठा लेते और दो चार आदमी हमारे साथ "राम नाम सत है सत बोल्यां गत है" यह कहते हुए पीछे पीछे चलते। इस प्रकार हम फ्रान्सीसी सीमा को पार कर कपड़ा भारतवर्ष में लाते।

राज्य-निषिद्ध आयात निर्यात

आयात निर्यात की चोरियों में लोगों की बुद्धि का जितना विकास हुआ उतना किसी सत्कर्म में होता तो न जाने कितना निर्माणात्मक काम होता। सुना गया है, सोने को दूसरे देशों से लाने वाले लोग जांघ फाड़ कर उसमें सोना भर लेते हैं, कुछ गोलियां बनाकर निगल जाते हैं। लोगों में चोरी के तरीके बढ़े हैं तो राज्याधिकारियों में उन चोरियों को पकड़ने के तरीके बढ़े हैं। वे भी ऐसे ऐसे स्थलों पर ऐक्सरे की व्यवस्था रखने लगे हैं। ऐक्सरे के सामने आए बिना कोई व्यक्ति सीमा को पार नहीं कर सकता। सामने लाए गए व्यक्तियों में शरीर में सोना रखने वाले बहुत सारे व्यक्ति पकड़े गए हैं। इस प्रकार भविष्य में चोरी करने वालों व पकड़ने वालों में कौन किससे आगे रहेगा यह नहीं कहा जा सकता पर इससे बुराइयों का अन्त सम्भव नहीं यह तो निश्चित ही है। जनता में नैतिक आचरणों का उदय हो यही एक मात्र समस्या का हल रह जाता है।

आयात-निर्यात को लेकर कुछ चोरियां ऐसी भी हैं जो समाज में सभ्य व ऊँचे माने जाने वाले बड़े बड़े व्यापारी करते हैं जैसे इस्लीगल एक्सचेन्ज का व्यवसाय। हिन्दुस्तान पाकिस्तान के बीच मुद्राभाव के अन्तर का नाजायज फायदा बहुत सारे लोग उठाते हैं। अणुव्रती उक्त प्रकार की सभी बुराइयों से बचे।

एक देश से दूसरे देश की तरह कभी-कभी दो प्रान्तों में आयात-निर्यात के स्थायी-अस्थायी प्रतिबन्ध चलते रहते हैं। उन्हें तोड़कर आयात-निर्यात का व्यापार करना भी अणुव्रती के लिए वर्जित है।

भारतवर्ष में आजकल का व्यापार अप्रामाणिकताओं का केन्द्र बन गया है। उन अप्रामाणिकताओं का सम्बन्ध असत्य से भी है और चोरी

व्यापार में — भी। असत्य भाषण है, चोरी कम है। अस्तेय अणुव्रत में तथा अप्रामाणिकता प्रकार के कर्मों का निरोध आवश्यक माना गया है।

मिलावट — अप्रामाणिकता में मिलावट का प्रथम पहलू माना जा सकता है। आज का मनुष्य मनुष्यता से कितना नीचे खिसक गया है, यह मिलावट के प्रकार से भली-भाँति जाना जा सकता है। उसकी दृष्टि में पैसा परमेश्वर है और मनुष्य मनुष्य भी नहीं। भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश के लिए क्या यह लज्जा की बात नहीं कि दूध के नाम से पानी फेन दूध पाउडर, घी के नाम पर वेजीटेबल घी डालडा चर्बी, धाने के नाम पर शकरकन्दी व सिंगराज का चूर्ण, सरसों के तेल के नाम से मूंगफली, अलसी व सियालकोटी का तेल, मिठाई व आइसक्रीम के नाम से शुद्ध चीनी के बदले सक्रीन, मक्खन के नाम पर दही के साथ वेजीटेबल घी को मथ कर बनाया गया नकली मक्खन सर्वसाधारण को मिलता है। और भी न जाने मिलावट के क्या क्या प्रकार हैं? एक भाई ने बताया—जमाना तरक्की कर गया है। मिलावट की बात तो अब पीछे रहने लगी है। लोगों ने तो सोलह आना अशुद्ध वस्तु दे देने के भी प्रकार आज निकाले हैं। चनों के छिलकों की नकली चाय ऐसी बनने लगी है कि बिना असली चाय की एक भी पत्ती मिलाए सहस्रों मन का आयात निर्यात शहरों में होने लगा है। यह है भारतवासियों की बुद्धि का सदुपयोग और धर्म परायणता का नमूना।

यही हाल दवाइयों के विषय में है। अधिकांश दवाइयाँ असली के आकार प्रकार में नकली बनने लगी हैं। शुद्ध खाद्य के अभाव में पहले तो लोग अधिक संख्या में बीमार होते हैं फिर स्वास्थ्य-लाभ के लिए उन नकली दवाइयों का सेवन करते हैं। यहाँ तक भी खैर। वैद्य कहता है—दवा-सेवन करते हो तब तक चीनी व चीनी की सब वस्तु तुम्हारे लिए विष है। पूरा ध्यान रखना शुद्ध मधु के साथ तुम्हें दवा लेनी है। बेचारा बाजार में किसी दुकान पर 'शुद्ध मधु' लिखा विज्ञापन देखकर उसे खरीद लाता है पर वास्तव में वह मधु जिसके साथ वह दवा लेता है शुद्ध चीनी होती है जिसके परिणाम स्वरूप वह दूध भी फीका पीता है। अस्तु, नैतिक पतन की इस दयनीय दशा पर किसे शरम नहीं आती होगी?

व्यापारी कहते हैं मिलावट किए बिना हमारा व्यापार नहीं चलता पर उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं मिलावट करने से समाज का जीवन-व्यवहार कैसे चलेगा? जो लोग सरसों के तेल में सियालकोटी का तेल मिलाते हैं वे जानते हैं कि इस तेल के व्यवहार से लगाने वाले के शरीर में फोड़े फुन्सियाँ

व्याधि होगी। प्राणान्त करने वाली 'सेप्टिक' भी हो सकती है, पर उन्हें चिन्ता है अपने व्यवसाय चलाने की। जब कभी तत्सम्बन्धी विभाग के इन्सपेक्टर दूकान पर आकर जाँच करते हैं और तत्पश्चात् मिलावट सम्बन्धी आँकड़े उपस्थित करते हैं तो सुनने वालों को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। अणुव्रती का यह व्यवसाय अप्रामाणिक नहीं हो सकता। व्यवसाय चले या नहीं भी, वह मिलावट कर जनता के स्वास्थ्य और जीवन के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता।

असली के नाम पर नकली

तरक्की के जमाने में बुराइयाँ भी तरक्की करती जा रही हैं मानो व्यापारियों ने सोच लिया है मिलावट में आधी वस्तु तो सच्ची चली जाती है यह भी क्यों? इसलिए दूसरा रास्ता अपनाया—दिखाना कुछ और देना कुछ। दिखाना असली और देना नकली। चल सके तो दिखाना भी नकली और देना भी नकली। कल्चर मोती को खरे बता कर दे देना व नकली घी को असली बता देना आदि इसके अनेकों उदाहरण हैं। अणुव्रती के लिए इस प्रकार का व्यवहार सदा वर्जनीय है।

प्रकार भेद

मिलावट व असली-नकली की तरह प्रकार भेद की भी एक प्रचलित बुराई है। ग्राहक को जो वस्तु दिखाई जाए, देते समय उसी वस्तु की नीची क्वालिटी दे देना प्रकार भेद है। उदाहरणार्थ दिखाया टाप क्वालिटी का जूट और दे दिया मिडल क्वालिटी या बोटम क्वालिटी का। इसी उदाहरण से और भी नाना प्रकार के भेदों को समझा जा सकता है। अणुव्रती इससे बचे।

कमीशन अथवा बीच में खाना

बीच में खाने का रोग भी जन-जन में छा गया है। चार पैसे की वस्तु खरीदकर एक पैसा बीच में खाना चाहता है। बड़े-बड़े फर्मों में काम करने वाले मुनीम और गुमास्ते भी अवसर पाते ही हाथ रंग लेते हैं। पतन यहाँ तक हो चुका है, रसोइया घी या चीनी चुराने लगा है, बिलोने वाली मक्खन का आकार मैं लेती है, ग्वाला बीच में ही दूध पी जाने से बाज नहीं आता। लोगों का जीवन बहुत अविश्वास-सा होता जा रहा है। नौकर और मालिक का पारस्परिक विश्वास टूट गया है। जीवन में नीरसता पैदा हो गई है। नौकर भी धोखा दे, रसोइया भी धोखा दे, मुनीम भी धोखा दे ऐसी स्थिति में एक ही व्यक्ति रसोई सम्भाले या दुकान?

व्यापार जगत् की ओर ध्यान देते हैं तो चलाकी के काम वाले कहते हैं आदमियों के यदि हम सही भाव बताते रहें तो हमारा व्यापार चल नहीं

धकता। रुई, सोना चांदी शेयर आदि का व्यापार व सट्टा करने वाले अपनी आमदनी भी यही समझ बैठे हैं कि खरीदना किसी भाव और बिकना किसी भाव। यही हाल हर प्रकार की दलाली करने वालों का है।

विषय बहुत व्यापक है, जीवन के हर पहलू से इसका लगाव है। अणुव्रती किसी भी क्षेत्र में चलता हुआ उक्त बुराई से सदा बचे।

कुछ लोग मानते हैं व्यापारी का आदेश मिला इस भाव तक तुम इतना माल खरीद सकते हो। यदि उससे भी नीचे भाव में माल मिल गया और व्यापारी ने वह भाव लगाया जो उसने लिखा था तो यह कटौती नहीं है पर ऐसा समझना भ्रम है।

गांठ बंधाई आदि के दाम भी यदि बाजार की प्रचलित प्रथा से ज्यादा काटे जाते हैं तो वह कटौती ही है। यदि किसी व्यक्ति ने कंठा हार अंगूठी व अन्य कोई वस्तु निश्चित दर बता कर, दलाल को बेचने के लिए दी और वह उस बाजार में ऊँची दर पर बेचता है और बीच का पैसा खुद रख लेता है तो वह भी कटौती ही है। यह दूसरी बात है कि वह विक्रेता से पहले ही स्पष्ट करले कि आपकी कीमत से यदि ऊँचे मूल्य में मैं इस वस्तु को बेच सका तो वह लाभ मेरा होगा। चोरी में बीच में खाना अणुव्रती के लिए जैसे वर्जनीय है वैसे ही किसी कार्य में बिना हक के पैसे ले लेना वर्जित है। उदाहरणार्थ—मालिक या कम्पनी की ओर से रेल यात्रादि करके व्यक्ति बाहर गया है। यह स्वतः सिद्ध है यात्रादि में भोजनादि का खर्च मालिक का है पर इस पथ में लगे सौ रुपए और बताए डेढ़ सौ रुपए, यह बिना हक का पैसा लेना है।

झूठा तोल-माप करना एक बड़ी से बड़ी अप्रामाणिकता है। सच बात तो यह है ऐसा करके व्यापारी ग्राहक से अधिक अपने आप

झूठा तोल-माप को धोखा देता है। जिस ग्राहक ने जिस दुकानदार से एक बार धोखा खाया क्या यह सम्भव है कि वह दूसरी बार उस दुकान पर पैर रखेगा? फिर भी स्वार्थवश व्यवसायी लोग सुदीर्घ भविष्य की सही सोचकर सम्मुखस्थ वर्तमान की ही सोचते हैं। बाजारों में प्रामाणिकता के लिए "धर्म का कांटा" भी लगा रहता है। बाजार में "धर्म का कांटा" इस नाम से तोल-माप की व्यवस्था होना ही समस्त बाजार में प्रचलित माप-तोल सम्बन्धी अप्रामाणिकता का सूचक होता है। फिर भी उस की यथार्थता हो सकती है यदि वह चिरकाल के लिए "धर्म का कांटा" ही बना रहे। पर देखा जाता है लोग अपने झूठे तोल-माप को सही साबित करने के लिए रिश्वत आदि देकर उस को भी पाप का कांटा बना देते हैं।

सट्टा काटने की नीयत से माल को खराब कर देना या खराब व खामी

ठहराने का प्रयत्न करना अनैतिकता का सूचक है। ऐसी प्रवृत्ति से व्यापारी धीरे धीरे सारे बाजार में अप्रामाणिक प्रसिद्ध हो जाता है और लोग उससे क्रय-विक्रय करने में बचाव रखते हैं। माल जितना खराब या खामी है, उसके लिए बट्टा काटने की उचित माँग करना दूसरी बात है। अणुव्रती अतिरिक्त लाभ उठाने व निरर्थक झगड़ा खड़ा करने से सदा बचे।

बट्टा काटने की नीयत

लोग कहते हैं चोर-बाजारी तो अब लगभग मिट गई है। उन्हें पूछना चाहिए वह लोगों के मन से मिट गई है या परिस्थिति से। मन से वह नहीं मिटी है। आज भी कन्ट्रोल हो और चोर-बाजारी चल सकती हो तो पहले से थोड़ी भी कम होगी यह नहीं सोचा जा सकता। मिटना तो वह है जो लोगों के मन से ही मिट जाए। कन्ट्रोल भी हो चोर-बाजारी चल भी सकती हो, तब भी उसको चलाने वाला कोई न हो। पर उसका मूल तो अप्रामाणिकता में है और वह जीवन में कूट-कूट कर भरी है। कन्ट्रोल भी सदा के लिए चला गया ऐसी बात नहीं है। अतः इस विषय को स्पष्ट कर देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। आन्दोलन के नियमों में चोर-बाजारी का नियम बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। उसका एक इतिहास बना है। जिन दिनों कालाबाजार अपनी उत्कृष्ट स्थिति में था तब भी अणुव्रती उससे मुँह मोड़ कर चले। लाखों के लाभ को ठुकराया। सचमुच यह एक साहस की बात थी।

व्यापार और चोर-बाजारी

जिस वस्तु का सरकार ने जो मूल्य निर्धारित कर दिया किसी रूप में उससे अधिक मूल्य लेना ब्लैक (काला बाजार) है। चोर-बाजार राजकीय व्यवस्था का भंग और एक सामाजिक अपराध है। यह लोभ की पराकाष्ठा और शोषण का प्रतीक है अनधिकृत धन को हड़पना है अतः चोरी और डाका है। नियन्त्रण (कन्ट्रोल) का उद्देश्य तो यही है कि वस्तु के अभाव में लोग जनता से अनुचित फायदा न उठाएं व सामग्री की अल्पता में कुछ एक को कोरा ही न रह जाना पड़े। समाज में रह कर व्यक्ति समाज-व्यवस्थाओं से लाभ उठाता है। सामाजिक व्यवस्था के आधार पर ही पनपता पुसता है तो भी तुच्छतम स्वार्थ की पूर्ति के लिए वह उन्हें तोड़ता है। यह सामाजिक व्यवस्था का भंग नहीं तो और क्या है? मनुष्य असीम काल से सामाजिक जीवन में रहा है फिर भी उसकी व्यष्टिवादी प्रवृत्तियाँ गई नहीं हैं। अपने अनुचित स्वार्थ को पूरा करने में वह यह भूल जाता है कि मेरे इस प्रयत्न का समाज के अन्य अंगों पर कितना घातक प्रभाव पड़ता है। क्या ये इतिहास के काले पृष्ठ नहीं बन गए हैं कि महायुद्ध के दिनों में इधर अन्न और वस्त्र की

अल्पता में लाखों लोग तड़फ रहे थे और उधर व्यापारी लोग लाखों करोड़ों का चोर-बाजार करने में भी लाज से जुटे थे। बंगाल में अकाल पड़ा लाखों लोग सड़कों पर पड़े पड़े भूखों मरे और मर रहे थे इधर गोदामों में भरा अनाज और तेजी की प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसी प्रवृत्तियाँ मनुष्यता के लिए अभिशाप हैं और किसी भी स्थिति में उचित नहीं मानी जा सकती।

यद्यपि चोर-बाजारी से बेचना जितना हेय है चोर-बाजारी से खरीदना भी उतना ही हेय है तथापि कभी-कभी स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे कि पिछले दिनों होती रही है। उस स्थिति में एक पारिवारिक मनुष्य का बिना चोर-बाजारी के खरीदे जीना भी अत्यन्त कष्ट साध्य हो जाता है। अतः यहाँ एक अणुव्रती एकाएक न भी चल सके तो चोर-बाजारी से व्यापारार्थ होने वाला क्रय-विक्रय तो सर्वथा वर्जित है ही। बहुत सारे अणुव्रती तो खाने-पीने व पहनने की वस्तुएं भी चोर-बाजारी से नहीं खरीदते। ऐसा करने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा। उन्होंने बहुत दिनों तक गेहूँ के स्थान पर बाजरे से महीन वस्त्र के स्थान पर मोटे वस्त्र से चीनी के स्थान पर गुड़ से काम चलाया है। यह उनका आदर्श है जो अन्य अणुव्रतियों को भी एक सजग प्रेरणा देता है।

एक पारिवारिक जीवन में रहने वाला अणुव्रती चोर-बाजारी न करने के नियम का किस मर्यादा से पालन करे? मालिक चाहता है—चोर-बाजारी चले—ऐसी स्थिति में अणुव्रती मैनेजर क्या करे? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर व्यावहारिक दृष्टि से कुछ विचार आवश्यक लगता है।

जो व्यक्ति व्यवसाय से सर्वथा मुक्त है, अर्थात् निवृत्त है उसके पुत्र पौत्रादि स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवसाय चलाते हैं तो उस व्यक्ति के अणुव्रती होने में बाधा नहीं मानी गई है। कुछ लोगों का तर्क है—वह चोर-बाजारी से अर्जित धन का उपयोग करता है, इसलिए वह अणुव्रती बनने का अधिकारी नहीं माना जाना चाहिए। स्थिति यह है—जिस पिता के एक पुत्र है। पिता स्वयं निवृत्त है। पुत्र अणुव्रती नहीं है। वह स्वच्छन्दतापूर्वक अपना व्यवसाय चलाता है। ऐसी स्थिति में पिता अणुव्रती करे क्या? सामाजिक जीवन में यह बड़ा कटु होता है कि अणुव्रती बनने के लिए वह अपने इकलौते पुत्र से अलग होकर जीवन बिताए। ऐसे अणुव्रती की अब तक यही मर्यादा पर्याप्त मानी गई है वह किसी व्यवसाय में भाग न ले व परामर्श आदि न दे। जिस व्यवसाय में अनेक हिस्सेदार हैं और वे ब्लैक छोड़ना नहीं चाहते तो अणुव्रती को या तो उस व्यवसाय से अपना सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए या उस ब्लैक की सम्पत्ति से कुछ भी हिस्सा नहीं लेना चाहिए और न अपने हाथ से ब्लैक ही करना चाहिए।

यदि अणुव्रती किसी फर्म में मुनीम (मैनेजर) या गुमास्ता है तो उसे अपने हाथों ब्लैक नहीं करना चाहिए और न ऐसा करने के लिए दूसरों को आदेश ही देना चाहिए। मकान किराए के सम्बन्ध में पगड़ी सलामी आदि लेना ब्लैक में सम्मिलित है।

जो कपड़ा कंट्रोल रेट से खरीदा गया हो उसे रंगवा कर, सिलवा कर बेचने के विषय में ब्लैक विषयक मर्यादा प्रतिबन्धक नहीं है।

जो वस्तु व्यापार के लिए नहीं किन्तु किसी व्यापारिक साधन विशेष के रूप में खरीदी गई है उसके खरीदने के सम्बन्ध में चोर-बाजारी की मर्यादा लागू नहीं पड़ती। उदाहरणार्थ—मिल फैक्टरी आदि के पुर्जे व अन्य सामग्री। पर यह तभी है कि साधन वस्तु-रूप में परिणत न होता हो। जहाँ साधन ही वस्तु सामग्री है जैसे—रुई सूत आदि वस्तु कपड़े की सामग्री है तो उसका ब्लैक से खरीदना तो वर्जित है ही। इसी तरह हलवाई के लिए खरीदी जाने वाली चीनी के विषय में समझ लेना चाहिए।

जो वस्तु घर खर्च के लिए खरीदी गई पर किसी कारण से बेचना है तो अणुव्रती ब्लैक में नहीं बेच सकता। चाहे पहले उसने वह ब्लैक में ही क्यों न खरीदी हो।

जिस वस्तु के खरीदने के समय कंट्रोल नहीं था बाद में कंट्रोल हो गया तब से अणुव्रती उसे कंट्रोल रेट से अधिक दामों में नहीं बेच सकता।

पदाधिकारी और ट्रस्टी

सभा-संस्थाओं का युग है। सार्वजनिक प्रयोजन के लिए आए दिन एक न एक संस्था जुड़ती रहती है। उत्तम से उत्तम व्यक्ति पदाधिकारीच आए आते हैं पर उनमें भी कुछ ऐसे निकल जाते हैं जो अपने अधिकार को नाना स्वार्थों की पूर्ति का साधन बना लेते हैं। यहाँ तक कि कुछ लोग अपनी आजीविका भी इसी पर निर्भर कर लेते हैं नाना सार्वजनिक कार्यों का दायित्व लेकर बीच में यथासम्भव गबन करते रहना। देखा जाता है गौशाला जैसी संस्थाओं के पदाधिकारी भी आए दिन रुपए खा जाने के अभियोग में पकड़े जाते हैं। अणुव्रती ऐसी प्रवृत्तियों को घृणास्पद समझकर उनसे सर्वथा बचे। रुपए गबन करने की बात तो दूर उसके लिए तो अधिकार का यत्किंचित् दुरुपयोग भी वर्जित है। ट्रस्टी संरक्षक होता है वह यदि स्वयं भक्षक हो जाए तो सबसे बुरा है। ऐसा होकर वह विश्वासघात चोरी आदि अनेकों दुष्कर्मों का आचरण कर लेता है। अणुव्रती इस विषय में अपनी प्रामाणिकता का संयम न करे।

कार्यकर्ता काम करता जाए यही उसका कर्म है। गीता में कहा गया है—"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" कर्म करना तेरा अधिकार है फल

की आकाङ्क्षा नहीं। कार्यकर्ता के मन में जब यह धुन लग जाती है कि मुझे सभापति या मन्त्री बनना ही है तो वह अपने कर्तव्य से नीचे खिसकता है। उसका तेज मंद पड़ता है क्योंकि उस लिप्सा में उसे अनेकों को खुश करने की वृत्ति अपनानी पड़ती है अपने काम का विज्ञापन करने को उसे प्रस्तुत होना पड़ता है। जहाँ कार्यकर्ता अपनी धुन से कुछ करने में ही लगा रहता है वहाँ दूसरे लोग उसे पदाधिकारी बनाने के लिए तड़पते हैं। वह पदाधिकारी न भी बने या न भी बनाया जाए, उसका प्रभाव अपने क्षेत्र में व्यापक होता है। अधिकार लिप्सा के कारण बहुत सारी संस्थाएँ कार्यकर्ताओं के मान्य-विग्रह का रणमंच हो जाती हैं। सत्कार्यों का उद्देश्य फीका पड़ जाता है और नाना गुट बन्दियाँ प्रबल हो जाती हैं। अणुव्रती इस दिशा में न्याय का समर्थक रहेगा। वह अपनी पद-लिप्सा की पूर्ति के लिए गुटों व दलों का सर्जक नहीं बनेगा।

बिना टिकिट रेल-यात्रा

सन् १९५५ जून तक समाप्त होने वाले एक वर्ष में १२००० व्यक्ति बिना टिकिट रेल-यात्रा करने के अपराध में केवल पश्चिम रेलवे पर पकड़े गए। ५६०० व्यक्ति इसी अपराध में जेल भेजे[1] गए। इससे अनुमान लग सकता है कि जनता में यह बुराई अब तक कितनी व्यापक है। नियमानुवर्तिता का यह अभाव प्रत्येक सामूहिक व्यवस्था को भंग करता है। लोग अनैतिक आचरण के इतने आदि हो गए हैं कि ऐसी बुराइयों को तो वे बुराई जैसी चीज समझते ही नहीं। इसी के परिणाम स्वरूप जीवन के एक-एक पहलू में न जाने कितनी बुराइयों ने घर कर लिया है। अणुव्रत-आन्दोलन का काम एक मूलग्राहक यन्त्र का है जो जीवन के सभी पहलुओं से बड़ी व छोटी सभी बुराइयों को ढूंढ निकालना चाहता है। अणुव्रती इस व उस प्रकार की बुराइयों से सतत बचे। वह रेल, बस आदि किसी भी यान में बिना टिकिट यात्रा न करे। समय के अभाव व अन्य किसी कारण से उसे बिना टिकिट लिए रेल आदि में बैठना पड़ता हो तो अणुव्रती पैसे हजम करने की भावना व चेष्टा न रखे।

इस विषय में आज तक अणुव्रतियों के अनेकों अनुभव सामने आए हैं। कुछ का अनुरोध है—इस विषय में आज तक की जाने वाली परिभाषाओं के अनुसार एक अणुव्रती जो किसी विशेष स्थिति के कारण टिकिट बिना खरीदे गाड़ी में बैठा उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आगे चलकर वह पूछने या न पूछने पर भी रेलवे को अपना पूरा किराया दे। इसमें सत्य तो है पर दुविधा बहुत बढ़ जाती है। ज्यों ही वह आगे का टिकट बना देने के लिए

---

१ नवभारत टाइम्स (बम्बई) २ नवम्बर १९५५।

या कुल यात्रा का किराया ले लेने के लिए व्यवस्थापकों से कहता है वे उसकी सचाई की कुछ कीमत नहीं करते प्रत्युत उसे तरह-तरह से तंग करने लगते हैं। कई ऐसे प्रसंग आ भी चुके हैं। एक तो स्टेशनों की यात्रा का किराया ले लेने का अनुरोध कर देने पर मूल स्टेशन जहाँ से गाड़ी चली वहाँ तक का किराया लिया गया है और वह भी दुगुना। किराए से भी कहीं अधिक समय का अपव्यय किया गया है जब कि बिना किराया दिए निकलना चाहते तो बहुत आसानी से निकल सकते थे। इस स्थिति में यदि नियम का स्पष्टीकरण इस प्रकार से हो कि अणुव्रती बिना टिकिट यात्रा करने की भावना न रखे यदि स्थिति वश उसे बिना टिकिट खरीदे बैठ जाना पड़ता हो तो उसके लिए यह अनिवार्य नहीं कि अपनी ओर से व्यवस्थापकों को किराया लेने का अनुरोध करे। इस प्रकार अणुव्रती की सचाई में भी कोई अन्तर नहीं आएगा और वह बिना मतलब की दिक्कत से भी बचेगा।

यह सच है कि आज के युग में लोगों का दृष्टिकोण सचाई को महत्व देने का नहीं है। यही कारण है, लोग उस ओर नहीं झुकते। क्योंकि उस मार्ग में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अणुव्रती एक प्रामाणिक मनुष्य है उसके आचरण का जनसाधारण अनुकरण कर सकता है अतः उसकी प्रवृत्ति हेय नहीं होनी चाहिए। सुविधा और दुविधा वर्तमान क्षणों से नहीं देखी जानी चाहिए, किन्तु उसका सम्बन्ध भविष्य से समझना चाहिए। अणुव्रतियों के उक्त अनुभव अयथार्थ नहीं हो सकते। उस परिभाषा के कारण उन्हें समय-समय पर अनेक उलझनों का सामना करना पड़ता है किन्तु यह कादाचित्क प्रसंग है। जिसके लिए आदर्श से नीचे खिसकना अणुव्रती के लिए सुन्दर नहीं होगा। कष्ट ही नियमों की कसौटी है। उक्त प्रकार की घट नाओं से ही जन-साधारण का ध्यान सत्य की ओर आकृष्ट होगा।

ब्रह्मचर्य-अणुव्रत

आगमों, त्रिपिटकों और वेदों में ब्रह्मचर्य की यशोगाथा एक ही स्वर में गाई गई है। ब्रह्मचर्य जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीन आर्षवाणी में धाराओं का संगम स्थल होकर परम पावन त्रिवेणी-तीर्थ बन जाता है। आर्ष-वाणी में अहिंसा, सत्य आदि के साथ ब्रह्मचर्य का स्वर और ऊँचे से गाया गया है। "जिस तरह ग्रह नक्षत्र और तारागणों में चन्द्रमा प्रधान है उसी प्रकार विनय शील तप नियम आदि गुण समूहों में ब्रह्मचर्य प्रधान[1] है।" जिसने एक ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करली समझना चाहिए उसने सर्व-व्रत शील तप विनय संयम क्षान्ति समिति गुप्ति—यहाँ तक कि मुक्ति तक की आराधना करली[2] है। जैन परम्परा के उक्त अभिमत को वैदिक ऋषियों ने गाया— 'ब्रह्मचर्य रूप तप से देवों ने मृत्यु पर विजय[3] पाई है। बौद्ध संस्कृति में कहा गया—"तू अपने चित्त को काम-गुणों में आसक्त मत[4] कर। इस प्रकार आर्षवाणी में केवल ब्रह्मचर्य की यशोगाथा ही नहीं गाई गई अपितु इसकी साधना का मार्ग भी विविध पर्यालोचनों के साथ बतलाया गया। एक ब्रह्मचारी के लिए शृंगार विरति[5] रूप-दर्शन-विरति[6] अति-भोजन विरति[7] रस-विरति[8] स्मरण-विरति[9]

---

1 विणयसीलतवनियमगुणसमूहं तं बंभं भगवंतं।
गहगणनक्खत्ततारगाणं वा जहा उडुपती ॥
—प्रश्न व्याकरण २—४

2 जम्मि य आराहियम्मि आराहियं वयमिणं सव्वं।
सीलं तवो य विणओ य संजमो खंती गुत्ती मुत्ती तहेव।
—प्रश्न व्याकरण २—४

3 ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

4 माते काम गुणे रमस्सु चित्तं।

5 उत्तराध्ययन सूत्र १६।६

6 दशवैकालिक सूत्र ८:५७

7 उत्तराध्ययन सूत्र १६:११ प्रश्न व्याकरण ९-४

8 उत्तराध्ययन सूत्र १६ १०

9 उत्तराध्ययन सूत्र १६ ६ सूत्रकृतांग १—९ २७।

भी किस प्रकार आवश्यक है, उसका वहाँ अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है।

पूर्व और पश्चिम में चिन्तन भेद

पूर्व में ब्रह्मचर्य की आस्था थी और अब भी है। पश्चिम में कभी आस्था नहीं थी ऐसी बात नहीं है। अब भी आस्था नहीं है ऐसी बात भी नहीं है पर काम विज्ञान के कुछ नवीन चिन्तन ऐसे आए हैं जो मनुष्य की चिरकालीन बद्धमूल धारणाओं पर प्रहार करते हैं। वहाँ माना गया है ब्रह्मचर्य की आस्था ही एक अन्धविश्वास है। अब्रह्मचर्य तो एक शरीर धर्म है। तृष्णा बुभुक्षा आदि की तरह यह भी अनिवार्य शारीरिक अपेक्षा है, यह मत माना। इसमें आश्चर्य और खेद नहीं पर पूर्व और पश्चिम की नयी पीढ़ी पर इस विचार धारा का एक व्यापक प्रभाव देखा जाता है यह अवश्य विचारणीय है। उक्त मतवाद नास्तिक मतवाद के बहुत समीप हो जाता है। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। चूँकि नास्तिक मतवाद का समाज में कोई आदर नहीं इसलिए इस नवीन विचार-सरणि को लोग अपनी विषय-संस्कारिता के पोषण का साधन मान बैठे हैं। वास्तव में ब्रह्मचर्य के विषय में उक्त प्रकार की धारणाएं सच नहीं हैं। एक क्षण के लिए इसे सच भी कहा जाए तो भी अत्यन्त अस्वाभाविक है। इस प्रकार के विचारों से आज तक इस विषय को लेकर जो मानव-सभ्यता का विकास हुआ है, उस पर एक प्रहार होता है और मनुष्य जिसका कि लक्ष्य देवत्व की ओर बढ़ना है, पशुत्व की ओर अग्रसर होता है।

नवीनतम मनोविज्ञान ने उक्त प्रकार के विषयवादी विचारों को चुनौती दी है। उसका कहना है—विकार एक शारीरिक शक्ति है जिसे यदि मनुष्य वासना-तृप्ति के लिए बहाने से रोक लेता है तो अवश्य वह उस मनुष्य के जीवन में एक दैवी-गुण के रूप में उदय पाती है। संयम के द्वारा वह रोकी हुई शक्ति किसी में शारीरिक वर्चस्व किसी में प्रभावशाली वक्तृत्व किसी में नेतृत्व और किसी में चिन्तनशीलता का लेकर, प्रकट अवश्य होती है। लगता है, पश्चिम का चिन्तन भी अब पूर्व की ओर मुड़ चला है। पूर्व में भी तो यही माना गया था वासनाओं के निरोध से मन-शक्ति और कायिक-शक्ति केन्द्रित होती है और जिस दिशा में वह लगेगी व्यक्ति को असाधारण सफलता देगी। इतिहास यह बताता है, विद्या वीरता कला आदि विषयों में उत्कृष्टतम सफलता पाने वाले व्यक्तियों में अधिकांश ब्रह्मचारी थे। वे चाहे जन्म से ब्रह्मचारी थे या अपने ध्येय में लगकर आजीवन ब्रह्मचारी बन गए। अतः ब्रह्मचर्य की साधना लौकिक व पारलौकिक अभ्युदय के लिए अत्यन्त अपेक्षित है।

नीति नहीं, सिद्धान्त

संयम की ही एक अभिधा ब्रह्मचर्य है। संयम आत्मा को स्वाभाविकता की ओर व असंयम वैभाविकता की ओर ले जाता है। ब्रह्मचर्य का पालन आत्म-शुद्धि व आत्म-गुणों के विकास के लिए हो यही उसका विशुद्ध लक्ष्य है। जहाँ इसे राजनैतिक व सामाजिक दृष्टियों से आँका जाता है वहाँ उसकी गरिमा अखंड नहीं रहती। आज जहाँ कुछ देशों में जन-संख्या बहुत बढ़ गई है वहाँ संतति निरोध के लिए बल दिया जाता है और अधिक प्रजनन को बुरा बता कर नाना नियन्त्रण किए जाते हैं। जो देश जनसंख्या बढ़ाने के कामी हैं उन देशों में अधिक से अधिक सन्तान पैदा हो यह प्रचार किया जाता है। जो माताएं आठ बच्चों को जन्म देती हैं उन्हें मातृगौरव के पदक से सम्मानित किया जाता है। यह द्वैध नाना भौतिक दृष्टियों को प्रमुखता देने से उत्पन्न हुआ है। वहाँ संयम व ब्रह्मचर्य जीवन का सिद्धान्त नहीं बनता एक सामूहिक नीति बनती है। संयम व ब्रह्मचर्य वह आदर्श है जो सब काल व सब देशों में निरपवाद है। जिन देशों में जनसंख्या की वृद्धि के लिए अब्रह्मचर्य अर्थात् भोग-विलास को प्रोत्साहन दिया गया है वह नीति के रूप में भी हित कर न होगा। इससे जनता में नाना वृत्तियां जाग उठेंगी। पर इसका निर्णय तो भविष्य में होने वाला है। जिन देशों में संतति निरोध के लिए ब्रह्मचर्य या संयम की बात कही जाती है वह भी अयथार्थ है। क्योंकि संतति निरोध के उद्देश्य से ही यदि ब्रह्मचर्य आवश्यक माना जाता है तो उस देश में कभी सन्तान-वृद्धि के लिए अब्रह्मचर्य आवश्यक माना जाए, यह निश्चित है। अतः ब्रह्मचर्य व संयम को आत्मिक विकास का हेतु मानकर चला जाए, यही श्रेयस्कर है। ब्रह्मचर्य और संयम के विकास में बहुप्रजनन आदि की समस्याएं तो स्वयं हल होंगी। अनाज व खाद्य-सामग्री की कमी में कुछ वर्ष पूर्व जब 'व्रत करो' यह आन्दोलन चला तब महात्मा गान्धी ने कहा था—व्रत का उद्देश्य आत्म-शुद्धि होना चाहिए, अन्न तो स्वयं बचने वाला है ही। यदि हम अन्न के अभाव में उसकी पूर्ति के लिए "व्रत करो" आन्दोलन करते हैं तो अन्न की बहुलता में कभी 'खूब खाओ" का भी आन्दोलन करना पड़े। अतः आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के उद्देश्य आध्यात्मिक ही रहें यही प्रशस्त है।

संतति-निरोध में कृत्रिम साधनों की हेयता

आज के संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या ने गणित शास्त्रियों को चिन्तित कर दिया है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार सन् १९५१ से सन् १९५४ तक प्रतिदिन ७०,००० प्रति मास बीस लाख एवं समग्र वर्ष में लगभग ढ़ाई करोड़ मनुष्य बढ़े हैं। ये आंकड़े मृत्युसंख्या को बाद देकर केवल वृद्धि

संख्या के हैं। बड़े-बड़े समाज-शास्त्रियों का कहना है—जन-संख्या की वृद्धि इसी प्रकार होती रही तो कुछ ही वर्षों बाद नाना भयंकर समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी। भारतवर्ष के कर्णधार भी इस समस्या को लेकर अपने देश के लिए चिन्तित हैं। समुद्रों-पार से विशेषज्ञ बुलाए जाते हैं और संतति निरोध के विषय में मार्ग खोजा जाता है। यह एक आश्चर्य और खेद की भी बात है कि भारतवासी आत्म-संयम की बात को भूलकर अब संतति निरोध के कृत्रिम प्रयत्न पाश्चात्य लोगों से उधार लेना चाहते हैं। आज जनता को सिखाया जाने लगा है संतति निरोध के कृत्रिम साधनों में कोई हानि नहीं है और धीरे-धीरे जनता भी इस ओर बढ़ने लगी है। क्या यह अप्राकृतिक आचरण नहीं है ? क्या यह मानव-संस्कृति व सभ्यता की ऊँची बात है ? महिलाएं भी संतति-निरोध के लिए ऑपरेशन करवा लेती हैं। इसीप्रकार के और भी विविध कृत्रिम प्रयत्न आज समाज में बढ़ते जा रहे हैं। इसका अर्थ क्या यह नहीं होता कि मनुष्य अपना भोग-विलास बढ़ाने में मशगूल है और कोई प्राणी उन भोग विलासों में हिस्सा बटाने के लिए पृथ्वी पर पैदा न हो इसलिए वह कृत संकल्प है ? ऐसी प्रवृत्तियाँ देश के लिए हितकर नहीं हैं। इनसे जनता का वीर्य घटेगा और वर्तन बढ़ेगा।

आज आवश्यकता है—भूली हुई जनता को फिर से आत्म-संयम की बात सिखाई जाए। इससे उसकी आत्मिक शक्तियों का विकास होगा और लोकोत्तर अभ्युदयको वह प्राप्त कर सकेगी। आत्म-संयम के अतिरिक्त संतति निरोध के लिए कोई भी सभ्य एवं सुसंगत उपाय नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं—दाम्पत्तिक जीवन में रहने वाले सर्वथा ब्रह्मचारी तो बन नहीं सकते और केवल दिनों के नियंत्रण में संतति निरोध की समस्या का कोई हल नहीं निकलता। ऐसे लोगों ने आत्म-संयम एवं ब्रह्मचर्य की विभिन्न मर्यादा को समझा नहीं है। आत्म-संयम की मर्यादा केवल यहीं तक समाप्त नहीं है कि मैं एक मास में इतने दिन ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा किन्तु उसके आगे भी उसके नाना रूप हैं। आत्म-संयम की ओर बढ़ने वाला व्यक्ति यह भी प्रतिज्ञा कर सकता है कि इतनी संतान होने के बाद मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा या एक एक सन्तान के बाद इतने वर्ष मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। अस्तु, यही एक मात्र मार्ग है, जिससे मनुष्य प्रकृति विरुद्ध आचरणों से बचता है संयम का विकास करता है और वह प्रजनन की समस्या से मुक्त होता है।

प्राचीन काल में बहुपत्नी प्रथा का बोलबाला था। एक एक व्यक्ति सैकड़ों और हजारों पत्नियाँ रखता था। समाज-व्यवस्था में ऐसा क्यों उचित

माना गया इसका कोई यथार्थ तत्त्व सामने ही नहीं मिलता। क्या उस समय स्त्रियाँ अधिक थीं व पुरुष कम? कुछ भी हो आज के सभ्य

बहुपत्नी-प्रथा

समाज में बहुपत्नी-प्रथा हेय मानी जा चुकी है। इसमें नारी जाति का अपमान व पारिवारिक जीवन की अस्त-व्यस्तता तो सुनिश्चित है ही। इस प्रथा में असंयम की भी वृद्धि है। अस्तु, अणुव्रती इस असंयममूलक व लोभवर्द्धक प्रवृत्ति से सर्वथा बचे।

भारतवर्ष में ही नहीं दूसरे देशों में भी बहुपत्नीवाद अब मिटता जा रहा है। मुसलमान जाति में यह प्रथा अब भी बहुतायत से मिलती है। कहा जाता है कि इस्लाम में चार पत्नी तक का शास्त्रीय विधान है। पाकिस्तान में होने वाली एक महिला-परिषद् ने यह माँग की है एक पुरुष को एक पत्नी का ही अधिकार होना चाहिए। दृष्टिकोण बहुपत्नीवाद मिटाने की ओर है। अन्यान्य देशों में भी तथाप्रकार के नियंत्रण बन रहे हैं। भारतीय-संस्कृति में संयमाभिमुख होना ही विकास माना गया है। बहुपत्नीवाद को मिटाने में भारतवासी अगुआ हों यह उनके सांस्कृतिक धरातल के अनुरूप ही है।

जब मनुष्य को भोगों में शान्ति नहीं मिली तब उसने समझा 'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता' भोग समाप्त नहीं हुए हमारा

स्वदार-संतोष व्रत

जीवन समाप्त हो गया। इस प्रकार भोग की अवास्तविकता में संयम आया। उसकी नाना मर्यादाएं बनीं। मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे, यह पहली मर्यादा थी पर यह सर्वसाधारण के लिए अशक्य हुई तो स्वदार-संतोष-व्रत का आविर्भाव हुआ। पूर्ण संयम नहीं तो वहाँ तक संयम हो पर हो अवश्य। मनुष्य पशु की तरह अनियन्त्रित तो न रहे इस आधार पर दाम्पत्तिक व्यवस्था पैदा हुई। पतिव्रत व पत्नीव्रत धर्म समाज-व्यवस्था का एक अंग माना गया। परस्त्री-गमन व वेश्यागमन सामाजिक व धार्मिक सब दृष्टियों से हेय माना गया। भारतीय संस्कृति में स्वदार-सन्तोष-व्रत की अक्षुण्ण महिमा मिलती है। रामायण आदि बड़े-बड़े ग्रन्थ बड़े-बड़े पौराणिक कथानक इसी पतिव्रत-धर्म को संस्कारित करने वाले हैं। प्राचीनकाल में पतिव्रत-धर्म को कितना सामाजिक महत्त्व मिला था यह राम और सीता के चरित्र से ही स्पष्ट हो जाता है। लंका-विजय कर राम घर आए। सीता के लिए अपवाद उठा। जन-जन में चर्चा फैल गई। राम ने जिस सीता के लिए समुद्र पार कर रावण से लोहा लिया, असंख्य आदमी मरे। उसी सीता को यह मान कर कि स्यात् वह अपने पतिव्रत धर्म से स्खलित हुई हो घर से निकाल दिया। इसका तात्पर्य यह नहीं की राम का यह काम विचारपूर्वक था पर उस सारी घटना से यह समझा जा सकता है

कि पतिव्रत-धर्म की मर्यादा का उस काल में कितना ऊँचा महत्त्व माना हुआ था। जिसके सन्देह में अयोध्या की जनता ने अपने राजा राम की महारानी सीता को भी मान्यता नहीं दी और राम ने उसको सब कुछ मानते हुए भी एक क्षण में सारा मोह तोड़ डाला। अस्तु—स्वदार-सन्तोष-व्रत भारतीय समाज-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है। अणुव्रती के लिए उसका आचरण अनिवार्य है। अणुव्रती यदि महिला है तो उसके लिए उसी प्रकार से पतिव्रत धर्म अनिवार्य अपेक्षित है।

विवाह मुक्ति

आज नए विचारों के उद्गम में से एक ऐसा भी विचार सामने आ रहा है जो दाम्पत्तिक व्यवस्था को हटाकर स्त्री और पुरुष दोनों को इस विषय में मुक्त कर देना चाहता है। उसके पीछे तर्क है बहुत प्राचीनकाल में भी ऐसी कठोर दाम्पत्तिक व्यवस्था नहीं थी। पहले तो यह भी निर्विवाद नहीं है कि पहले दाम्पत्तिक जीवन की इतनी सुदृढ़ व्यवस्था नहीं थी। यदि एक क्षण के लिए ऐसा माना भी जाए तो यह निर्विवाद मान लेना होगा—धीरे धीरे मनुष्य में संयम व सभ्यता का विकास हुआ तब उक्त व्यवस्था को बल मिला ऐसी स्थिति में क्या यह अभीष्ट है कि मनुष्य संयम व सभ्यता की अविकसित अवस्था तक फिर जाए ? कहा जाता है विवाह एक बन्धन है। स्वतन्त्रता के युग में विवाह मुक्ति बन्धन-मुक्ति है। विवाह बन्धन है यह ठीक है। ऋषि महर्षियों ने इसे बन्धन माना है पर इससे मुक्त रहने वालों के लिए ब्रह्मचर्याश्रम का विधान किया है। आज जो लोग कहते हैं विवाह बन्धन है इससे हमें मुक्त रहना है। वे मुक्त रह कर कौन से आश्रम में जाएंगे यही बड़ा चिन्ता का विषय है।

वेश्या व परस्त्री

स्वदार-सन्तोष के अभाव में परस्त्रीगमन व वेश्या-गमन को बढ़ावा मिलता है। समाज में ये दो घातक बुराइयां हैं। इस विषय में कोई बहुत बड़ा मत-भेद नहीं है पर सुधार का कोई सुदृढ़ मार्ग अभी प्रस्तुत नहीं हो रहा है। परस्त्रीगमन यह अवैध व अन्याय भ्रष्टाचार है पर वेश्याओं को तो लाइसेन्स भी दिए जाते हैं। यह एक प्रकार का व्यवसाय है। इसे समाप्त करने के नाना अहिंसात्मक प्रकार मिल भी सकते हैं। विकासोन्मुख समाज में वेश्या-वृत्ति का होना एक लज्जा की बात है। कानून वेश्या-वृत्ति के विरोध में अब तक सफल नहीं हुआ है। *हृदय-परिवर्तन का मार्ग ही इस विषय में प्रशस्त है।* पर वेश्या-वृत्ति को आमूल समाप्त करने में यह आवश्यक होता है, उन कारणों का पता लगाया जाए कि कोई भी स्त्री वेश्या क्यों बनती है और उन कारणों को ही समाज में पैदा न होने दिया जाए।

कि पतिव्रत धर्म की मर्यादा का उस काल में कितना ऊँचा महत्त्व माना हुआ था। जिसके सन्देह में अयोध्या की जनता ने अपने राजा राम की महारानी सीता को भी सम्यता नहीं दी और राम ने उसको सब कुछ मानते हुए भी एक क्षण में सारा मोह तोड़ डाला। अस्तु—स्वदार-सन्तोष-व्रत भारतीय समाज-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है। अणुव्रती के लिए उसका आचरण अनिवार्य है। अणुव्रती यदि महिला है तो उसके लिए उसी प्रकार से पतिव्रत धर्म अनिवार्य अपेक्षित है।

विवाह मुक्ति

आज नए विचारों के उद्गम में से एक ऐसा भी विचार सामने आ रहा है जो दाम्पतिक व्यवस्था को हटाकर स्त्री और पुरुष दोनों को इस विषय में मुक्त कर देना चाहता है। उसके पीछे तर्क है बहुत प्राचीनकाल में भी ऐसी कठोर दाम्पतिक व्यवस्था नहीं थी। पहले तो यह भी निर्विवाद नहीं है कि पहले दाम्पतिक जीवन की इतनी सुदृढ़ व्यवस्था नहीं थी। यदि एक क्षण के लिए ऐसा माना भी जाए तो यह निर्विवाद मान लेना होगा—धीरे धीरे मनुष्य में संयम व सभ्यता का विकास हुआ तब उक्त व्यवस्था को बल मिला ऐसी स्थिति में क्या यह अभीष्ट है कि मनुष्य संयम व सभ्यता की अविकसित अवस्था तक फिर जाए ? कहा जाता है विवाह एक बन्धन है। स्वतन्त्रता के युग में विवाह मुक्ति बन्धन-मुक्ति है। विवाह बन्धन है, यह ठीक है। ऋषि-महर्षियों ने इसे बन्धन माना है पर इससे मुक्त रहने वालों के लिए ब्रह्मचर्याश्रम का विधान किया है। आज जो लोग कहते हैं विवाह बन्धन है इससे हमें मुक्त रहना है। वे मुक्त रह कर कौन से आश्रम में आएंगे यही बड़ा चिन्ता का विषय है।

स्वदार-सन्तोष के अभाव में परस्त्रीगमन व वेश्या-गमन को बढ़ावा मिलता है। समाज में ये दो घातक बुराइयां हैं।

वेश्या व परस्त्री

इस विषय में कोई बहुत बड़ा मत-भेद नहीं है पर सुधार का कोई सुदृढ़ मार्ग अभी प्रस्तुत नहीं हो रहा है। परस्त्रीगमन यह अवैध व प्रच्छन्न भ्रष्टाचार है पर वेश्याओं को तो लाइसेन्स भी दिए जाते हैं। यह एक प्रकार का व्यवसाय है। इसे समाप्त करने के नाना अहिंसात्मक प्रकार मिल भी सकते हैं। विकासोन्मुख समाज में वेश्या-वृत्ति का होना एक लज्जा की बात है। कानून वेश्या-वृत्ति के विरोध में अब तक सफल नहीं हुआ है। हृदय-परिवर्तन का मार्ग ही इस विषय में प्रशस्त है। पर वेश्या-वृत्ति को आमूल समाप्त करने में यह आवश्यक होता है उन कारणों का पता लगाया जाए कि कोई भी स्त्री वेश्या क्यों बनती है और उन कारणों को ही समाज में पैदा न होने दिया जाए।

वेश्या-नृत्य पूर्वजों से विरासत में मिली एक कुप्रथा है। लोग कहते हैं—वेश्या-नृत्य का विरोध क्यों किया जाता है ? प्राचीन काल में भी राजा महाराजा सम्राट् धनीमानी श्रेष्ठीजन विवाह आदि के उपलक्ष में व अन्य मांगलिक उत्सवों पर वेश्या-नृत्य को महत्त्व दिया करते थे। राज-दरबारों का तो यह एक प्रमुख अंग ही रहा है। उन लोगों से पूछना चाहिए, यह किसने कब मान लिया कि प्राचीन काल में सब कार्य अच्छे ही हुआ करते थे व उस समय किसी कुप्रथा का प्रचार नहीं था। बुराई और अच्छाई सब कालों के साथ चलती है। हो सकता है वर्तमान की कुछ कुप्रथाओं का लोग आज कुप्रथा नहीं समझ रहे हैं, आने वाली पीढ़ी समझेगी और उस युग के लोग उस विरासत की निधि को सदा के लिये समाप्त कर देने का प्रयत्न करेंगे। वेश्या-नृत्य का प्रचलन चाहे कब से ही हो आज तो वह सब प्रकार से हानिप्रद सिद्ध हो रहा है इसमें कोई विचारक दो मत नहीं हो सकते।

वेश्या-नृत्य

वेश्या-नृत्य की इस कुप्रथा के कारण ही न जाने कितने युवक कुपथगामी होकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। उपहास का विषय तो यह है लोग वेश्या को मंगल-सूचक शकुन भी मान बैठे हैं। उनका विश्वास है कि विवाह में अन्यान्य मंगल कार्यों की तरह वेश्या-नृत्य भी एक मंगल कार्य है। किस बुद्धिमान को इस समझ पर तरस नहीं आती होगी। सामाजिक मान्यताओं में भी अन्धविश्वासों का पार नहीं है। विधवा पुत्रवधू व पुत्री जो संयम और साधनापूर्वक अपना जीवन बिताती है, वह तो एक अपशकुन और पतन की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वेश्या शुभशकुन ? अणुव्रती इन अन्धविश्वासों तथा कुरूढ़ियों से सदा बचे। वह इस प्रकार के नृत्यों का आयोजन न करे व वेश्या नृत्य देखने के उद्देश्य से तथाप्रकार के समारोह में भाग न ले।

जो आचरण अप्राकृतिक है वह अमाननीय भी है। अप्राकृतिक मैथुन का प्रसंग भी ऐसा ही है। किसी दिन यह एक विचार था कि ऐसे विषयों पर लिखना व बोलना असभ्यता का सूचक है वहां ऐसी बुराइयों से लोगों को बचाने के लिए कुछ लिखना व बोलना जरूरी भी माना जाने लगा है। बहुधा इस अप्राकृतिक क्रिया से अपरिचित रह कर ही व्यक्ति उसमें फँसता है। यह बीमारी बच्चों से शुरू होकर युवकों बूढ़ों तक पहुँचती है। इसका कारण होता है—कुसंसर्ग और इससे होता है—स्वास्थ्य सौन्दर्य साहस ओज आदि सद्गुणों का नाश। अणुव्रती स्वयं इस दुराचार से बचे ही। साथ-साथ अपने बालकों को भी कुसंसर्ग से बचाने को जागरूक रहे।

अप्राकृतिक मैथुन

साधना की दिशा में

अणुव्रती की निष्ठा ब्रह्मचर्य में है। अब्रह्मचर्य को वह त्याज्य मानता है। दाम्पत्तिक जीवन में भी अब्रह्मचर्य से ब्रह्मचर्य की ओर बढ़ना उसका ध्येय होता है। वह अपनी साधना को बढ़ाता जाए और अपने इस जीवन में पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचने का प्रयत्न करे।

इस विषय में विविध प्रकार से अपनी साधना को बढ़ाने का प्रयत्न होना चाहिए परस्त्रीगमन उसके लिए निषिद्ध है ही। अतः उसे चक्षु-संयम व वाणी-संयम को भी भूलना नहीं है। वासना की दृष्टि से अन्य स्त्रियों की तरफ झांकना भी एक मानसिक व्यभिचार है। यही बात वाणी के विषय में है। अणुव्रती साधना के क्षेत्र में है, पहले पहल उसे मन पर विजय करनी है। यदि मन पर विजय पाने में सफल हुआ तो वाणी व काया पर भी शीघ्र ही विजय पा लेगा।

वृद्ध-विवाह

वृद्ध-विवाह सब प्रकार से वर्जनीय है। आवश्यकता तो यह है सपत्नीक अणुव्रती भी ५५, ६० वर्ष के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन करे। उस उम्र में यदि स्त्री की मृत्यु हो जाती है तब तो उसे पूर्ण ब्रह्मचारी होकर रहना ही चाहिए। वृद्ध-विवाह राजकीय कानून से वर्जनीय है और एक सामाजिक अभिशाप भी है। वृद्ध विवाह की बुराइयों का कोई पार नहीं है। जब घर में पहली पत्नी के बच्चे हैं वृद्धावस्था में दूसरी पत्नी आ जाती है और उसके भी अपने बच्चे हो जाते हैं, उस स्थिति में पारिवारिक जीवन की जो दुर्गति होती है वह लेखनी का विषय नहीं हो सकती। वृद्ध विवाह का महापाप इसलिए है कि एक वृद्ध अपने चन्द दिनों के आनन्द के लिए एक बालिका के समग्र जीवन को अभिशप्त कर देता है। वृद्ध-विवाहितों की मृत्यु के पश्चात् युवती विधवाओं का जीवन किस प्रकार जाएगा यह सोचना बड़ा दुष्कर होता है। उनके जीवन के दो मार्ग तो स्पष्ट हैं ही या तो वे लोक-लाज से अपनी उभरती हुई मानस भावनाओं को दबाकर समाज को अभिशप्त करती रहती हैं या गुप्त अनाचारों के सेवन पर चली जाती हैं। तीसरी स्थिति है—वे अपने वैधव्य को प्रकृति की देन समझकर, हताश जीवन का सन्तोष अर्जित कर, निस्तेज जीवन बिताती हैं। वे सारी ही अवस्थाएं समाज को नीचे की ओर ले जाने वाली ही हैं।

कानून का प्रतिबन्ध और समाज सुधारकों की बड़ी चेतावनियों के विरुद्ध भी यत्र-तत्र वृद्ध विवाह होते ही रहते हैं। बहुत सारे वृद्धों की ऐसे मामलों में दुर्गति भी होती है। कुछ समाज-सुधारकों के सफल प्रयत्न से वृद्ध विवाह-स्थल पर पहुँचकर कोरे लौट आते हैं। वृद्ध विवाह की इस विरोध

वे हजारों रुपए के चकमे में आ जाते हैं। सुना जाता है—रुपए ऐंठने वाले ठगोरे उन वृद्धों को कभी-कभी लड़की के बदले लड़के को ब्याह देते हैं। इस प्रकार वृद्ध-विवाहों की आए दिन भर्त्सना होती रहती है। अणुव्रती का पक्ष सुधार का है। वह स्वयं ४५ वर्ष की आयु के बाद विवाह नहीं करे और ऐसे विवाहों के लिए सम्मतिदाता व आयोजक भी न बने।



अपरिग्रह अणुव्रत

परिग्रह क्या है? भूमि, धन या भोग-विलास के अन्य साधन-प्रसाधन? परिग्रह जड़-पदार्थ नहीं, वह व्यक्ति की आसक्ति है। संसार

परिग्रह क्या है? में असंख्य पार्थिव पदार्थ हैं जिन पर किसी का ममत्व नहीं, वे किसी के परिग्रहभूत नहीं हैं। परिग्रहवाद से होने वाली समस्याओं को आज व्यवस्था-भेद से मिटाने का प्रयास किया जा रहा है। इसे नवीन अर्थ-व्यवस्था कहते हैं। यहाँ यह भुला दिया जाता है कि [illegible] मूल आसक्ति में है न कि अर्थ में। व्यवस्था आसक्ति की उद्दीप्ति [illegible] दीप्ति का एक हेतु हो सकती है पर वही सब कुछ नहीं। दूसरी [illegible] की उपेक्षा कर केवल अनासक्ति पर बल दिया जाता है, वह भी [illegible] है। समाज के साथ चलने वाला व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था से [illegible] हो यह एक दुःस्वप्न है। अर्थवाद के बन्धनों से परे किसी भी सम[illegible] की सफलता में व्यवस्था और अनासक्ति अपेक्षित है ही।

कहा जाता है बहुत पहले श्रम-प्रधान युग था। उस समय [illegible] के सब लोग मिल-जुलकर जीवन-व्यवहार के [illegible] साध्य नहीं साधन पदार्थ पैदा करते थे। कुछ [illegible] एक काम करते थे तो परिवार के दूसरे आदमी [illegible]। एक परिवार के मनुष्यों में आवश्यक परिश्रम के बटवारे [illegible] था। [illegible] हुआ है। एक व्यक्ति एक प्रकार का श्रम करता था। [illegible] नहीं करना पड़ता, दूसरे व्यक्ति उसके लिए दूसरी वस्तुएँ पैदा करते। [illegible] पारिवारिक व्यवस्था चलती थी। विभिन्न परिवारों के बीच में विनिमय की आवश्यकता बचे हुए पदार्थों के रूप में ही होती थी। तात्पर्य यह हुआ— आवश्यकता प्रधान थी, विनिमय [illegible]। किन्तु धीरे-धीरे उत्पादन-काल में ही लोग विनिमय के लाभ को सोचकर अधिक उत्पादन करने का प्रयत्न करने लगे। बहुत से परिवारों में पशु-पालन का दौरदौरा था। वे गाय, भेड़, बकरी और [illegible] के विनिमय से ही अपनी आवश्यकताएँ पूरी करते थे। यही विनिमय आगे बढ़ा, नाना परिवारों की तरह गाँवों, शहरों, प्रान्तों व देशों में होने लगा। आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं, इसलिए अत्यावश्यक उत्पादन होने लगा और उन [illegible] विनिमय सम्बन्धी

होकर परवर्ती कठिन होने लगा। गेहूँ की बोरी का दाम दो बकरी, एक धोती जोड़े का दाम एक भेड़, जूते की जोड़ी का दाम पाँच सेर फल यह व्यवस्था कितने दिन चल सकती थी? मुद्रा का उदय हुआ। सारे विनिमय का सूत्र धार अब मुद्रा हो गई। अब तो बकरी खरीदने के लिए एक बोरी गेहूँ को घर पर उठाकर नहीं ले जाना पड़ता। सुगमता यहाँ तक हो गई कि जेब में एक पैसा न होने पर भी व्यक्ति लाखों करोड़ों का व्यापार करता है।

मनुष्य ने अर्थ को एक साधन के रूप में अपनाया पर आज तो वह उसका साध्य होकर उसके सिर पर चढ़ बैठा है। आज सारी मानवता अर्थवाद के चक्कर में कुण्ठित है। यही अर्थ साम्यवाद समाजवाद सर्वोदयवाद के उद्गम का हेतु बना है। अर्थ-व्यवस्था का विचार आज मनुष्य का मूलभूत प्रश्न बन गया है। बड़े बड़े विश्व-युद्ध उन्हीं विचारों के संघर्ष और विघटन की पृष्ठभूमि पर हो चुके हैं। सामाजिक जीवन में तो अर्थ का प्रभुत्व और भी शिखर पर जा पहुँचा है। मानव परमेश्वर को भूल कर पैसे के पीछे पड़ा है। क्योंकि समाज में वही तो उसको परखने का मानदण्ड है न? एक ओर समुन्नत अट्टालिकाएं और एक ओर फूस की झोंपड़ियाँ एक ओर खाने के लिए विविध पक्वान्न और एक ओर खाने खाने के लिए भुखमरी। अस्तु—विश्व की अशेष विषमताएं और अव्यवस्थाएं इस अर्थवाद की सत्तारूढ़ता का परिणाम है। इसीलिए तो कहा गया है—

> अर्थ के उत्तुंग शिखरों से चली यह धार।
> उगलती सतत मनर्थों के विकट उद्गार॥
> टूक मानवता हुई जो थी इकाई रूप।
> बैम बन के हो गए और दीनता के कूप॥
> एक नर दुर्बल हुआ और एक दैत्याकार।
> अर्थ के उत्तुंग शिखरों से चली यह धार॥

जिस मनुष्य ने अर्थ को पैदा किया उसी मनुष्य को वह खाने दौड़ता है। मनुष्य अपना बचाव कैसे करे, इस विषय को जब हम सोचते हैं तो अनायास ही 'पुनर्मूषिको भव' का पौराणिक आख्यान सामने आ जाता है। किसी जंगल में एक महायोगी रहता था। एक दिन एक मूषिक (चूहा) दौड़ता हुआ उसके पैरों में आया। योगी ने देखा पीछे से एक बिल्ली उसे खाने को दौड़ी चली आ रही है। यह देखकर योगी ने चूहे के प्रति कहा— मार्जारो भव' अर्थात् तू भी मार्जार (बिल्ला) हो जा। ऐसा ही हुआ। बिल्ली दुम दबाकर भाग गई। किसी दिन कुत्ता मार्जार पर झपटा तब योगी ने कहा—त्वमपि श्वा भव' अर्थात् तू भी कुत्ता हो जा। जब एक दिन व्याघ्र कुत्ते पर आया तब योगी ने कहा—"त्वमपि व्याघ्रो भव" जब सिंह आया तब योगी ने

कहा—"त्वमपि सिंहो भव" चूहा सिंह हो गया सिंह बना भया। भूखा सिंह खाने के लिए इधर उधर देखने लगा। उसी योगी पर दृष्टि पड़ी। खाने के लिए उस पर छलांग भरता आया। योगी ने कहा—कृतघ्न! मैंने तुझे मूषिक से सिंह बनाया अब मुझे ही खाना चाहता है?—"पुनर्मूषिको भव" चूहा सिंह से पुनः चूहा हो गया। यही स्थिति अर्थ की है। मनुष्य ने विनिमय-सुगमता के लिए अर्थ को जन्म दिया और वही अपना आज उसकी सारी मानवता को निगलने जा रहा है। निगल ही जाएगा यदि किसी महर्षि मानव ने अपनी सुषुप्त शक्तियों को उद्बुद्ध कर उसे 'पुनर्मूषिको भव' का आशीर्वाद नहीं दे दिया।

अर्थ क्या है? मनुष्य के द्वारा मान्यता प्राप्त एक जड़ तत्त्व। वह मान्यता सोने को मिली चांदी को मिली चमड़े को मिली कागज को मिली। महत्त्व सोने चांदी चमड़े व कागज का नहीं उसको दी गई मान्यता का है। यदि मनुष्य चाहे लोहे को उतना ही महत्त्व दे जितना सोने को तो लोहा सोना हो जाता है और सोने को उतना ही महत्त्व दे जितना मिट्टी को तो सोना मिट्टी बन जाता है।

प्रश्न रहता है मनुष्य इस अर्थवाद के बन्धन से छुटकारा कैसे पाए? आज यह विनिमय तथा व्यवसाय का साधन नहीं यह स्वयं व्यवसाय बन गया है। पैसे से पैसा पैदा होता है। श्रम से उसका सम्बन्ध टूट गया है। श्रम करने वाले साधनहीन रहते हैं। जिसके पास पैसा है चाहे वह सात पीढ़ी पहले किसी पूर्वज ने कमाया है पैसे से पैसा कमाया जाता है। भोगोपभोग के सारे साधन पैसे से सुलभ हैं। यह सम्भव नहीं कि अर्थ-मुक्ति व कांचन-मुक्ति के लिए आज का मनुष्य पुनः उस वस्तु विनिमय के युग में जाना पसन्द करे। ऐसी स्थिति में व्यवहार्य मार्ग यही रह जाता है—विनिमय-साधन से अधिक जो अर्थ की महत्ता समाज में बन गई है और वह जो सारे समाज-व्यवहार का राजा बन गया है उसे उस राजा पद से विदा दी जाए।

उद्देश्य एक, वाद अनेक

अर्थ को यथावत् स्थिति में स्थापित करने के लिए आज उस पर अंकुश की आवश्यकता है। आर्थिक विषमता मिटे और मनुष्य मनुष्य के बीच एक व्यापक प्रेम की सृष्टि हो इस लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए नाना वाद चल पड़े हैं। वे सब वाद प्रवाद हैं। उन सब में स्व की श्रेष्ठता का आग्रह है। आज मनुष्य के लिए नाना आह्वान बन गए हैं। चौराहे पर खड़ा आज का मानव वादों के तुमुल में बधिर होता जा रहा है। वह किधर जाये? चारों ओर का एक साथ होने वाला आकर्षण उसकी गति को कुण्ठित कर रहा है फिर भी

उसे चलना है। अन्धकार में किसी मशाल का आलोक खोजना है।

आज एक ओर विघटनवाद के नगाड़े बज रहे हैं। ध्वंस के आवरण में एक नई सृष्टि के निर्माण का स्वप्न देखा जा रहा है। प्रबुद्ध मानव को बताया जा रहा है—संघर्ष करो सघर्ष सृष्टि का अविच्छिन्न नियम है। जड़ का सघर्षजन्य गुणात्मक परिवर्तन ही चेतना (आत्मा) का आविर्भावक है। जड़ के अन्तिम विकसित परिणाम से अधिक चेतना कुछ नहीं। सघर्ष से निष्पन्न यह मानव सामाजिक सम्बन्धों से स्वस्थ रह सकेगा। समस्याओं की धुरी अर्थ वाद है। उसका उच्छेद सत्ता से सम्भव है और सत्ता का निग्रह हिंसात्मक वर्ग-विग्रह से। सत्ता का उपयोग नियन्त्रण और विरोधी विचार के उन्मूलन में करो। भूमि अर्थ उत्पादन के अशेष साधनों के वैयक्तिक विचारों पर शाश्वत अंकुश रखो। हर व्यक्ति से मनचाहा श्रम लो उसे समाज-यन्त्र का एक पुर्जा बना डालो तभी इस समाज-यन्त्र में सर्वांगीणता पैदा होगी और वह चारुरूप में चलता रहेगा।

अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए हिंसा और अहिंसा सत्य और असत्य तथा बुराई और भलाई में कोई भेद रेखा मत खींचो। उद्देश्य-पूर्ति के लिए व्यवहृत हिंसा से यदि रक्त की नदियाँ बह जाए मानव-मेदिनी काँप उठे और चारों ओर आतंक छा जाए तो समझो उत्क्रान्ति के आसार सामने आए हैं। यह हिंसा हिंसा के उन्मूलन के लिए और अहिंसा के प्रतिष्ठापन के लिए है। हिंसा के द्वारा हिंसा के कारण दूर होंगे और तब अहिंसा स्वयं प्रतिष्ठित होगी—'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी'। विश्वास रखो जब उक्त विचार चरितार्थ होंगे तभी झोंपड़ी और महल धनी और निर्धन तथा मजदूर और मालिक में अव स्थित विषमता का अन्त होगा।

दूसरी ओर से मनुष्य सुनता है—आर्थिक विषमता का शमन आवश्यक है और सामुदायिक व्यवस्था ही उसका एक मात्र हल है। नियंत्रित जन-समूह का नाम ही समाज है। एक के लिए सब और सबके लिए एक यही समष्टि वाद का मूल मन्त्र है। उसके लिए विषमता का अपनयन और एकता का उन्नयन हिंसा बर्बरता और रक्त क्रान्ति के आधार पर सोचना एक अस्त व्यस्त पाशविक वृत्ति का परिणाम है।

रोगी और कमजोर का प्रश्न एक ओर समाजीकरण से तोला जाता है तो दूसरी ओर साधन सम्पन्नता ही उसका एक मात्र हल माना जा रहा है। उत्पादन के साधन बढ़ाओ देश को सब प्रकार से सम्पन्न बनाओ देश में एक भी आदमी बेकार नहीं रहेगा न भूखा। यह वाद आवश्यकता और आविष्कार दोनों को बढ़ाने की नीति का पोषक है।

हिंसा के द्वारा हिंसा के उन्मूलन और अहिंसा के प्रतिष्ठान का प्रलोभन प्रत्यक्ष धोखादेही है। स्याही से सना वस्त्र स्याही से धोने की परम्परा अब तक नहीं चली। अब यदि चली तो मनुष्य का यह एक महान् दुर्भाग्य होगा।

वादे यह नवोदित वाद बताता है कि रक्त क्रान्ति से परे रहने पर भी व्यक्ति नियन्त्रण की बात विचारणीय है। उसमें भी यह देखना होगा कि मनुष्य की स्वतन्त्रताओं पर तो उससे प्रहार नहीं होता? यह समाज-यंत्र किसी वर्ग विशेष के द्वारा संचालित हो पर स्वाभाविकता तो इसी में है कि वह समाज यंत्र स्वयं चालित रहे। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप उसमें पुर्जा बनकर जुड़ता रहे।

साधन-सम्पन्नता की बात भी इस वाद के साथ कम मेल खाती है, क्योंकि वहाँ साधन साध्य का रूप ले लेता है। यदि रोटी और कपड़े की सुलभता को ही जीवन का साध्य बना लिया जाए तो रोटी और कपड़े के सस्ते सौदे पर मनुष्य को बिक जाना होगा। सुख और शान्ति भौतिक सामग्री जुटाने में नहीं अपितु भौतिक आवश्यकताओं को अल्प कर अन्तश्चेतना को जागृत करने में है।

आज मनुष्य गरीब है इसलिए कि उसके पास इच्छित भोग-सामग्री नहीं है। कल उसे भोग-सामग्री मिल गई पर इच्छाएं उतनी ही आगे और बढ़ गई तो सारी दौड़ का परिणाम होगा उतनी ही गरीबी। दरिद्रता क्या है?—इच्छाओं की अतृप्ति। जिसके पास एक हजार रुपए हैं और वह पाँच हजार में सन्तोष करने की सोचता है। उसके घर में चार हजार की गरीबी है किन्तु पाँच हजार होने पर यदि वह पचास हजार पर सन्तोष लेने की सोचता है तो उसकी गरीबी बढ़कर पैंतालीस हजार की हो जाती है। दुःख और व्याधि भी उतनी ही मात्रा में बढ़ जाती है। जब आदमी लालसाओं को करोड़ों और लाखों पर ले जाता है तब तो उसकी गरीबी और कष्टों का पार ही नहीं रहता। प्रश्न रहता है आढ्यता फिर कहाँ है? आढ्यता न महल में है और न धरती में और न वह धन में है। जीवन का ध्येय शान्ति और सुख को प्राप्त करने का होता है। धन भी मनुष्य इसीलिए अर्जित करता है। जितने अंश में शान्ति और सुख का आरम्भ होता है, वहाँ उसकी आढ्यता माननी चाहिए। शान्ति और सुख वहाँ से शुरू होता है जहाँ से मनुष्य का सन्ताप व इच्छा निरोध लालसा के कुविचारों को आगे आने से इनकार देता है। वह सन्तोष सहस्र से भी प्रारम्भ हो सकता है और लाखों व करोड़ों से भी और विशेष बात यह है धन के सम्पूर्ण अभाव में भी इसका आरम्भ हो

विकासशील प्राणी है। सुविधावाद उसके जीवन का सिद्धान्त है। आज जहाँ वह चरखे का विकास करता हुआ बड़ी-बड़ी मिलों के निर्माण में सफल हो गया है क्या वह उस स्थिति तक वापिस आना चाहेगा? यह उसके सुविधा और विकास का प्रश्न है। जितना वस्त्र वह महीनों में नहीं बना सकता था उतना आज यदि घण्टों में बना सकता है फिर वह उसी कार्य में महीनों लगाने का प्रयत्न करेगा यह असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन तो अवश्य है। झोंपड़ी के निर्माण में कला का विकास और सुविधा करता हुआ वह आज की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के निर्माण पर पहुँचा है। दीपक के मन्द-प्रकाश और अल्पतम प्रकाश से वह अनेक शक्तियों के केन्द्र विद्युत्-सामर्थ्य का सर्जन कर सका है। अब उसे उन सामर्थ्यों को छोड़कर वापिस चलने की बात अप्रिय ही नहीं कुछ उपहासमूलक भी लगती है। दवा वही उपयोगी हो सकती है जो मरीज सह सकता है। उससे भी श्रेष्ठ दवा हो सकती है किन्तु उसका कोई महत्त्व नहीं यदि रोगी उसे सह नहीं सकता हो।

समाज या देश माने या न माने तब भी आदर्श आदर्श ही है। आदर्शवादी को तो उस पर चलना ही चाहिए, यह एक विचार है। यह ठीक है मनुष्य आदर्श-विमुख न हो। वैयक्तिक जीवन में वह किसी भी कठोर मार्ग पर आगे बढ़ सकता है किन्तु जहाँ वह समाज को साथ लेकर चलना चाहता है, वहाँ उसे आदर्श को व्यवहार्य बनाने के लिए कुछ समझौते मान लेने पड़ते हैं। ब्रह्मचर्य में निष्ठा है व्यक्ति स्वयं ब्रह्मचारी होकर चले किन्तु समस्त मानव-जाति के लिए उसी आदर्श पर चलने का यदि आग्रह हो तो वह सम्भव प्रयत्न नहीं माना जा सकता। समाज को उस दिशा में आगे बढ़ाने के लिए एक-पत्नी-व्रत आदि नाना श्रेणियाँ उसके सम्मुख रखनी होंगी। जब यह कठिन या असम्भव लगता हो कि सारा समाज एकाएक यन्त्रमुक्त हो जाएगा तो उस स्थिति में अन्य व्यवहार्य मार्गों की अपेक्षा होती है। आज का मानव-मस्तिष्क तार्किक है। अल्पीकरण के इस सिद्धान्त पर वह यह भी कहते नहीं चूकता यदि पीछे ही चलना है तो रेलगाड़ी व बैलगाड़ी तक ही क्यों? पदयात्री ही होकर हमें गुहा-मानव के युग में चला जाना चाहिए। यदि कहा जाता है बैलगाड़ी व चरखा जीवन की अल्पतम व अनिवार्य आवश्यकताओं में आ जाते हैं तो उसका प्रत्युत्तर होगा कि यह अनिवार्य मर्यादा भी तो एक कल्पित रेखा ही है। किसी दिन मनुष्य बिना वस्त्र व बिना झोंपड़ियों के भी तो रहता था।

शोषण और संग्रह को मिटाने का एक विचार अयन्त्रीकरण है। यह सोचा जाता है मनुष्य अपनी स्वाभाविक गति से सीमित मर्यादित श्रमी

विकास करता रहे पर वस्तुओं के साथ वह वैयक्तिक सम्बन्ध न जोड़े। एक परिवार की तरह सारा देश श्रम करे और परिणाम को बटवारे से भोगे इसमें न कोई संग्रह रहेगा और न कोई शोषण। कुछ कहते हैं समाजीकरण की इकाइयाँ बड़ी से बड़ी हों और यथासम्भव सारा देश एक ही इकाई में हो।

समाजीकरण की सूझ

एक विचार है वे इकाइयाँ जितनी छोटी होंगी उद्देश्य की सफलता उतनी ही अधिक होगी। कुछ भी हो मानव-जाति के लिए यह तो अभीष्ट न हो कि वह जीवन की सारी शक्ति लगाकर व्यष्टि या समष्टि रूप से अपने भौतिक पक्ष को ही प्रबल बनाता जाए। आध्यात्मिक उन्नति के अभाव में भौतिक उन्नति मानव के स्वस्थ शरीर में पक्षाघात है। उसका विनाशक परिणाम आज की विश्वस्थिति में सबके सामने आ ही चुका है। अतः विभिन्न विचारों के मन्थन से यही तथ्य प्रकट होता है कि जीवन-व्यवस्था व्यष्टिपरक न रहे और भौतिक साधनों की अभिवृद्धि व्यक्ति व समाज के विकास का ध्येय न बने। रोटी व कपड़ा मानव-जीवन का सबसे गौण प्रश्न है। उसकी व्यवस्था में ही वह अपने जीवन की सारी शक्ति समाप्त करे यह उचित नहीं। मानव का परम ध्येय तो आध्यात्मिक विकास है। लौकिक और लोकोत्तर दोनों ही प्रश्न अणु के विकास से नहीं किन्तु आत्मा के विकास से समृद्ध बनते हैं। अणुव्रत जीवन व्यवस्था के आधार पर चलने वाला समाज रोटी और कपड़े के विचार में ही अपनी सारी शक्ति का व्यय नहीं करेगा अपितु उस समाज में भौतिक अभ्युदय की बात नगण्य और आत्मिक अभ्युदय की बात प्रमुख रहेगी।

अर्थ-संग्रह और मर्यादा

अर्थ-संग्रह की असीम भावना व्यक्ति को जीवन में एक क्षण भी विश्राम नहीं लेने देती। व्यक्ति दौड़ता है और वह जीवन भर दौड़ता रहता है पर उस दौड़ में उसके जीवन का लक्ष्य उससे भी तीव्र गति से आगे दौड़ता है, परिणाम-स्वरूप जीवन का अन्त आ जाता है पर दौड़ का अन्त नहीं। जिस व्यक्ति के पास १० ००० की पूंजी है, वह ५० हजार का संकल्प कर दौड़ता है। ५० के निकट पहुँचते ही उसका संकल्प लाख तक दौड़ जाता है। करोड़पतियों और अरबपतियों को भी हमने इस दौड़ में विश्राम पाते नहीं देखा। अर्थ-संग्रह की इस असीम लालसा से सारा जीवन असमाप्त हो जाता है। व्यक्ति को यह भुला देना पड़ता है कि मेरे जीवन का और भी कोई पावन ध्येय है। उसके जीवन की सारी शक्ति केन्द्रित होकर इसी अर्थ-लालसा की ज्वाला में भस्मसात् हो जाती है और जीवन अन्यान्य अशेष आनन्दों से रहित होकर विरस हो जाता है। इसलिए आवश्यकता है अणुव्रती अपने जीवन की समस्त

दैवी शक्ति को अर्थ-संग्रह में ही न होम कर अन्यान्य आध्यात्मिक गुणों के विकास के लिए भी उसे बचाए। वह मार्ग क्या हो यह एक समस्या है। देश काल आदि की नाना अपेक्षाओं से घिरा हुआ व्यक्ति किसी एक ही मर्यादा से बाँधा जा सके यह मर्यादा की अपनी भूमिका है पर उससे पूर्व व्यवहार्य मार्ग यही बनता है कि व्यक्ति समाज देश काल आदि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए स्वयं एक अर्थ-संग्रह की मर्यादा करे। मैं अपने जीवन में इतने से अधिक अर्थ-संग्रह नहीं करूँगा अणुव्रती की यह मर्यादा व्यक्तिगत जीवन के लिए और सामाजिक स्थितियों के लिए बड़ी हितकर होगी। अर्थ-संग्रह की एक निश्चित मर्यादा होने से अणुव्रती अन्यान्य आध्यात्मिक क्षेत्रों के विकास के लिए समय बचा सकेगा और समाज में जो आर्थिक विषमता एक भीषण रूप ले रही है यह मर्यादा उसे घटाने में महत्त्वपूर्ण योग करेगी।

लंचा-ग्रहण

व्यापारियों में जिस प्रकार मिलावट और झूठे तौल-माप का व्यसन फैला है उसी तरह राजकर्मचारियों में रिश्वत की एक महामारी फैली हुई है। राजकर्मचारी उनके दुराचरणों का नाम लेकर व्यापारियों को कोसते हैं, और लंचा का नाम लेकर व्यापारी राजकर्मचारियों को। अपनी-अपनी कमजोरी के कारण एक दूसरे के सामने सिर झुका देते हैं कोई किसी का इलाज नहीं कर पाता। प्राचीनकाल में भी लंचा-ग्रहण का उल्लेख मिलता है। उस समय भी उसे एक बहुत बड़ा अपराध माना गया था। जो राजकर्मचारी लंचा-ग्रहण में पकड़ा जाता राजा उसे कठोर से कठोर दण्ड देता। लंचा-ग्रहण आज भी एक भारी अपराध माना गया है। प्राचीनकाल में लंचा-ग्रहण करने वाले सहस्रों में कोई दो चार मिलते थे और आज लंचा नहीं ग्रहण करने वाले सहस्रों में दो चार होंगे। आज तो राजकर्मचारी कहते हैं कि केवल अपने वेतन के भरोसे पर तो हमारा जीवन-निर्वाह भी नहीं होता। हमें एक राजकर्मचारी के स्तर से रहना पड़ता है। हमारा वेतन तो हमारी आवश्यकताओं के लिए आटे में नमक बराबर होता है। वे कहते हैं—राजकर्मचारी होकर रिश्वत न लेना यह एक असम्भव अनुष्ठान है। यह सब स्वार्थ का बचाव है। अपनी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए परिस्थितियों का आवरण डालना है। अपने रहन-सहन का एक ऊँचा स्तर बना कर उसकी पूर्ति के अवैध उपाय सोचना अवांछनीय है। जीवन का व्यवहार्य मार्ग तो यह कहा जाता है अपनी आमदनी के अनुसार व्यक्ति अपने रहन-सहन का स्तर बनाए। पर यहाँ बात उल्टी हो रही है। जो भी दो चार या आदर्शवादी राजकर्मचारी होते हैं क्या वे अपने जीवन को वेतन के आधार पर नहीं चलाते हैं? प्रस्तुत देता

जाता है ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव बड़ा प्रखर होता है और वे अपने क्षेत्र में तरक्की पाते जाते हैं। हाँ कभी-कभी ऐसे कर्तव्यनिष्ठों पर अकर्तव्यनिष्ठों का प्रहार होता रहता है क्योंकि वे उनकी उन्नति को सहन नहीं करते पर उनके कुप्रयत्नों से उन कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों का बिगड़ता कुछ भी नहीं है। अणुव्रती कर्मचारी किसी भी स्थिति में भत्ता-ग्रहण न करे। जीवन-यापन में कठिनाइयां भी आए तो उन्हें झेले।

जनतंत्र और मतदान

जनतंत्र-शासन का मूलाधार मतदान है। नींव यदि सुदृढ़ होती है तो उस पर बड़े से बड़ा प्रासाद खड़ा हो सकता है। जनतंत्र भी तभी स्वस्थ रह सकता है जब मतदान-व्यवस्था निर्दोष हो। एकतंत्र व्यवस्था में एक या कुछ व्यक्तियों का सम्बन्ध ही शासन-व्यवस्था से रहता है। उनका जैसा चरित्र वैसी ही शासन-व्यवस्था। जनतंत्र में शासनतंत्र की उच्चता और हेयता के लिए व्यक्ति व्यक्ति उत्तरदायी है। वह तो एक डेरीफार्म की तरह है जिसमें साधारण सम और उत्कृष्ट श्रेणी का दूध आकर मिलता है और वह एक रस हो जाता है। दूध की श्रेष्ठता व अश्रेष्ठता इसी पर रह जाती है कि उसमें कितनी मात्रा में अच्छा दूध और कितनी मात्रा में बुरा दूध मिलता है। यही बात जनतंत्र शासन-व्यवस्था की होती है। श्रेष्ठ और साधारण व्यक्तियों के मतदान से शासन-सूत्र गढ़ा जाता है। उसकी श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता में वे सभी व्यक्ति उत्तरदायी हैं जो मतदान में सम्मिलित हुए हैं। जनतंत्र की सफलता तभी सम्भव है जब जनता का बौद्धिक व नैतिक स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है। मतदान में यदि अर्थ का प्रभाव बढ़ जाता है और अर्थ के द्वारा मत खरीदे जा सकते हैं तो निश्चित ही किसी दिन देश का समस्त शासन-सूत्र पूँजीपतियों के हाथ में होगा। यदि जातिवाद और सम्प्रदायवाद के आधार पर मतदान चल पड़ता है तो उसका परिणाम होता है, वह शासन-व्यवस्था किसी बड़ी जाति व किसी बड़े धर्म के हाथ में होगी। पर ये सारी बातें आज के युग में अवाञ्छनीय मानी गई हैं। अतः अन्ततोगत्वा मतदान में चरित्र व योग्यता ही महत्त्वपूर्ण मानदण्ड हो जाते हैं। प्राचीन-काल में आज की तरह व्यापक रूप में जनतंत्र व्यवस्था का उदय नहीं हुआ था पर जितना भी हुआ था उसमें इस बात पर अधिक बल दिया गया था कि उम्मीदवार का चरित्र कैसा है। उस काल में उम्मीदवार की चारित्रिक योग्यता सम्बन्धी कुछ मर्यादाएं निश्चित भी थीं। आज भी तथारूप मर्यादाओं की अपेक्षा है। मतदान के लिए रुपए लेना और देना यह एक ऐसी बीमारी है जो सारे शासन-तन्त्र को दूषित करती है। जहाँ पर व्यक्ति रुपए के सौदे पर अपना मत बेचता है वहाँ पर समझना चाहिए

मनुष्य ने अपनी बुद्धि भी बेच दी है। नागरिकता के लिए मत बेचना अभिशाप है। उसमें उसकी व्यष्टिवादी मनोवृत्ति रहती है जो कि समष्टिपरक समाज व देश के लिए अत्यन्त अहितकर है। वहाँ व्यक्ति केवल इसमें सन्तोष मानता है, मुझे इतने रुपए मिल गए। वह यह नहीं सोचता मेरी इस प्रवृत्ति का समाज और देश के हितों पर क्या दुष्प्रभाव पड़ेगा ? वह इस बात को भूल जाता है कि जो उम्मीदवार रुपए बाँट-बाँट कर कुर्सी पर पहुँचता है वह उन्हीं रुपयों को रिश्वत आदि नाना अवैध उपायों से पुनः बटोरेगा।

प्रश्न रहता है दोष किसका है ? मतदान के लिए रुपए लेने वाले का या मत प्राप्ति के लिए रुपए देने वाले का ? दोनों ही दोषी हैं। रुपए लेने वाला जैसे नागरिकता के साथ खिलवाड़ करता है वैसे ही रुपए देने वाला भी। एक उच्च-कोटि के नागरिक में व अणुव्रती में यह आदर्श होना चाहिए जहाँ रुपए देकर मत लेना पड़ेगा वहाँ किसी भी स्थिति में मैं उम्मीदवार नहीं बनूँगा। इसी प्रकार किसी भी स्थिति में रुपए आदि लेकर मतदान नहीं करूँगा।

महत्त्वाकांक्षा का अर्थ

पद की आकांक्षा प्राचीन नीति शास्त्र में वर्जित थी। वहाँ यह आदर्श माना जाता था कि व्यक्ति स्वयं पद के लिए उम्मीदवार न हो। दूसरे व्यक्ति उसकी योग्यता देखकर उसे किसी पद पर स्थापित करें। जनतंत्र का मार्ग दूसरा है। वहाँ तो योग्य व्यक्ति को भी अपनी ओर से अपना नाम देना पड़ता है। उसके पीछे भी विवेक है। समाज शास्त्रियों ने बताया है, एक उम्मीदवार (Candidate) को केवल अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए खड़ा नहीं होना चाहिए। उसको यह सोचना चाहिए, मैं स्थानापन्न होकर अपनी योग्यताओं का समाज हित के लिए अधिक उपयोग कर सकूँ। अणुव्रती आदर्श-पथ का पथिक है। उसे केवल पद व अधिकार के लोभ से ही राजनीति में नहीं आना चाहिए। महत्त्वाकांक्षा मनुष्य के जीवन में स्वाभाविक है, पर वह अनैतिकता की कोटि में आ जाती है, जहाँ उसका उद्देश्य महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति ही हो जाता हो। ऐसी स्थिति में व्यक्ति आदर्श का पथिक न रह कर अवैध और अनैतिक प्रयत्नों से भी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति करना चाहता है जो कि सारे जनतंत्र को शिथिल कर देने वाली बात है। महत्त्वाकांक्षा का अर्थ होना चाहिए, अधिक से अधिक काम करने की आकांक्षा। इसके साथ व्यक्ति यदि यह सोचता है कि मैं अपनी कार्यजा शक्ति का उपयोग अमुक स्थिति पर पहुँच कर अधिक कर सकता हूँ तो वहाँ कार्य करने की भावना प्रमुख है और स्थिति-सम्पन्नता की भावना गौण। अणुव्रती स्थिति-सम्पन्नता को किसी भी

समय अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य न बनाए। इससे उसका आत्महित भी सधेगा साथ साथ जनतंत्र की सफलता में भी चार चाँद लगेंगे।

चिकित्सक और उसका मार्ग

चिकित्सक की आजीविका सेवा की आजीविका कही जाती है पर उसके जीवन में यदि द्रव्यार्जन की प्रधानता हो जाती है तो वह केवल दवा का पेशा बन जाता है। यदि चिकित्सक व्यवसाय-बुद्धि से सब कुछ सोचता रहे तो वह संसार का कभी भला नहीं सोचेगा। लोगों में अधिक बीमारियों के फैलने से ही उसे हार्दिक प्रसन्नता होगी। प्रश्न हो जाता है जिसका जो व्यवसाय है वह उसकी वृद्धि न चाहे यह कैसे हो? समस्या कठिन हो जाती है कि आदर्श चिकित्सक का अन्तरालोचन क्या हो? रास्ता सीधा है उसका काम होता है बीमार को स्वस्थ करने का न कि स्वस्थ को बीमार करने का। वह अपने चिन्तन का सम्बन्ध स्वस्थ व्यक्तियों से जोड़ ही क्यों? यदि जोड़ता है तो उसका मानसिक धरातल इतना ऊँचा होना चाहिए कि अपने व्यवसाय वृद्धि की लालसा में भी अस्वास्थ्य-वृद्धि उसकी कल्पना में न आए। उसके चिन्तन का सम्बन्ध यहीं समाप्त हो जाता है अस्वस्थ को मैं स्वस्थ करने में कर्तव्यनिष्ठ व परिश्रमनिष्ठ रह सकूँ। आयुर्वेद ऐलोपैथी होमियोपैथी प्राकृतिक चिकित्सा आदि नाना चिकित्सा-पद्धतियाँ व नाना चिकित्सक हैं। जहाँ जो बुराई चल सकती है वहाँ उसे चलाने का चिकित्सक लोग प्रयत्न करते हैं। खाद्य पदार्थों में मिलावट होती है इसलिए रोग पैदा होते हैं। रोग-मुक्ति के लिए चिकित्सक नकली व मिलावट की दवाइयाँ देते हैं। मिलावटी खाद्य से पैदा हुआ रोग मिलावटी दवाइयों से कैसे मिटेगा प्रत्युत वह बढ़ेगा। इसलिए मिलावट स्वयं समाज का एक रोग बन जाता है। दवाइयों में भी मिलावट और वह भी स्वयं चिकित्सकों के द्वारा हो यह तो घोर विश्वासघात होता है। रोगी वैद्य के हाथ में अपना अमूल्य जीवन सौंपे और वैद्य उसे नकली व मिलावट पूर्ण दवा दे यह तो अपने तुच्छ लाभ के लिए रोगी के जीवन के साथ खिलवाड़ करना है। कभी-कभी चिकित्सक लोग अपनी फीस चालू रखने के लिए व औषध का चार्ज बढ़ाने के लिए चिकित्सा को अनवरत लम्बी कर देते हैं। रोगी समझ भी जाता है निरर्थक समय लगाया जा रहा है पर चिकित्सक के हाथों फंसा बिचारा वह क्या करे? हाँ इतना तो अवश्य कर लेता है भविष्य में बीमार पड़ा तो इस कम्बख्त चिकित्सक के पास नहीं जाऊँगा। तात्पर्य यह होता है इस प्रकार अनैतिक आचारों पर चलने वाला चिकित्सक धर्म को भी खोता है और ग्राहक को भी।

चिकित्सकों में असहिष्णुता व मनोमालिन्य बहुत देखा जाता है। आयु

वेद पर चलने वाले डाक्टरों को नहीं चाहते और डाक्टर उन्हें। पर विशेषता तो यह है कि डाक्टर डाक्टरों को नहीं चाहते वैद्य वैद्यों को। रोगी वैद्य से इलाज कराता है विशेष जिम्मेदारी के लिए यदि बीच में डाक्टर को बुला लेता है तो वैद्य की आँखों में खून उतर आता है। यह भी देखा जाता है आयुर्वेद वाले ऐलोपैथी को नाना उदाहरणों से बुरी बताते हैं और ऐलोपैथी पर चलने वाले डाक्टर आयुर्वेद को। यही स्थिति अन्यान्य चिकित्सा-पद्धतियों के विषय में है। भारतवर्ष में चिकित्सकों का मानसिक धरातल सहिष्णुता व सद्भाव से रीता लगता है। उनमें सुसंस्कारों के बीजारोपण की महती आवश्यकता प्रतीत होती है। चिकित्सकों के गुण-ग्राहिता के अभाव में देश ने बहुत क्षति उठाई है। आयुर्वेद के सहस्रों वर्ष बाद पैदा होने वाली चिकित्सा प्रणालियाँ बहुत आगे बढ़ गई हैं। आयुर्वेद का नया विकास तो दूर रहा दिन प्रतिदिन ह्रास का ही वातावरण देखने में आता है। विदेशों में जहाँ कोई एक डाक्टर नई खोज करता है वह उसे संसार में फैलाना चाहता है। भारतवर्ष के किसी वैद्य को कोई छोटा-मोटा ही नया नुस्खा हाथ लग जाता है वह उसे छिपा कर रखना चाहता है। यहाँ तक कि अपने लड़के को भी नहीं बताता। वह सोचता है, आज मैं अपने लड़के को सिखा दूँ और कल यदि लड़का मेरे से अलग हो जाएगा तो मेरे व्यवसाय को खत्म कर डालेगा। इसी संकीर्ण मनोवृत्ति को भारत वासियों ने आयुर्वेद तथा ज्योतिष आदि नाना विषयों में अब तक अपनाया है। उसका परिणाम सामने यह आ रहा है कि उक्त प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों के लिए जहाँ दूसरे देशों के लोग भारतवर्ष की ओर देखा करते थे आज भारतवासी दूसरे देशों की ओर झाँकते हैं। अणुव्रती चिकित्सक असहिष्णुता आदि दुर्गुणों से ऊँचा उठे। वह मिलावटी दवाइयों के प्रयोग से बचे व अपने लाभ के लिए रोगी की चिकित्सा में अनुचित समय न लगाए।

विवाह-सम्बन्ध और ठहराव

अर्थवाद का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि विवाह भी एक व्यवसाय बनता जा रहा है। विवाह का अर्थ होता है गृहस्थ-जीवन की गाड़ी को चलाने के लिए दो व्यक्तियों का साथी के रूप में जुड़ जाना। उसमें अपेक्षा होती है, यह देखने की कि दोनों अपने आकार-प्रकार व अन्य विशेषताओं में बराबर हैं या नहीं। तीसरे व्यक्ति का यहाँ कोई स्वार्थ अपेक्षित नहीं होता। आज समाज में उन दो की अपेक्षाएं गौण हो गयी हैं और विवाह माता पिता की अर्थ लालसा को पूरने का व्यवसाय बन गया है। कुछ दिनों पूर्व तो माता-पिता केवल कल्पना करते थे अमुक इतने का दहेज देने वाला है और अमुक इतने का पर आजकल तो खुल कर सौदा होने लगा है। लड़कों को इतनी मिलती

है। अधिक रुपए देने वाला मिलने पर थोड़े रुपए देने वाले का सौदा इन्कार भी कर दिया जाता है। बाजार की दर भी घटती-बढ़ती जा रही है। आज कल उसमें परिवर्तन आ गया ऐसा लगता है। किसी युग में लड़की महंगी थी। लड़की के माता-पिता लड़के के माँ-बाप से रुपए लेते थे। अब लड़कों की महंगाई है। दर इतनी ऊँची चढ़ गई है कि लड़की वालों का दम घुटने लगा है। जिसके दो चार लड़कियाँ हैं आजीविका साधारण है उसकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। पहले कुछ लोग ही ठहराव करते थे और वे भी गुप्त-छिप कर, पर अब तो धनीमानी लोग भी ठहराव करने लगे हैं। एकाएक स्पष्ट आँकड़ा तो नहीं कहना चाहते वे प्रकारान्तर से अपनी भावनाएं व्यक्त करते हैं। वे लड़की वालों से कहते हैं रुपए पैसे की हमारे कोई बात नहीं है। रुपए का क्या? अमुक आदमी आया था वह भी विवाह में २० हजार रुपए तक लगा देने की बात कहता था पर हमें तो लड़की अच्छी चाहिए और आप जैसे उदारचेता सज्जन। लड़की वाला झट समझ लेता है। यदि इससे अधिक खर्च करने की शक्ति नहीं है तो अपनी राह लेता है। इस कुप्रथा का प्रभाव यहाँ तक बढ़ गया है कि माता-पिता के इस कष्ट से द्रवित होकर कुछ लड़कियाँ अपघात कर लेती हैं कुछ आजीवन के लिए ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लेती हैं। कुछ ऐसे भी प्रसंग देखने में आते हैं जहाँ विवाह के प्रयत्न में लड़कियाँ प्रौढ़ावस्था को पार कर जाती हैं। सामान्यतः लड़की को ब्याह देने में कष्ट तो हर एक को उठाना ही पड़ता है। इन सारी स्थितियों का मूल ठहराव है। इस प्रकार की घृणित प्रथा और वह भी आज के युग में आश्चर्य! नारी जाति का यह एक दुःसह अपमान है। नारी और पुरुष का सम्बन्ध जबकि सृष्टि का एक सहज सम्बन्ध है उस पर पुरुष का यह क्रूर प्रतिबन्ध कैसे क्षम्य कहा जा सकता है? अणुव्रती अपने पुत्र व कन्याओं का रुपए आदि लेने का ठहराव कर विवाह नहीं करेगा।

प्रश्न रहता है अणुव्रती लेने का ठहराव न करे, यह तो सम्भव हो सकता है। इसमें तो उसे अपनी ही अर्थ-लालसा को रोकना पड़ता है पर समाज में जब तक बिना कुछ देने का ठहराव किए लड़कियों का विवाह भी असम्भव है ऐसी स्थिति में अणुव्रती क्या करे? वैसे तो देने का ठहराव भी अनुचित है और उसी प्रथा को बल देनेवाला है पर इसका सम्बन्ध अणुव्रती की आत्मा से नहीं जितना उसकी कन्या से है। अणुव्रती का झुकजाना भी ऐसी स्थिति में दूसरा रूप ले लेता है। फिर भी अणुव्रती इस बात के लिए प्रयत्नशील तो अवश्य रहे कि मुझे देने का ठहराव भी न करना पड़े।

गहराई से यदि देखा जाए तो ठहराव करने वाले केवल अपनी मान

सत्ता को ही मानते हैं। ठहराव नहीं करने पर भी लड़की के माता-पिता यथा सम्भव धन देते तो हैं ही। अन्तर केवल इतना ही पड़ता है कि वे अपनी इच्छानुसार देते हैं और ठहराव करने वाला उन्हें कुछ कसकर अधिक लेता है। ठहराव करने वाले के साथ लड़की के माता-पिता का कोई प्रेम नहीं रह जाता। परिणाम यह होता है ठहराव करने वाला पारस्परिक सम्बन्ध में नैतिकता मानवता और धर्मों का भ्रम छोड़ देता है।

दहेज और प्रदर्शन

आदर्श तो यह है अणुव्रती दहेज आदि ले ही न। यद्यपि यह एक रूढ़ि है। रूढ़ि इसलिए तो नहीं कि माता पिता प्यार से अपनी बेटी को कुछ न दें पर समाज-व्यवहार में जो भाव इसका रूप है वह बहुत विकृत बन चुका है। अब दहेज पुत्री के प्रति प्यार का सूचक न रहकर पिता के सम्मान का सूचक रह गया है। दहेज के अवसर पर अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए पिता को कितना भी कष्ट उठा करके बहुत कुछ देना पड़ता है। जहाँ अनिवार्यता है वहाँ भार है जहाँ भार है वहाँ प्यार कहाँ? दहेज को कुप्रथा बनाने का यही एक हेतु रह जाता है। पिता अपने प्रेम से लड़की को चाहे कुछ भी दे देता है पर यदि सामाजिक प्रथा के अनुसार नहीं तो समाज सुधारक कोई आपत्ति नहीं मानते। उसमें अनिवार्यता नहीं प्रदर्शन नहीं। इसलिए उस देने का समाज पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। पर ऐसे देने वाले भी बहुत विरले मिलते हैं। बहुतेरे तो ऐसे मिलते हैं दहेज में १ हजार की सम्पत्ति दे देते हैं पर विधिवश यदि लड़की का ससुराल पक्ष गरीब हो गया या लड़की स्वयं आर्थिक अभाव से पीड़ित है तो उसे सौ-पचास रुपए का योग-दान करना भी उनके लिए कठिन हो जाता है। अस्तु, इस विषय में अणुव्रती की न्यूनतम मर्यादा यह है कि वह अपने यहाँ आने वाले दहेज आदि का प्रदर्शन न करे और ऐसे प्रदर्शनों में भाग न ले। लगता है इस दिशा में होने वाले अणुव्रती के इस चरण-विन्यास से भी समाज में कुछ सुधार होगा। जैसे बताया गया कि दहेज में सबसे बड़ी बुराई यही है कि वह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। प्रदर्शन का निरोध होने से वह प्रश्न टूट जाता है। अणुव्रती पिता अपनी पुत्री को जो भी दहेज आदि देगा तो वह समाज में उसका विज्ञापन नहीं करेगा और अणुव्रती पिता अपने पुत्र के ससुराल से आने वाले दहेज का भी न तो विज्ञापन करेगा और न कम या अधिक की टिप्पणी करेगा। इससे दहेज को लेकर समाज में होने वाली प्रतिस्पर्धाओं और अनिवार्यताओं का भार मिटेगा। उस स्थिति में दहेज का अर्थ केवल इतना ही रह जाएगा—पिता अपने प्यार से अपनी पुत्री को यथासम्भव कुछ भी दे।

शील व चर्या

आमिष-आहार

मनुष्य का आदर्श उसकी जीवन चर्या से ही परखा जाता है। खान पान रहन-सहन का विवेक ऊर्ध्वमुखी हो यह सदा ही अपेक्षित है। मांसाहार क्रूर हिंसा का प्रेरक है अतः यह वर्जनीय है। भारतवर्ष की तो बात ही क्या अन्य पाश्चात्य देशों में जहाँ शत प्रतिशत लोग मांसाहारी थे इन दिनों निरामिषता का प्रचार प्रबल होता जा रहा है। मांसाहार-निषेधक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं बनती जा रही हैं। विषय को काफी उत्तेजन मिल रहा है। साथ-साथ एक अन्य विचारधारा भी पनपती जा रही है जो मांसाहार को स्वाभाविक मान कर क्षम्य समझती है। क्षम्य ही नहीं जलाशयों में मछलियों की खेती करने पर भी बल देती है। मच्छों का उत्पादन कैसे बढ़े यह तो बड़े-बड़े मनीषिजन भी सोचने लगे हैं। ऐसी ओटोमेटिक नावों का भी आविष्कार हो चुका है जो समुद्र में चलती हुई थोड़ी सी देर में सहस्रों बड़ी-बड़ी मछलियाँ पकड़ लेती हैं। कुछ लोग इस बात में भी विश्वास रखते हैं कि मनुष्य प्रतिदिन समुद्र से लाखों मन मछलियाँ पकड़ता है, और खाता है, प्रकृति में सन्तुलन करने के लिए यह ठीक है नहीं तो कुछ ही अवधि में समुद्र मछलियों से इतना भर जाएगा कि उनमें जलयानों का गमनागमन भी सम्भव नहीं हो सकेगा। प्रकृति का सन्तुलन भी बिगड़ जाएगा। बुद्धि की पहुँच अद्भुत है। वे लोग प्रकृति में विप्लव न हो इसलिए मांसाहार को नैसर्गिक बताते हैं। उन्हें यह पता नहीं प्रकृति में समता रखने वाले उनसे भी बड़े जानवर समुद्र में मौजूद हैं। एक-एक बड़ा मच्छ एक साथ सैकड़ों हजारों छोटी मछलियों को निगल जाता है। मनुष्य जितनी भी मछलियाँ समुद्र से निकालता है वे नहीं के बराबर हैं। अतः विवेक की बात यह है कि मनुष्य प्रकृति में सन्तुलन का दायित्व छोड़ कर अपनी मानवता में सन्तुलन लाए। यह देखे कि मेरे जीवन में कितनी मानवीय वृत्तियाँ हैं और कितनी आसुरी। प्रकृति में सन्तुलन लाने की चिन्ता में कहीं आसुरी वृत्तियाँ उसके जीवन में ही असन्तुलन पैदा न कर दें।

कुछ भी हो मांसाहार फिर से एक विवादग्रस्त प्रश्न बन गया है। समय-समय पर अनेकों विचारपूर्ण लेख और भाषण जनता के सामने आते हैं। एक पक्ष कहता है कि मनुष्य का प्राकृतिक खाद्य मांसाहार है तो दूसरा पक्ष

विविध युक्तियों और प्रमाणों से यह सिद्ध कर देता है कि मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी है। मनुष्य अपनी मूल प्रकृति से क्या है—यह केवल युक्ति और विश्वास का विषय है जो दोनों ही पक्षों से भिन्न है। प्रत्यक्ष का पर्याप्त स्थान दोनों में ही नहीं है। अतः अपेक्षाकृत यह सोचने के कि मनुष्य अपने मूल स्वभाव से शाकाहारी है या मांसाहारी यह सोचना अधिक निर्णायक हो सकता है कि मनुष्य को होना क्या चाहिए? इस प्रकार सोचने से जो भी निर्णय हमारे सामने आता है, वही उस बात का निर्णायक हो सकता है कि मनुष्य अपने मूल स्वभाव से क्या है? ऐसा न भी हो तो भी कोई आपत्ति नहीं क्योंकि ध्येय तो यही है कि आज की विकासोन्मुख मानवता को किस ओर जाना श्रेयस्कर है—आमिषता की ओर या निरामिषता की ओर?

आज अधिकार प्राप्ति का युग है। समस्त व्यक्ति अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह कहता है कि मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक जीने का अधिकार है। आज एक वर्ग दूसरे वर्ग को उसके अधिकार दिलाने में जी-जान से योगदान करता है। पर क्या किसी ने इन असंख्य पशुओं की करुण चीत्कारमयी अधिकारों की मांग पर भी कान लगाया है? क्या उन्हें इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार नहीं है? क्या वह मानव-जाति के लिए प्राण-न्योछावर कर स्वर्ग की कामना करते हैं? क्या उनके हित-संरक्षण का विचार कभी सुरक्षा-परिषद में चला? क्यों चले कैसे चले उनका वहाँ कौन प्रतिनिधि है? आज प्राणी जगत् में मनुष्य का राज्य है, उसकी सामन्तशाही है वह अपने समाज के सिवा इतर प्राणियों का चाहे जैसे उपयोग करे, उसे रोकने वाला कौन है? वह कहता है—मैं ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति हूँ। उसने मेरे लिए ही सब कुछ रचा है। मेरे लिए किसी भी प्राणी का वध अवैध नहीं है। आज यदि मांसाहार-निरोधक प्रस्ताव मानव-समाज में आए, अधिकांश व्यक्ति सम्भवतः उसके विरोध में अपना मतदान कर उस प्रस्ताव को असफल करेंगे किन्तु उस प्रस्ताव की यथार्थता तो तब प्रकट हो जब उस परिषद् में पशुओं को भी मतदान का अधिकार मिले अस्तु आवश्यक तो यह है कि आज भी साम्य भावना को मानव-समाज के कटघरे से बाहर निकाल कर उसे यथा सम्भव और भी व्यापक बनाया जाए।

मानव-समाज से मांसाहार का मूलोच्छेद कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं। असम्भव तो वह तब होता है जब मांसाहार के बिना मानव जी ही नहीं सकता पर ऐसी बात नहीं करोड़ों मनुष्य निरामिष भोजी होते हुए भी आमिष भोजियों की तरह ही नहीं उनसे भी अधिक सुखमय जीवन बिताते हैं। जब मनुष्य मांसाहार के बिना भी सुखपूर्वक जी सकता है तब वह क्यों

आवश्यक है कि वह इस हिंसापूर्ण और दूसरे जंगम प्राणियों के प्राकृतिक अधिकारों को कुचलने वाली मांसाहार-वृत्ति से चिपटा रहे।

इस विषय में सबसे बड़ी समस्या जो कि इस ओर विचारने मात्र से मनुष्य को विमुख करती है वह यह है कि जब ६६ प्रतिशत मनुष्यों का जीवन मांसाहार पर ही अवलम्बित है जिस पर अन्नाभाव की चिन्ता मानव-समाज को सताती रही है यदि सभी मनुष्य मांसाहार का परित्याग करदें तो भूखों मरने के अतिरिक्त उनके सामने कोई मार्ग नहीं रहेगा। इसी विचार-तरंग से आक्रान्त होकर ही महात्मा गांधी जैसे अहिंसा प्रसारकों ने शाकाहार में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी इस दिशा में कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया। आज के अन्य अहिंसावादी भी अधिकांशतः इस विषय में मौन हैं और उस मौन का एकमात्र यही कारण हो सकता है। हमें देखना तो यह चाहिए कि क्या संसार में कभी एक भी ऐसा आन्दोलन हुआ है जिसके सफल होने में बड़ी-बड़ी बाधाएं न रही हों। किन्तु जब जब मनुष्य ने इन बाधाओं के निराकरण के विषय में सोचा प्रयत्न किया तब तब उसे समाधान मिला है। इतिहास कहता है कि मनुष्य प्रारम्भिक दशा में मांसाहारी ही था। ज्यों ज्यों विकास की ओर अग्रसर हुआ उसने खेती करना सीखा अन्न पकाना सीखा और परिणामतः सारा संसार अन्नाहारी है। करोड़ों मनुष्य तो केवल अन्नाहारी हैं। जबसे मनुष्य मांस से अन्नाहार की ओर आया है, निःसन्देह आज निरामिष-भोजी अपेक्षाकृत मांसाहारियों से अधिक विकास की अवस्था में है। जब मनुष्य का ध्येय मांसाहार की दिशा से मुड़कर निरामिषता की दिशा में आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ही हो चुका था तब आज फिर अहिंसावादियों को मांसाहार का विरोध करने में संकोच और हिचकिचाहट क्यों ?

आज के विचारक जैसे इस विषय में उपेक्षा का प्रत्याहन करते हैं सहस्रों वर्ष पूर्व के विचारक भी इसी समस्या से घबरा कर यदि मांसाहार पर ही डटे रहते तो मनुष्य की अन्न-निष्पादन शक्ति का कुछ भी विकास न हुआ होता और शत-प्रतिशत मनुष्य केवल मांसाहारी ही होते वे अन्न का नाम ही न जानते।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। ज्यों ज्यों मनुष्य अन्न का आदी हुआ त्यों त्यों अन्न का उत्पादन वृद्धिगत हुआ। इतिहास में विश्वास रखने वाले इसमें दो मत नहीं हो सकते। आज के वैज्ञानिक साधनों के युग में तो यह सोचना यथार्थता से बहुत परे होता है कि मांसाहार का परित्याग कर देने के पश्चात् मनुष्य के जीने का कोई सहारा नहीं रहेगा।

इस दिशा में मनुष्य को असम्भवता के दर्शन इसलिए होते हैं कि वह

अपनी कल्पना को एक दम अन्तिम छोर तक ले जाता है। वह सोचता है आज यदि सारा संसार मांसाहार का परित्याग करदे तो पर्याप्त अन्न आएगा कहां से ? किन्तु तथ्य यह है कि आज यदि मांस-परिहार का कोई आन्दोलन प्रारम्भ होता है और सफलता की ओर ही निरन्तर बढ़ता जाता है तो भी सारे संसार का निरामिष भोजी होना शताब्दियों का काम होगा। इस दीर्घ काल में आज का विज्ञानवादी मनुष्य अन्न-समस्या को नहीं सुलझा सकेगा यह नहीं सोचा जा सकता। अमरीकी स्टेट डिपार्टमेन्ट ने बहुत से तथ्यों और आंकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया है कि आज भी बिना किसी विस्मय कारी अन्वेषण के मानव इस स्थिति में है कि यदि आबादी तिगुनी हो जाए तो भी भूख का इस धरती से नाम-निशान मिट सके[1]।

करोड़ों मनुष्य आज निरामिष भोजी हैं। वे सब किसी एक दिन और एक क्षण में नहीं बने हैं। ज्यों-ज्यों बनते गए हैं त्यों-त्यों अन्नादि की सुलभता भी बनती गई है। सारांश यही है कि लोग अपनी अव्यावहारिक कल्पना से स्वयं ही इस विषय को अव्यावहारिक बना देते हैं।

आज किसी नियम व अन्य विषय की उपयोगिता आंकने का भी यही एक निर्धारित-सा भ्रम हो चुका है कि वह विश्वव्यापी हो सकता है या नहीं ? देखना तो यह है कि सम्भव माने गए नियम और अन्य विषयों में से भी विश्व व्यापी कितने होते हैं ? यदि कोई आदर्श सीमित क्षेत्र में ही व्याप्त होना सम्भव है तब भी उसके प्रसार की उपेक्षा क्यों की जाए ? जितने व्यक्ति उसे अपने जीवन में उतारेंगे उतनों का उत्थान होगा उसमें कौन सी बुराई है ?

एक भी व्यक्ति यदि सामिष भोजन से निरामिषता की ओर बढ़ता है तो बहुत हुआ। अहिंसावादी को तो उसके लिए प्रयत्नशील होना ही चाहिए। क्योंकि वहां हिंसा का ह्रास और अहिंसा का विकास है, किन्तु अहिंसावादियों का इस विषय में उपेक्षात्मक निष्कर्ष ऐसा लगता है कि मानों सारा संसार सहस्रों वर्षों के प्रयत्नों से भी अहिंसावादी हुआ ही नहीं आगे उतने ही काल में वह हो सके ऐसी सम्भावना नहीं है इसलिए अहिंसा का प्रसार अव्याव हारिक है।

आवश्यक है कि अहिंसावादी इस विषय में सुसंगठित रूप से कोई अहिंसात्मक प्रयत्न प्रारम्भ करें। मांसाहार हिंसा-प्रसार का सबल साधन है वह इस अर्थ में कि निरामिष भोजी के हृदय में हिंसा से स्वतः घृणा रहती है। अधिकांश निरामिष भोजी प्राणियों का वध करना दूर, मांस तक को

---

1 सर्वोदय अर्थशास्त्र पृष्ठ ११०

खाने में कांप उठते हैं। मनुष्य के मारने की बात तो बहुधा वे सोच ही नहीं सकते। मांसाहारियों की स्थिति ऐसी नहीं है। वे पशु-हत्या से घृणा न करते हुए मनुष्य-हत्या के भी अधिक समीप पहुँच जाते हैं। आवश्यकतावश वे किसी भी हिंसा में सहजतया प्रवृत्त हो सकते हैं। यदि संसार से मांसाहार उठ जाए तो होने वाली बर्बर हिंसाएं अवश्य कम होंगी और अहिंसा का मार्ग बहुत कुछ निरापद होगा।

नियम के विषय में

अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक उत्थान का एक अहिंसात्मक संगठन है। उसमें मांसाहार निरोधक नियम उक्त दृष्टि के अनुसार आवश्यक माना गया है। अणुव्रती मांसाहार का सर्वथा त्यागी होगा। दिल्ली प्रथम अधिवेशन के पश्चात् ज्यों-ज्यों अणुव्रत आन्दोलन के नियम सार्वजनिक क्षेत्र में आए, विभिन्न विचारकों और आलोचकों के हाथों में पहुँचे। बहुत सहानुभूतिपूर्ण समीक्षा हुई। मांसाहार-निषेध का नियम तो विशेष रूप से समीक्षा का अंग बना। प्रमुख गांधीवादी विचारक श्री किशोरलाल मशरूवाला ने इस सम्बन्ध से पत्र-व्यवहार करते हुए लिखा था—"निरामिष भोजन के सम्बन्ध में मेरा व्यक्तिगत मत तो यही है कि कभी न कभी मानव-जाति को इस पर आना होगा। लेकिन यह एक लम्बा मार्ग है और जिस हेतु से आप इस आन्दोलन का आयोजन करना चाहते हैं उसमें इसका स्थान व्यवहार्य नहीं है। यदि इस विषय में कदम उठाना हो तो बौद्धों के 'उपोसथ' व्रत के तौर पर सोचा जा सकता है "यानि मास में अमुक दिन।

कलकत्ता युनिवर्सिटी के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० सातकौड़ी मुकर्जी प्रो० अमरेश्वर ठाकुर व डा० कालिदास नाग आदि बंगाली विचारकों ने आचार्यवर से अनुरोध किया कि अणुव्रतों का प्रसार बंगाल में अपेक्षाकृत अन्य प्रान्तों से अधिक सम्भव है किन्तु मांस सम्बन्धी नियम में कुछ संशोधन की आवश्यकता है क्योंकि बंगालियों के लिए एकाएक मांस परित्याग करना कठिन है।

सुप्रसिद्ध विचारक श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने एतद्विषयक चर्चा के प्रसंग में सुझाव दिया—"मेरा मत तो यह है कि नियम की रचना निषेधात्मक है ही और वह वैसे ही रहे। जो जन्मजात मांसाहारी हैं उनके लिए इतने शब्द और जोड़ दिए जाएं कि पक्ष में या मास में इतने दिन नहीं खाऊँगा। इससे नियम की निषेधात्मकता भी अक्षुण्ण रहेगी और नियम भी अधिक व्यवहार्य हो सकेगा।"

डा० रामाराव एम० ए० पी० एच० डी० ने अन्य सुझावों के साथ इस

सम्बन्ध में निम्नोक्त सुझाव दिया—'जो मांसभक्षी हैं उनके लिए सप्ताह में कुछ दिन शुभ रहने चाहिए, घर के लिए न भी हों पार्टी आदि में वहाँ कि खाना अनिवार्य-सा हो जाया करता है।

मि० एन० ए० पीटरस का सुझाव था—'मांसाहारियों से मांस एकाएक नहीं छोड़ा जा सकता। उनके लिए मास या सप्ताह में कुछ दिन का प्रतिबन्ध होना चाहिए।

मि० रायरिक ने पूर्वोक्त प्रकार के सुझाव के साथ साथ इस बात पर विशेषतया जोर दिया था कि दवाई आदि के रूप में तो इस नियम से अपवाद खुला ही रहना चाहिए।

इन सारी चर्चाओं के पश्चात् भी अणुव्रती के लिए मांसाहार-त्याग का नियम वर्तमान ही है। प्रत्येक अणुव्रती को उसका यथावत् पालन करना है। अन्यान्य मांसाहारी-जातियों तथा विदेशों में भी आन्दोलन का स्वागत है। उन सबका कहना है—मांसाहार हमारे संस्कारों का विषय है न कि धर्मविश्वास का इसलिए मांसाहार के विषय पर यथासम्भव और विचार किया जाए।

मद्य-पान

भारतीय संस्कृति में मद्य-पान सदा से हेय माना गया है। धर्मशास्त्रों ने मद्य-पान के बुरे परिणाम बताए, राजाओं ने इस विषय में नाना कानून बनाए और वह पंच-पंचायतों में सदा वर्जित रहा। मद्य-पान करने वालों पर पंचायत द्वारा व राज्य के द्वारा कड़ा दंड होता था। कतिपय शीत-देशों में मद्य-पान को सामाजिक रूप मिला है, किन्तु यह अविवेक होगा—उष्णता प्रधान देश में रहने वाले भारतवासी भी उनका अनुकरण करें। मद्य पान के विरोध में महात्मा गांधी ने व्यापक आन्दोलन किया था और वर्तमान भारत सरकार भी समग्र भारतवर्ष में इसे सर्वत्र घोषित करने के लिए प्रयत्नशील है। कुछ प्रान्तों में मद्य-निषेधक कानून बन ही गया है। कुछ प्रान्तों के शासकगण चाहते हैं कि हमारे प्रान्त में भी मद्य-निषेधक कानून बन जाए, पर उन्हें एक कठिनाई लगती है वे कहते हैं—मद्य से जो करोड़ों रुपए की आमदनी राज्य को होती है वह बन्द हो जाने से शासन-व्यवस्था पर बड़ी कठिनाई आती है। मद्य का निषेध होने से प्रान्त में शिक्षा का विकास भी रुक जाएगा क्योंकि शिक्षा-विभाग में लगने वाली धन राशि की अधिकतम पूर्ति मद्य सम्बन्धी आय से ही होती है। ऐसा सोचना *कोई बुद्धिमानी की बात नहीं लगती। शिक्षा के विकास के लिए मद्य-पान की* छूट हो यह तो बहुत परिहास की बात लगती है। लोग कहते हैं ऐसी शिक्षा से तो जो मद्य-पान पर ही पनपती है अशिक्षा ही अच्छी। दूसरी बात यह सिद्धान्त ही गलत है कि आय की दृष्टि से ही सब कुछ अन्य मान लिया

पाए। ऐसी स्थिति में तो फिर किसी भी बुराई का प्रश्न राज्य के द्वारा नहीं हो सकता। अणुव्रत आन्दोलन का विश्वास तो हृदय परिवर्तन पर अवलम्बित है। जब तक मद्य-पीनेवालों में बहुसंख्यक लोगों का हृदय नहीं बदल जाता तब तक कानून सफल नहीं होते प्रत्युत उससे भ्रष्टाचार बढ़ जाता है। सुना गया है जिन प्रान्तों में अभी अभी कानून बना है वहाँ मद्य का प्रच्छन्न व्यवसाय और भी जोरों से चल पड़ा है। मद्य-आयात के इतने विचित्र उपाय काम में लाए जाते हैं जिन्हें सुनकर विस्मित हो जाना पड़ता है। जिन्हें पीने की लत है वे ऊँचे से ऊँचा दाम देकर भी मद्य खरीदते हैं। इससे व्यवसायियों का व्यवसाय चलता है, उन सब राज्याधिकारियों का भी जो उनके साथ मिले-जुले हैं। इसलिए मद्य-निषेध का सही मार्ग यही है—जन जन के हृदय में उसके प्रति घृणा पैदा हो और व्यक्ति स्वयं उसके व्यवहार का परित्याग करे।

कुछ व्यक्ति कहा करते हैं—मद्य अतिमात्रा में पीना हानिप्रद है। उचित मात्रा में तो वह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद ही है। यह गलत दृष्टिकोण है। यह सोच लेना चाहिए, उचित मात्रा के नाम पर भी यदि समाज ने उसे प्रश्रय दिया तो आगे जाकर वह बहुत विनाशकारी सिद्ध होगा क्योंकि फिर तो व्यक्ति-व्यक्ति की मनस्तृप्ति उचित मात्रा बन जाएगी। दूसरी बात यह मनुष्य की कोई अनिवार्य खुराक नहीं है। यत्किंचित् लाभ की कल्पना तो वस्तु मात्र से की जा सकती है। मद्य में ऐसी कोई अलौकिक विशेषता तो है ही नहीं जिसकी पूर्ति दूसरी कोई भी सात्त्विक वस्तु न कर सकती हो। अस्तु, व्यसन पोषण के अतिरिक्त ऐसी तर्कों में कोई बल नहीं मिलता।

भारतीय संस्कृति में मद्य पान को सात दुर्व्यसनों में एक दुर्व्यसन माना गया है। व्यसन का अर्थ है—जो एक बार लग जाने पर छूटना कठिन हो जाता हो। देखा गया है, इस व्यसन के कारण इसी जीवन में मनुष्य की भयंकरतम दुर्गति हो जाती है। बच्चों के बच्चे भूख से बिलखते हैं स्त्री के पास तन ढकने को वस्त्र नहीं है पर उसकी सारी आजीविका मद्य-पान में ही पूरी हो जाती है। सबसे बुरी बात तो यह है कि इस बुराई के साथ और अनेक बुराइयाँ मनुष्य में आ ही जाती हैं। बुराइयों में प्रेम होता है। जिसका एक बुराई से वास्ता पड़ा समझ लो दुनियाँ भर की बुराइयाँ छाया की तरह उसके साथ हो जाएंगी। उपदेश-ग्रन्थों में एक कथानक मिलता है। एक परदेशी मित्र बहुत वर्षों से किसी एक अपने मित्र के घर आया। मित्र के पास बैठकर बातें करने लगा। मित्र के मुँह से मद्य की गन्ध आ रही थी। तब आगन्तुक ने कहा—मित्र! तुम मद्य कब से पीने लगे? यह तो बहुत बड़ी बुराई है।

मित्र—भाई! मैं मद्य कोई हमेशा नहीं पीता, जब कभी मांसाहार कर

लेता हूँ तभी पीना पड़ता है।

आगन्तुक—छी! छी!! तुम तो मांसाहारी भी हो गए?

मित्र—मैं हमेशा मांसाहार थोड़े ही करता हूँ। कभी-कभी जब वेश्या के यहाँ जाता हूँ।

आगन्तुक—हे राम! तुम तो वेश्यागामी भी हो गए?

मित्र—वेश्याओं के यहाँ जाना ऐसा मेरा कोई व्यसन नहीं है। जब कभी जुए में एकाएक धन आ जाता है तो वेश्या के यहाँ जाता हूँ।

आगन्तुक—हाय! हाय!! तुम तो जुआ भी खेलते हो? अब मैं समझ गया तुम्हारे में कोई बुराई बाकी नहीं रह पाई है।

मद्य निषेध की मर्यादा अणुव्रती के लिए यहीं तक समाप्त नहीं है कि वह मद्य पीए नहीं किन्तु किसी भी प्रसंग में वह किसी को पिलाए भी नहीं। समाज में यह एक सभ्यता मानी जाने लगी है जैसा अतिथि वैसा ही उसका सत्कार। बहुत सारे लोग पीते नहीं किन्तु घर पर कोई मद्य-पीनेवाला बड़ा अतिथि आ जाता है तब उसके लिए व्यवस्था अवश्य करते हैं। ऐसा सोचा जाता है यदि उसके अनुकूल व्यवस्था नहीं हुई तो वह असन्तुष्ट होगा। यह धारणा अयथार्थ है। समुचित शब्दों में स्थिति स्पष्ट कर देने पर बहुधा कोई भी अतिथि उसे बुरा नहीं मानता। बातचीत के प्रसंग में मध्यप्रदेश व बम्बई के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा ने बताया—"जब मैं मध्यप्रदेश का गवर्नर था तब लार्ड माउण्टबेटन मेरे यहाँ अतिथि हुए। उससे पूर्व उनके सेक्रेटरी का एक पत्र आया था जिसमें उनकी अनुकूल व्यवस्थाओं का दिग्दर्शन था। ब्रांडी की व्यवस्था के लिए विशेष रूप से संकेत था। मेरे लिए यह एक समस्या थी। किसे माने पर भी घर आने वाले मान्य अतिथि की मैं व्यवस्था न करूँ यह कैसा लगेगा? आखिर मैंने महात्मा गांधी से इस विषय पर मार्गदर्शन मांगा। उन्होंने स्पष्ट लिखा—"जिस वस्तु को तुम बुरी समझते हो वही वस्तु मान्य अतिथि को कैसे दोगे? मैंने सेक्रेटरी को उत्तर दिया—आपके लिखे अनुसार सब व्यवस्थाएं हो जाएगी पर दुःख है कि मैं ब्रांडी की व्यवस्था नहीं कर सकूँगा क्योंकि इसे मैं बुरी वस्तु मानता हूँ। मैं मेरे सम्माननीय अतिथि को बुरी वस्तु दूं यह मुझे उचित नहीं लगता। अस्तु मेरे यहाँ लार्ड माउण्टबेटन तीन दिन ठहरे और मेरी सिद्धान्त-प्रियता के लिए मुझे धन्यवाद दिया।"[1] इस प्रकार जब व्यक्ति अपना नैतिक बल जागृत कर लेता है तो उसके मार्ग की कठिनाइयाँ अपने आप दूर हो जाती हैं। दूसरी बात, अतिथि का खुश होना यह भी एक गौण बात है इससे भी पहली बात

तो है सिद्धांत का सुरक्षित रहना।

धूम्र-पान मानी हुई बुराई होते हुए भी समाज में ऐसा घर कर गई है कि उसका मूलोच्छेद होना कष्ट-साध्य हो गया है। सुधारक जन कभी कभी तद्‌विषयक आन्दोलन करते हैं कहीं कहीं राजकीय प्रतिबन्ध भी होते रहते हैं किन्तु उन उपक्रमों की अपेक्षा व्यापारियों द्वारा किए जाने वाले विज्ञापन कहीं अधिक आकर्षक होते हैं। वे लोग राष्ट्र और समाज के हित को तनिक भी नहीं सोचते हुए हजारों और लाखों रुपए खर्च कर बीड़ी और सिगरेट का प्रचार करते हैं। कभी कभी शहरों में देखा जाता है मोटरों और तांगों पर मय लाउडस्पीकर ग्रामोफोन बज रहा है सैकड़ों व्यक्ति खासकर बच्चे उसे चारों ओर से घेरे चल रहे हैं। बीच बीच में एक व्यक्ति भाषण देकर अपनी बीड़ियों की श्रेष्ठता बतलाता है और बीड़ियों की बौछार करता है। बच्चे और बड़े झपट झपट कर मुफ्त की बीड़ियां उठाते हैं और पीते हैं। शायद सोचते है इन बीड़ियों के पैसे थोड़े ही लगते हैं। पर उन्हें पता नहीं कि ये बिना मूल्य की बीड़ियां जीवन भर उनकी जेबों से पैसे निकलवाती रहेंगी। इस प्रकार किए जाने वाले बच्चों के उन दयनीय पतन को देख कर किसका हृदय रो न पड़ता होगा।

धूम्र-पान

किसी भी बुराई का आना सहज और जाना कठिन है। कहा जाता है कि कोलम्बस की खोज के पूर्व इन देशों में बीड़ी या तम्बाकू का कोई नाम ही नहीं जानता था। सन् १४९२ में जब कोलम्बस ने 'क्यूबा' टापू ढूंढ निकाला उसने अपने कुछ साथियों को वहां के निवासियों का हालचाल जानने के लिए भेजा। उन्होंने वहां जाकर देखा—इधर उधर बैठे बहुत से लोग मुंह और नाक से धुआं निकालते हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वस्तुस्थिति का ज्ञान किया। वापस आते समय कौतूहल के लिए कुछ व्यक्तियों को यूरोप ले गए। वहां के नकलची उनकी नकल करने लगे। सन् १४९४ में कोलम्बस ने अमरीका की दुबारा यात्रा की और वहां की स्त्रियों को तम्बाकू सूंघते देखा। विनोद के तौर पर यहां की जातियों के लिए यह एक प्रिय वस्तु बनी। यूरोप से यह भारतवर्ष और एशिया के अन्य भू भागों में आई। यह है तम्बाकू का इतिहास। बात-बात में आई, आज सौ सौ प्रयत्नों से भी यहां से विदा नहीं लेती।

बीड़ी और सिगरेट भी एक व्यसन है, जो लग जाने के बाद छूटना कठिन हो जाता है पर असम्भव नहीं। धूम्रपान से मुक्ति पाने के कई प्रकार हैं। कुछ साहसिक लोग जो तीस-तीस चालीस-चालीस वर्ष से बीड़ी-सिगरेट पीते हैं, एकाएक उसका परित्याग कर देते हैं। ऐसे लोगों का कहना है—बस पांच दिन कुछ बेचैनी रही पर अब तो याद नहीं आता कि हम कभी बीड़ी

या सिगरेट पीते थे। दूसरा प्रकार यह है कि व्यक्ति जितनी बीड़ियाँ पीता है, उसमें वह कम करता जाए। इससे कुछ कष्ट तो होगा पर बुराई छूट जाएगी। दोनों ही तरीके बहुत बार आजमाए गए हैं और सफलता मिली है।

कुछ लोग कहते हैं—धूम्रपान में क्या दोष है ? उनसे पूछना चाहिए—उसमें अच्छाई क्या है ? अच्छाई उसमें कुछ नहीं है। क्योंकि यह मनुष्य की खुराक नहीं है। जिसने कभी बीड़ी पी ही नहीं उसके दिल में बीड़ी पीने की कभी आती ही नहीं। एक बार जो कुसंसर्ग से बीड़ी पीना शुरू कर देता है तो वह ऐसे पीछे लग जाती है, जैसे कोई बड़ी बीमारी। अच्छाई न होना भी एक बात है। तम्बाकू के विषय में तो अभी अभी बहुत बड़ी खोज हुई है और बताया गया है—कैन्सर जैसी असाध्य बीमारी का सबसे बड़ा कारण धूम्रपान है। आवश्यकता है जो लोग धूम्रपान के अभ्यस्त हैं वे ऊपर बताए गए तरीकों से उससे मुक्ति पाने का प्रयत्न करें और जो अभ्यस्त नहीं हैं वे धूम्रपान की आदत से बचे रहें।

बहुत बार धूम्रपान करने वाले लोग अपने बालकों को भी धीरे-धीरे उसका आदी बना देते हैं यह बहुत बुरी बात है। पिता स्वयं धूम्रपान को नहीं छोड़ सकता यह विवश है किन्तु यह तो उसका पहला कार्य है—अपने बालकों को इस दुर्व्यसन से बचाए। बालक जो बीड़ी पीना सीखता है उसमें और भी बुरी आदतें आती हैं। बहुधा वह इस आदत को अपने साथियों से ग्रहण करता है। शिक्षक या मात-पिता के द्वारा पूछे जाने पर वह झूठ बोलता है। धूम्रपान के लिए पैसों की जरूरत होती है, तब वह चोरी करना सीखता है। चोरी और झूठ जहाँ आजाते हैं वहाँ और अनेकों दुर्गुण आएँगे ही यह निश्चित है।

तम्बाकू की तरह भांग गांजा चर्स आदि भी त्याज्य वस्तुएं हैं। अणुव्रती को खाने पीने व सूंघने में इनका व्यवहार नहीं करना चाहिए।

आहार-संयम

जीवन के प्रत्येक पहलू में संयम अभीष्ट है। संयम का अभाव ही आधि-व्याधियों का मूल है। जीवन-धारण के लिए मनुष्य खाता है पर उस खाने में भी जब घोर असंयम आ जाता है तब लगता है—मनुष्य ने खाने के लिए जीवन-धारण किया है। आज आहारिक असंयम की वृद्धि अधिक लगती है। खाद्य-सामग्री के निर्माण में बहुत विकास हुआ है। मिठाई और चरपरे पदार्थों की अनगिन किस्में बन पड़ी हैं किन्तु उस विकास में स्वास्थ्य का दृष्टिकोण नितान्त गौण रहा है और स्वाद का प्रमुख। सारा विकास इस आधार पर चलता है कि किस पदार्थ का स्वाद कैसे बढ़ सकता है ? मिर्च अधिक डालने से यदि स्वाद

बढ़ना है तो वह खायी जाए, चाहे स्वास्थ्य के लिए वह कितनी ही अहितकर हो। यही स्थिति घरों में है और यही बाजार में। मुँह का जायका बनाने वाली चीजें ही अधिकांशतया हलवाई और खोनचा वाले बनाते हैं। लोगों को न स्वास्थ्य का ज्ञान है और न संयम का। एक पाश्चात्य विचारक ने ठीक कहा है— 'लोग जितना खाते हैं उसका एक तिहाई उनके काम लगता है और दो तिहाई डाक्टरों के।" एक साधक के जीवन में आहार का विवेक आवश्यक है। यह कहावत नितान्त निराधार नहीं है 'जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन'। आधुनिक और प्राक्तन स्वास्थ्य-विज्ञान से भी यह तथ्य सम्मत है। खाद्य-सामग्री का सम्बन्ध शरीर के अन्य अवयवों की तरह मन और मस्तिष्क से भी है। शरीर में राजसी तामसी जैसे पदार्थों का प्रभाव बढ़ना मन भी उससे प्रभावित होगा ही। शास्त्रकारों ने इसी दृष्टि से ब्रह्मचारी के लिए खान-पान का संयम अनिवार्य माना है। महात्मा गांधी ने भी इस विषय पर अधिक बल दिया है। उन्होंने अपने सात व्रतों में अस्वाद को भी एक स्वतन्त्र व्रत माना है। अस्तु अणुव्रती एक साधक है। उसके जीवन में आहार का संयम अत्यन्त आवश्यक है। वह जीवन और भोजन के सम्बन्ध को विवेक-पूर्वक समझे और इस सम्बन्ध में समस्त अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों से यथासम्भव ऊपर उठता रहे।

प्रश्न रहता है संयम कैसे रखे ? संसार में खाने योग्य सहस्रों पदार्थ हैं। यह बड़ा कठिन है कि उन सबके भक्ष्याभक्ष्य-विचार की कोई सुनिश्चित तालिका बन जाए। आहार-संयम की वृद्धि के लिए अणुव्रती का विवेक जागृत हो यही अधिक अपेक्षणीय है। फिर भी इस दिशा में कुछ ऐसे अनुभूत मार्ग हैं जो उनकी प्रगति में सूत्र-रूप हो सकते हैं। जैसे—खाद्यपेय द्रव्यों का संख्या परिमाण। स्वाद के हेतु ही बहुधा पदार्थों की संख्या बढ़ती है। उस पर जब नियंत्रण हो जाता है तो अवश्य बहुत कुछ संयम का मार्ग सधता है। अणुव्रती खाने-पीने की वस्तुओं की दैनिक मर्यादा रखे। किसी भी दिन ११ से अधिक द्रव्य तो वह खाए ही नहीं। ११ की संख्या एक मझोली संख्या है। जो व्यक्ति पाँच प्रकार के फल खा लेते हैं पाँच-सात प्रकार की सब्जी (शाक) खा लेते हैं, दो-चार प्रकार की मिठाई पाँच-सात प्रकार की खटाई और पानी रोटी दूध चाय से लेकर चार बार के नाश्ते व भोजन में बीसों पदार्थ खा लेते हैं उनकी आदत में यह संख्या एकाएक बहुत संकोच ला देती है पर अणुव्रती यह ध्यान रखे ११ की संख्या पर्याप्त नहीं उत्कृष्ट है। अधिकांश व्यक्ति तो ऐसे मिलेंगे जिनके इतने द्रव्य एक दिन में खाने का कोई वास्ता ही नहीं पड़ता। वे अपनी स्थिति से यथासम्भव संकोच करें। आहार-संयम के और भी नाना

मार्ग है। द्रव्य-संख्या के नियमन की तरह भोजन-संख्या का नियमन भी इस विधा में महत्त्वपूर्ण होता है। अर्थात् दिन में एक बार या दो बार से अधिक नहीं खाऊँगा, मिठाई नहीं खाऊँगा, चरपरे, करकरे तामसिक पदार्थ नहीं खाऊँगा आदि।

खाद्य-पेय-द्रव्य-परिभाषा

खाद्यपेय-पदार्थों के नियमन में एक उलझन रहा करती है, द्रव्य किसे कहा जाए और उसका संख्या क्रम कैसे माना जाए? अणुव्रतियों के लिए इस विषय में एकसूत्रता रहे इसलिए आन्दोलन प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी ने एक परिभाषा निश्चित कर दी है जो नीचे दी जाती है—

(१) स्वतन्त्र नाम स्वतन्त्र द्रव्य का सूचक है। जैसे—दूध, दही, चावल, चीनी, शक्कर आदि।

(२) किसी नाम के साथ कोई ऐसा नाम संयुक्त होता हो जो उस पदार्थ का मूल कारण हो और उसे वह अन्य पदार्थों से पृथक करता हो तो वह पद-संयुक्त नाम वाली वस्तु स्वतन्त्र द्रव्य है जैसे—बाजरे की रोटी, गेहूँ की रोटी, मूँग का पापड़, मोठ का पापड़, चावल का पापड़ आदि। अर्थात् रोटी उन सामान्य नामों के होते हुए भी पूर्व संयोजित शब्द के कारण उपर्युक्त एक-एक स्वतन्त्र द्रव्य है।

यद्यपि इस परिभाषा में गाय का दूध और भैंस का दूध, कुएँ का पानी और बरसात का पानी पृथक-पृथक द्रव्य होते हैं तथापि व्यावहारिकता को ध्यान में रखते हुए ये एक ही द्रव्य माने गए हैं अर्थात् उक्त प्रकार का दूध एक द्रव्य, उक्त प्रकार का पानी एक द्रव्य।

(३) जिस नाम के साथ ऐसा विशेषण लगता हो जो संस्कार भेद का सूचक हो, वह नाम अपने विशेषण सहित स्वतन्त्र द्रव्य है। जैसे—सूखी रोटी, चुपड़ी रोटी, सेका हुआ पापड़, तला हुआ पापड़, मिर्च लगाया पापड़, फीके चावल, मीठे चावल आदि।

(४) जो दो द्रव्य मिलाकर स्वभावतः खाए जाते हैं, किन्तु उनके मेल से कोई नई संज्ञा नहीं बनती, तो वे सब पृथक-पृथक द्रव्य हैं। जैसे—घी खिचड़ी, घी-चीनी-बाट, दूध-चीनी, दाल चावल आदि।

(५) दो या बहुत द्रव्य मिलकर यदि एक व्यावहारिक संज्ञा को धारण कर लेते हैं तो वह एक द्रव्य है। जैसे—खीर, आम-रस, मेवे की खिचड़ी, चूरमा, पान, पाक आदि।

द्रव्य घटाने की दृष्टि से यदि कोई अस्वाभाविक मेल मिलाया जाता है तो वे द्रव्य पृथक्-पृथक माने जाएँगे। जैसे—खिचड़ी में सुपारी।

(९) सजातीय पदार्थ एक द्रव्य हैं। जैसे—कलमी आम लंगड़ा आम, मीठा पान, मघई पान।

(७) जिन्हीं दो पदार्थों का मूल तत्त्व एक है फिर भी आकार या संस्कारादि भेद से नाम भिन्न-भिन्न हैं तो वे सब स्वतन्त्र द्रव्य हैं। जैसे—चीनी मिश्री बताशा आटे का पेठा आटे का पेड़ा बूंदिया बूंदिया का लड्डू पूड़ी फुलका टिक्कड़ रोटी आदि।

रेशम का व्यवहार न किया जाए, इसके मूल में दो दृष्टिकोण हैं—

अहिंसा और सादगी। यह सर्वविदित तथ्य है कि रेशम

रेशम का व्यवहार कीड़ों से निष्पन्न होता है और अत्यन्त हिंसापरक है।

यद्यपि रेशम का व्यवहार सभी सभ्य समाजों ने अपना

रखा है और वह भी लम्बी अवधि से। तब भी समाज में धनी-मानी एवं प्रतिष्ठित जन ही इसका अधिक प्रयोग करते हैं। रेशम का प्रयोग समाज में अनैतिक नहीं माना जाता प्रत्युत मांगलिक कार्यों में उसका अधिक उपयोग होता देखा जाता है। आज तक की जो भी स्थिति रही हो अब भी हम इस विषय में कुछ भी सोचने के लिए स्वतन्त्र हैं। अहिंसा की दृष्टि से यदि हम विचार करते हैं हमें यह मानना होता है कि प्राणी-जगत् के बीच मानव-समाज सदा ही स्वार्थपरक रहा है। वह प्राणीमात्र पर न चल कर मानववाद पर ही चल रहा है। वह पशुओं की रक्षा करता है अपने स्वार्थ के लिए, उनका वध करता है, अपने स्वार्थ के लिए। यहाँ आकर तो उसकी स्वार्थपरता की हद ही हो जाती है जबकि वह अपने तुच्छतम स्वार्थ के लिए भी अगणित जंगम प्राणियों के विनाश को आवश्यक और व्यावहारिक मान बैठता है। रेशम का भी एक ऐसा ही प्रसंग है। रेशम मानव-समाज के लिए जितना एक सुखद सामग्री के रूप में माना जा सकता है उतना आवश्यक सामग्री के रूप में नहीं। यह ठीक है कि वह कोमलता सभ्यता आदि गुणों से वस्त्रोपयोगी सामग्री में सर्वोत्कृष्ट है, किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि मानव-जाति के लिए उसकी अनिवार्यता है। कतिपय पाश्चात्य देशों में परों को भी सुन्दरता का प्रतीक मान लिया गया है। लाखों पक्षी मानव-समाज की सौन्दर्य-पिपासा पर बलिदान होते हैं। सुना जाता है कि इंग्लैण्ड के एक व्यापारी ने एक वर्ष में तीस लाख उड़ने वाले पक्षियों का केवल परों के लिए वध किया। फ्रांस में तो उस प्रकार के पक्षियों की नसल ही नष्ट हो गई है। मानव अपने नगण्य स्वार्थ के लिए कितना निर्दय हो जाता है!

विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर यह आवश्यक माना गया है कि इस दिशा में अणुव्रती पहल करें। यह सच है कि असीम काल से चलने वाला

यह रेशम का व्यवहार एकाएक समाज से दूर नहीं हो सकता फिर भी समाज में एक अहिंसात्मक दृष्टिकोण तो पैदा होता ही है सम्भवतः वह किसी समय अनुकूल स्थिति पाकर पूर्णतः विकसित भी हो सके।

रेशम-व्यवहार के निरोध में कृमि-हिंसा ही मूलाधार है अतः मूंगामूंगा, मटकी आदि रेशमी नहीं कहे जाने वाले वस्त्र भी उसी कोटि में माने गए हैं और वे अणुव्रती के लिए परिहार्य हैं। रेशम माना जाने वाला पदार्थ भी कहीं कहीं कृमि हिंसा से उत्पन्न नहीं होता। जैसे—आरटिफिशियल रेशम व अहिंसक रेशम। इसलिए वह अणुव्रती के लिए परिहार्य कोटि में नहीं माना गया है फिर भी सादगी के दृष्टिकोण से वह उसका व्यवहार न करे, यह अधिक श्रेयस्कर है।

वस्त्र-व्यवहार की स्वदेश-मर्यादा

स्वदेश से बाहर बने वस्त्रों का पहनने व ओढ़ने में व्यवहार न करना—यह अणुव्रती की एक नकारात्मक मर्यादा है। सामान्य अवलोकन से सहसा लगता है जो आन्दोलन जाति वर्ग व देश की भेद रेखाओं से ऊपर मानव को समता की ओर प्रेरित करने का उद्देश्य रखता है उसके विधि विधानों में स्वदेश और परदेश का संकीर्ण दृष्टिकोण क्यों? बात सच है। एक देश के स्वार्थ में जैसे जातीयता व प्रान्तीयता अहितकर है उसी प्रकार विश्व-हित में देश-हित का आग्रह भी संकीर्णता का द्योतक है अखण्ड मानवता को टुकड़ों में बांटने वाला है। राष्ट्रीयता की भावना अपनी मर्यादा में ही समाज-शास्त्रियों द्वारा उपादेय मानी गई है। उसका भी अतिरेक विश्व हित के लिए कहीं कहीं अफीम बन जाता है फिर भी मनुष्य-स्वार्थों की नाना परिधियों में घिरा है अतः वह पहले अपनी व अपने परिवार की बात सोचता है उसके बाद समाज व देश की और उसके बाद विश्व की। इसलिए अपने देश में निष्पन्न वस्त्रों के व्यवहार में उसे यह सन्तोष मिलता है कि मेरा पैसा मेरे देश में ही रहा। अणुव्रती का आदर्श तो "वसुधैव कुटुम्बकम्" का है। उसका आदर्श यह नहीं कि मेरे देश का व्यक्ति मेरा मित्र है और दूसरे देश का अमित्र। अणुव्रत-आन्दोलन में जो वस्त्र-व्यवहार के लिए स्वदेश की मर्यादा है वह स्व और पर के व्यामोह को बढ़ाने की दृष्टि नहीं रखती क्योंकि अणुव्रत आन्दोलन का ध्येय मानव-मानव के बीच में आने वाले समस्त भेदों को मिटाने का है। यहाँ तत्त्व यह है—वस्तु विशेष की निष्पत्ति के लिए लाखों मिलें चलती होंगी जहाँ बड़ी से बड़ी हिंसा अनिवार्य है। जो गृहस्थ व्यक्ति उन सब मिलों के वस्त्र का परित्याग नहीं करता है, वह किसी न किसी रूप में उस हिंसा से सम्बन्धित है ही। उक्त प्रकार की मर्यादा से वस्त्र विशेष के लिए अपने देश से बाहर होने वाली विश्व भर की हिंसा से उसका सम्बन्ध टूट

जाता है।

जीवन में सन्तोष और सादगी का बढ़ाना भी उक्त मर्यादा का एक प्रमुख हेतु है। विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का उपयोग अधिकतर फैशन के लिए होता है। हर एक व्यक्ति चाहता है—मैं वही वस्त्र खरीदूँ जिसका सुन्दर रंग व सुन्दर डिजाइन हो। उक्त मर्यादा से वह लालसा सीमित होकर अपने देश की परिधि तक ही रह जाती है।

मर्यादा की आध्यात्मिकता इससे भी पुष्ट होती है कि यह केवल भारत वासियों के लिए ही नहीं जहाँ से कि आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है। दूसरे देशों के अणुव्रतियों के लिए भी अपने अपने देश के अर्थ में उक्त मर्यादा लागू होती है।

प्रश्न हो सकता है—वस्त्र-विशेष के लिए ही यह मर्यादा क्यों? विदेश निर्मित अन्य वस्तुओं के उपयोग में भी व्यक्ति आरम्भ और लालसा बढ़ाता है। आरम्भ और लालसा को घटाना अणुव्रती का परम ध्येय है। किन्तु मानवीय दुर्बलताओं के कारण जो सुगम व्यवहार्य होता है उसे ही व्यक्ति पहले अपनाता है।

देश-मर्यादा लालसाओं को सीमित करने की एक दृष्टि देती है। यह वस्त्र की तरह अन्य वस्तुओं के लिए भी की जा सकती है और की जानी चाहिए। वस्त्र के लिए देश की तरह अपने प्रान्त व अपने नगर की भी मर्यादा हो सकती है। आगे चलकर विशिष्ट अणुव्रती के स्तर पर पहुँचने वाले व्यक्ति के लिए मिल के बने वस्त्रों का परित्याग भी वैकल्पिक आवश्यक हो जाता है।

असद् आजीविका

व्यक्ति जीवन-व्यवहार के लिए किसी न किसी प्रकार की आजीविका का आलम्बन लेता है। बहुत सारे व्यक्ति अपने कुलगत व्यवसाय में ही चलते रहते हैं। मच्छीमार का बेटा भी मछली मारने का ही व्यवसाय करता है कसाई का बेटा कसाईखाने का ही। वहाँ संस्कारों का प्राबल्य रहता है। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य को जिस व्यवसाय का अभ्यास हो जाता है उसे वह एकाएक छोड़ नहीं सकता क्योंकि उसमें योग्यता और साहस की बहुत अपेक्षा रहती है फिर भी आजीविका निर्वाचन का प्रश्न उपेक्षा का नहीं होता। एक ही आजीविका जब मनुष्य को चुननी है तो कोई भी विवेकशील व्यक्ति असद् आजीविका क्यों चुने?

बहुत प्रकार की आजीविकाएं ऐसी हैं, जो व्यक्तिगत जीवन के लिए तथा समाज व देश के लिए भी अहितकर होती हैं। जैसे—मद्य का व्यापार। इस व्यापार में कितनी अनैतिकता है यह यहाँ नहीं बताना है क्योंकि मद्य

का तो व्यापार साथ ही अनैतिक है। मद्य का व्यापारी अपनी आजीविका के साधन में देश और समाज के साथ क्या करता है, यह किसी से छिपी बात नहीं है। यह ठीक है कि बहुधा वह राज्य से ठेका लेकर के ही ऐसा व्यापार चलाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि राज्य ने इस व्यापार को कोई महत्त्व दिया है। राजकीय दृष्टिकोण तो लगता है—यह बुराई का व्यापार व्यापक न रहे, यथा सम्भव वह अधिक से अधिक सीमित बने। सारे शहर की एकत्रित बुराई के लिए आदमी कहे कि मैं उसका ठेकेदार हूँ यह कैसी अजीब बात है।

मद्य का व्यापार

पुराने जमाने की बात है—लोग मानते थे परिश्रम का पैसा ही बरकत करता है। आदमी को परिश्रम करके ही अपनी आजीविका चलानी चाहिए। आजकल कुछ लोग सोचने लगे हैं पैसे के लिए परिश्रम की क्या आवश्यकता है? जुआ खेलो घुड़दौड़ खेलो यदि भाग्य में है तो पैसा अपने आप आ पड़ेगा। यह वृत्ति दिनोंदिन बढ़ती नजर आ रही है पर इसका परिणाम देश और समाज के लिए बड़ा घातक है। एक बार जो युवक इस धन्धे में फंस जाता है, बहुधा वह निकल नहीं सकता। एक बार जिसने जुए या रेस में पैसा कमा लिया और उस पर आजीविका चलाने का आदी हो गया किसी भी कठिन परिस्थिति में वह परिश्रमपूर्वक दूसरी आजीविका नहीं चला सकता। ऐसे धन्धों में देखा जाता है—व्यक्ति कमाता बहुत थोड़ी बार है और खोता बहुत अधिक बार। आए दिन जुआरियों की व घुड़दौड़ खेलने वालों की दुर्दशा देखी जाती है। गहने मकान बिक जाते हैं। प्राचीन काल में भी जुए के कारण बहुतों को कष्ट उठाना पड़ा है। पाण्डवों का राज्य-पतन व द्रौपदी का दाव पर लग जाना इतिहास की अविस्मरणीय घटनाएं हैं। नल राजा को भी जुए के कारण नाना कष्ट उठाने पड़े। जुआ खेलने वालों में दूसरे व्यसन भी बहुत जल्दी आते हैं। क्योंकि उनका संसर्ग ही ऐसा होता है। घुड़दौड़ जुए का ही एक विकसित रूप है। नक्की आदि जुए के प्राचीन प्रकार कानून से निषिद्ध हैं। घुड़दौड़ के लिए कोई राजकीय प्रतिबन्ध नहीं है। बाकी सारी बातें उसकी जुए के ही बराबर हैं, अणुव्रती को उक्त आजीविका से बचते रहना है।

जुआ और घुड़दौड़

मांस का व्यापार तो बहुत दृष्टियों से हेय है। व्यक्ति अपनी आजीविका चलाने के लिए छोटे से स्वार्थ में कितने प्राणियों का संहारक हो जाता है। इतने प्राणियों का संहार करते हुए मनुष्य भूखे रहकर अपनी प्राण विसर्जन की भी क्यों नहीं ठान लेता? पर उसे अपना जीवन प्रिय है। वह यह नहीं

आमिष का व्यापार

सोचता कि दूसरों को भी अपना जीवन प्रिय होता है। ऐसा व्यापार करने वाला प्राणी-संहार के साथ-साथ सहस्रों मनुष्यों को मांसाहार का पोषण देता है। मांस का व्यापार करना, मांस का व्यापार करनेवाली कम्पनी के शेयर खरीदना आदि अनुचित कोटि की आजीविका है। किसी भी अहिंसानिष्ठ व्यक्ति के लिए यह वर्जनीय है।

शस्त्र और गोला बारूद

पैसे की झपक में मनुष्य यह भूल जाता है कि मेरे व्यवसाय का देश व विश्व के लिए कितना भयंकर परिणाम होता है। बड़े-बड़े उद्योगपति शस्त्र और गोला बारूद बनवाने का व्यापक धन्धा करते हैं। लगता है संसार में जो ढोल पीटा जा रहा है विश्व-शान्ति के लिए अस्त्रास्त्रों का निर्माण बन्द करो, निःशस्त्रीकरण से ही हम सुख शान्तिपूर्वक जी सकते हैं, यह उन लोगों के कान में नहीं पड़ता। क्यों पड़े ? पैसे की झनकार में उन्हें कुछ सुनाई भी तो नहीं पड़ता। जहाँ पैसा प्रमुख है, वहाँ सिद्धान्त कहाँ ?

रोना भी प्रथा

रोने की प्रथा भी एक रूढ़ि बन चुकी है। यह रूढ़ि सब प्रान्तों और सब देशों में एक-रूप से नहीं है। कहीं-कहीं नहीं भी हो, तथापि देश के अधिकांश भाग में उसकी प्रबलता और विकटता मिलती है। किसी भी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु से साधारणतः सभी को कष्ट और विषाद होता है। उस विषाद के साथ रोना भी स्वाभाविक हो जाता है, किन्तु वह रोना प्रातः काल या सायंकाल की अपेक्षा नहीं रखता। जब जी में याद आती है तभी आ पड़ता है। ऐसे रोने पर कोई प्रतिबन्ध काम नहीं कर सकता। वह तो केवल आत्म-साधना का ही विषय है। जिसका मोह जितना क्षीण या प्रबल होगा वह उतनी ही उसकी अपेक्षा रखेगा।

कृत्रिम रोना वह है कि किसी भी मृतक के पीछे, चाहे वह सत्तर या अस्सी वर्ष का बूढ़ा ही क्यों न हो, जिसकी मृत्यु चाहे बहुत दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् ही क्यों न आई हो, निश्चित अवधि तक यथाविधि बैठकर रोना ही। चाहे कोई असामयिक और आकस्मिक मृत्यु क्यों न हो, व्यवस्थित ढंग से रोना प्रथा और रूढ़ि ही है। यदि कुछ सोचा जाए तो यह हर एक की समझ में आने जैसी बात है कि जिस परिवार में या घर में कोई असामयिक मृत्यु हो चुकी है, दूसरे पड़ोसी पड़ोसी व्यक्तियों का कर्तव्य उन्हें रोने से रोकना है या साथ मिलकर उनके हृदय का अधिक क्षुब्ध कर रुलाना है ? उस दुःख को भुलवाना है या याद कराते रहना ? देखा जाता है कि मृत्यु के अनन्तर बारह दिन तक तो प्रायः घर वालों के मिलने आनेवाले न उन्हें सुख से रोटी खाने

देते हैं न कुछ आराम करने देते हैं। अपनी-अपनी सुविधानुसार कई औरतें आती हैं तो कई जाती हैं। बहुत समय तक यह चक्र चालू रहता है। घर की औरतों के लिए सबके साथ रोते रहना अनिवार्य होता है। बेचारी कोई औरत शारीरिक दुर्बलता से या अन्य किसी कारण से रोने में सबके साथ नहीं निभ सकती तो परस्पर चर्चा हो जाती है कि इसको क्या दुःख है, इसके यह क्या लगता था आदि। यह तो एक सभ्य समाज-विशेष का दिग्दर्शन मात्र है असभ्य माने जाने वाले समाज में तो न जाने और भी क्या-क्या होता होगा। कहीं इस प्रकार का रोना स्त्रियों में ही है और कहीं-कहीं तो पुरुष भी छाती माथा कूट-कूट कर रोने में स्त्रियों से आगे बढ़ जाते हैं। अन्य स्त्रियों को रुलाया जाता है और प्रथा निभाई जाती है। पेशेवर स्त्रियां भी इस काम में बड़ी निपुण होती हैं। उनके अन्तर में कोई दर्द नहीं होता, तब भी ऊपरी भावों में किसी भी दुःखिता स्त्री से अधिक मर्मस्पर्शी रुदन कर दिखाती हैं। अणुव्रती महिलाएं इस प्रथा का अन्त कर सामाजिक जीवन में क्रान्ति का एक नया अध्याय प्रारम्भ करेंगी।

बहुत सी अणुव्रताभिमुख बहिनों का यह कथन रहा है कि सामाजिक प्रथा के अनुसार न चलने से हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवन में कटुता आ सकती है, हम पर नाना आक्षेप आ सकते हैं तब क्या यह नियम हमारे लिए अव्यवहार्य-सा न बन जाएगा ?

बहिनों का कथन अनुचित नहीं है। समाज के अधिकांश व्यक्ति तथ्य हीन सामाजिक ढर्रों से भी ऐसे चिपट जाते हैं मानो समाज की बुनियाद उन्हीं ढर्रों पर अवलम्बित है। उनमें थोड़ा भी परिवर्तन वे बरदाश्त नहीं करते। किन्तु अणुव्रती पुरुष एवं स्त्रियों को तो विकास और सुधार के मार्ग पर चलना है। उन्हें दुविधाओं से घबराना नहीं होगा। उन्हें तो यह सोचकर आगे बढ़ना चाहिए कि कोई भी सुधार सर्व प्रथम इने-गिने व्यक्तियों से ही प्रारम्भ होता है। अनेकों विरोध सामने आते हैं किन्तु वास्तव में यदि वह सुधार है तो अवश्य एक दिन समाज को उस पर आना होता है।

जीमनवार

कोई प्रथा किसी बहुत अच्छे उद्देश्य को लेकर प्रारम्भ होती है पर आगे जाकर नाना दोषों से परिपूर्ण होती हुई समाज के लिए भारभूत हो जाती है। जीमनवार भी एक ऐसी ही प्रथा है। यह समझ में आता है कि इस प्रथा का उद्गम अवश्य पारस्परिक सहभाव और प्रेम की अभिवृद्धि के लिए ही हुआ होगा किन्तु आज वह तत्त्व गौण बना जाता है और जीमनवार केवल आडम्बर और ऐश्वर्य का सूचक देखने में आता है। प्रत्येक धनी-मानी व्यक्ति अपने सजातियों

से बड़ा और शानदार जीमनवार करके समाज में वाहवाही लेना चाहता है। उन इने-गिने धनी-मानी व्यक्तियों की उस प्रवृत्ति का भार सर्वसाधारण पर पड़ता है। उन्हें भी जन्म विवाह मृत्यु से सम्बन्धित सारे जीमनवार अपनी स्थिति से बढ़ कर करने पड़ते हैं। यह सहज सम्भव न हो तो कर्ज लेकर करने पड़ते हैं और इसका दुष्परिणाम प्रायः सभी समाजों में देखने को मिलता है। बहुत से व्यक्ति इस प्रथा के दुष्परिणाम को समझ भी चुके हैं तब भी सामाजिक गुत्थमार्गों में जकड़े रहने के कारण उन्हें भी वाहवाही की चक्की से उसी तरह ही पिस जाना पड़ता है।

पहले बृहत् जमीनवारों के लिए बहुत सारे समाजों में पंचायतों के कुछ नियन्त्रण भी रहा करते थे। पर आज वे बन्धन भी शिथिल पड़ गए और व्यक्ति-व्यक्ति स्वतन्त्र है। अन्नाभाव के युग में इन जीमनवारों पर राजकीय नियन्त्रण आए। आश्चर्य है तब भी जनता का मोह मिठाइयों से नहीं टूटा। अब भी वह भाग प्रसंग आने और खिलाने पर डटी रहती है। सुना है उन दिनों में भी राज्य नियंत्रित पदार्थों को बाद देकर १० १० हजार व्यक्तियों तक के जीमनवार किए गए, यह अविवेक की पराकाष्ठा थी। प्रथम कक्षा की बात मानी जा सकती है जब कि मनुष्य प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए प्रत्यक्ष प्रतिष्ठा घटाने के मार्ग पर अग्रसर होता है। देखा गया है उन गैर-कानूनी जीमनवारों में राजकीय अधिकारियों द्वारा कभी-कभी इस प्रकार विडम्बना हुआ करती है जिसकी कोई हद नहीं। जीमनवार हो रहा है, पुलिस आती है। बीच ही में कुछ भागते हैं कुछ छिपते हैं कुछ पकड़े जाते हैं। मिठाइयाँ तोली जाती हैं। अधिक हुई तो नीलाम की जाती हैं। अन्त में प्रतिष्ठा और सहस्रों रुपयों की आहुति के बाद कहीं उन यमदूतों से छुटकारा मिलता है। यह है जीमनवार का मंगलोत्सव जिसमें दल-बल समगत और विपदाएँ आदि से अन्त तक सर पर मंडराती ही रहती है।

अणुव्रती आदर्श की ओर बढ़ने वाला प्राणी है। वह इस विकृत प्रथा को प्रोत्साहन नहीं देगा चाहे उसे इस अन्धानुकरण नहीं करने के फलस्वरूप अपनी बिरादरी (समाज) का आलोचना-पात्र भी बनना पड़े वह अपने आदर्श पर अटल रहेगा।

अणुव्रत-आन्दोलन का यह नियम समाज-सुधार की दिशा में क्रान्ति करने वाला होगा। एक अणुव्रती का प्रभाव उसके पारिवारिक क्षेत्र में और बहुत अणुव्रतियों का प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन ला सकता है। ऐसा अनुभव में भी आया है कि अणुव्रतियों के असहयोग के कारण अर्थात् बृहत्-जीमनवार में सम्मिलित न होने के कारण उनके अपने

प्रभावित क्षेत्र में बृहत् जीमनवार न्यून और मर्यादित होने लगे हैं। यह भी देखा जाता है कि पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना से बृहत्-जीमनवार के दोष भी सर्वसाधारण के ध्यान में आ रहे हैं और बृहत् जीमनवार न करने का पक्ष प्रबल होता जा रहा है। यह हर्ष का विषय है और नियम की सफलता है। आवश्यक नहीं है कि अणुव्रती सर्वसाधारण की ओर न झुकें अपने आदर्श पर दृढ़ रहें। यदि उनका आदर्श वास्तविक है तो अवश्य सर्वसाधारण जनता उनकी ओर झुकेगी।

अणुव्रत-आन्दोलन का यह नियम सामाजिक पहलुओं को छूता है। नियमों की रचना वस्तुतः सार्वदेशिक है। वह मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को छूती है और उनमें बंधी हुई बुराइयों का निराकरण करती है। भारतीय मनुष्यों का सामाजिक जीवन विशेषतः विकृत हुआ प्रतीत होता है। अतः उनमें सुधार लाने के लिए ऐसे नियमों की आवश्यकता मानी गई है।

धार्मिक या सामाजिक

कुछ लोगों की जिज्ञासा रहा करती है—विशुद्ध आध्यात्मिक उद्देश्य रखने वाले आन्दोलन के नियमों में ये समाज-सुधार के नियम कैसे ? वहां तो व्यक्ति की आत्म-सुधार या आत्मोत्थान की ही चिन्ता होनी चाहिए, समाज की चिन्ता समाज के कर्णधार करेंगे।

वस्तु स्थिति यह है कि बहुधा व्यक्ति और समाज को एकान्ततः भिन्न मान लिया जाता है पर तत्त्वतः यह नहीं है। व्यक्तियों का ही समाज है और समाज का ही अंग व्यक्ति है। अतः व्यक्ति-सुधार स्वतः समाज-सुधार हो ही जाता है। दूसरी बात रहती है आध्यात्मिकता और सामाजिकता की। आध्यात्मिकता और सामाजिकता कई दृष्टियों से भिन्न होती हुई भी परस्पर नितांत निरपेक्ष नहीं है। मनुष्य सामाजिकता में ही आध्यात्मिकता का समष्टि रूप में विकास हो सकता है। आज के मनुष्य में आध्यात्मिकता का पर्याप्त विकास न हो सकने का कारण आज की सामाजिकता ही है। आज मनुष्य की महत्ता धन में ही कल्पित है। बिना पर्याप्त धन-संग्रह के समाज में मनुष्य का जीना भी एक समस्या बन जाता है। बिना पूरा दहेज दिए, बिना बड़ा जीमनवार किए लड़कियों को ब्याहने वाला कौन ? बिना पूरा गहना दिखाए लड़के को लड़की देने वाला कौन ? मनुष्य इस प्रकार की अनेकों स्थितियों का दास होकर अर्थार्जन के ही पीछे पड़ता है। यदि ऐसा न करे तो उसका कोई सामाजिक व्यक्तित्व नहीं रह जाता। बदनसीबी से यदि किसी के दो चार लड़कियां हो जाती हैं तो उसके जीवन का उद्देश्य यहां ही समाप्त हो जाता है कि वह किसी प्रकार मर-खप कर उन लड़कियों का ठिकाने लगा दे। सामाजिक बहु

प्रथाओं का ही कारण है कि इस प्रकार भारतवर्ष की सुसंस्कृत और धर्म मानी जाने वाली जातियों में लड़कियों को जन्मते ही मार देने का कुकृत्य चला। आज भी सामाजिक प्रथाओं से बाधित मनुष्य आध्यात्मिकता को ताक पर रख कर हिंसा, असत्य और चोरी के मार्ग रास्ते पर चलने को विवश होता है। ऐसी स्थिति में समाजस्थ प्राणी आध्यात्मिकता की ओर कैसे झुके ? इसलिए ही आध्यात्मिकता के विकास के लिए आध्यात्मिक उपायों से ही सामाजिकता का निर्दोषीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

जीमनवार एक समालोचना

अणुव्रतियों की जीमनवार सम्बन्धी मर्यादाओं का समाज में काफी ऊहापोह है। कोई उसे अव्यावहारिक बताते हैं तो कोई उसे कंजूसी का बाना। अणुव्रतियों को इस सम्बन्ध में बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। आन्दोलन की आदि से अब तक इन मर्यादाओं को हिला देने का भी प्रयत्न बहुत सारे परामर्शदाताओं का रहा है किन्तु अब तक का परिणाम यह रहा कि जनता में जितनी आलोचनाएं होती रहीं उतनी ही तीव्र गति से सुधार भी आया। थोड़े से अणुव्रतियों के व्यवहार से समाज में एक व्यापक प्रभाव पड़ा। अणुव्रत की मर्यादा में नहीं चलने वाले लोग भी जीमनवार सम्बन्धी मर्यादाओं का पालन करने लगे हैं।

कुछ लोग कहते हैं, जीमनवार का सम्बन्ध अनैतिकता से नहीं है इसलिए जीमनवार सम्बन्धी-मर्यादाएं अनावश्यक हैं पर यह दृष्टि यथार्थ नहीं। बहुत सारी सामाजिक प्रथाएं देखने में अनैतिक नहीं लगतीं किन्तु उनका दुष्परिणाम सारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। जैसे कि बताया गया—सामाजिक कुप्रथाएं जीवन को बाधित बनाती हैं और आगे चलकर मनुष्य को संग्रह, शोषण आदि अनेकों पाप करने के लिए उद्यत करती हैं। जीवन अधिक से अधिक सादा हो, हल्का हो यह अणुव्रत-आन्दोलन का ध्येय है। अनैतिक नहीं मानकर यदि जीमनवार सम्बन्धी बहुखर्चों और आडम्बरों को क्षम्य माना जाता है तो बहुत सारी सामाजिक कुरूढ़ियां क्षम्य हो जाएंगी जिनमें एक दहेज भी है। बहुत सारे लोग उक्त मर्यादाओं को इसलिए अव्यवहार्य मानते हैं कि उनका सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर परिवार या समाज से होता है। इसलिए समाज में चलने वालों के लिए उनका आचरण दुरूह हो जाता है पर वास्तविकता यह है—जीमनविषयक मर्यादाओं का महत्त्व इसलिए है कि वे बहुजन सापेक्ष हैं। एक अणुव्रती के जीवन में जब वे आती हैं तो उनका प्रभाव परिवार और समाज तक पड़ता है। अणुव्रती वृहद् जीमनवार में भाग न ले यह इस प्रथा के साथ असहयोग है। असहयोगात्मक विधि से

नुसार बहुत जल्दी बदलते हैं। व्यक्ति सापेक्ष नियमों में यह विशेषता नहीं होती। इसलिए अणुव्रत-आन्दोलन में ऐसी मर्यादाएं अधिक से अधिक हों यह अपेक्षा है।

सन् १९५० ई० में सुजानगढ़ में हुए षष्टम अणुव्रत-अधिवेशन पर चली चर्चाओं के अनुसार जीमनवार सम्बन्धी कोई भी नियम त्याग-रूप में अणुव्रती के लिए नहीं रखा गया है। फिर भी जीमनवार-प्रथा के विषय में अणुव्रती का दृष्टिकोण सादगी और संयम का ही रहना चाहिए। वह यथासम्भव अपने प्राचीन नियम का पालन करे ही।

होली-पर्व और अभद्र-व्यवहार

अशिक्षित समाजों में तो होली आदि प्रसंगों पर अश्लील गीत व गालियां गाने का दस्तूर है ही। कतिपय अपने आपको सभ्य होने की डींग हांकने वाले लोगों में भी ऐसे प्रसंगों पर अश्लीलता का मूर्त रूप दृष्टिगोचर होता है। भले भले आदमी होली के अवसर पर ऐसे होते हैं मानो उनकी समझ का दिवाला ही निकल गया हो। वे इतने बेभान होकर गन्दे गीत गाते हैं कि चाहे स्त्रियां पास में खड़ी हों चाहे बच्चे उनकी करतूतों को देख रहे हों वे यह नहीं सोच सकते कि हमारी प्रवृत्तियों का उन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? पर्दे और अवगुण्ठन में रहने वाली लज्जावती स्त्रियां जमाई और उसके सम्बन्धियों को गालियां (गन्दे गीत) गाने बैठती हैं तो बेचारे विवेकशील व्यक्तियों के लिए कानों में उंगली डालने का प्रसंग उपस्थित हो जाता है। अणुव्रती के लिए चाहे वह पुरुष व महिला कोई भी हो आवश्यकता है ऐसी प्रवृत्तियों से स्वयं बचा रहे और उन कुप्रथाओं को समाज से दूर करने के लिए समुचित प्रयत्न करता रहे।

पर्व और त्योहार किसी विशेष उद्देश्य को लेकर आरम्भ होते हैं पर आगे चल कर उनकी वास्तविकता लुप्त हो जाती है और लोग उसकी जड़ परम्परा को ही सब कुछ मानकर उसके जड़ उपासक हो जाते हैं। यही पथ में सांप चला जाता है और लोग बाद में उसकी बनी हुई लकीर को पीटते हैं। इस होली पर्व का न तो कोई प्रामाणिक इतिहास ही है और न इस पर होने वाली प्रवृत्तियां ही शिष्टजनोचित कही जा सकती हैं। कुछ लोग राख कीचड़ आदि वस्तुओं को एक दूसरे पर उछालने की प्रथा को भी उपयोगी सिद्ध करने के लिए साहित्यिक कल्पनाएं करते हैं। कहते हैं इसमें भी कोई वैज्ञानिक तथ्य है। कुछ भी हो गांवों से लेकर शहरों की सड़कों पर भी जिस प्रकार की होली मनाई जाती है उसमें तो बुरे ही तथ्य अधिक प्रस्फुटित होते हैं।

कुछ लोगों की मान्यता है कि रंग व गुलाल आदि पदार्थों का व्यवहार

तो शिष्टजनोचित है और समाज में एक उल्लास भरने वाला है। कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि इन पदार्थों के व्यवहार से समाज के सामूहिक जीवन पर कोई घातक प्रभाव तो नहीं पड़ता। अणुव्रत-जीवन-व्यवहार में यद्यपि होली-पर्व की कोई नैतिक उपयोगिता नहीं मानी गई है तथापि इस सम्बन्ध में प्रथम मर्यादा यह है—अणुव्रती सब प्रकार के ग्राम्य-व्यवहारों से बचे जैसे—गन्दे व अश्लील गीत गाना कीचड़ राख आदि गन्दे पदार्थ दूसरों पर डालना उपहासात्मक वेष बनाना गदहे की सवारी करना भद्दे चित्र व आकार बनाना आदि अनेकों ग्राम्य-व्यवहार हैं, जो किसी भी विवेकवान् व्यक्ति के लिए त्याज्य हैं। उक्त प्रकार के अश्लील व भद्दे व्यवहारों से स्त्रियों बच्चों आदि के जीवन पर नाना कुसंस्कार जमते हैं। किसी भी सभ्य समाज के लिए परम्परा व संस्कृति के नाम पर ऐसी रूढ़ियों पर चलते रहना लज्जाजनक है।



सुधार बहुत जल्दी आते हैं । लेकिन सापेक्ष नियमों में यह विशेषता नहीं होती । इसलिए अणुव्रत-आन्दोलन में ऐसी मर्यादाएं अधिक से अधिक हों यह अपेक्षा है ।

सन् १९५० ई० में सुजानगढ़ में हुए षष्टम अणुव्रत-अधिवेशन पर चली चर्चाओं के अनुसार जीमनवार सम्बन्धी कोई भी नियम त्याग-रूप में अणुव्रती के लिए नहीं रखा गया है । फिर भी जीमनवार प्रथा के विषय में अणुव्रती का दृष्टिकोण सादगी और संयम का ही रहना चाहिए । वह यथासम्भव अपने प्राचीन नियम का पालन करे ही ।

होली पर्व और अभद्र व्यवहार

अशिक्षित समाजों में तो होली आदि प्रसंगों पर अश्लील गीत व गालियां गाने का दर्रा है ही । कतिपय अपने आपको सभ्य होने की डींग हांकने वाले लोगों में भी ऐसे प्रसंगों पर अश्लीलता का मूर्त रूप दृष्टिगोचर होता है । भले भले आदमी होली के अवसर पर ऐसे होते हैं मानो उनकी समझ का दिवाला ही निकल गया हो । वे इतने बेभान होकर गन्दे गीत गाते हैं कि चाहे स्त्रियां पास में खड़ी हों चाहे बच्चे उनकी करतूतों को देख रहे हों वे यह नहीं सोच सकते कि हमारी प्रवृत्तियों का उन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? पर्दे और अवगुंठन में रहने वाली लज्जावती स्त्रियां जमाई और उसके सम्बन्धियों को गालियां (गन्दे गीत) गाने बैठती हैं तो बेचारे विवेकशील व्यक्तियों के लिए कानों में उंगली डालने का प्रसंग उपस्थित हो जाता है । अणुव्रती के लिए चाहे वह पुरुष व महिला कोई भी हो आवश्यकता है ऐसी प्रवृत्तियों से स्वयं बचा रहे और उन कुप्रथाओं को समाज से दूर करने के लिए समुचित प्रयत्न करता रहे ।

पर्व और त्यौहार किसी विशेष उद्देश्य को लेकर आरम्भ होते हैं पर आगे चल कर उसकी वास्तविकता लुप्त हो जाती है और मात्र उसकी जड़ परम्परा को ही सब कुछ मानकर उसके जड़ उपासक हो जाते हैं । सही अर्थ में सांप चला जाता है और लोग बाद में उसकी बनी हुई लकीर को पीटते हैं । इस होली-पर्व का न तो कोई प्रामाणिक इतिहास ही है और न उस पर होने वाली प्रवृत्तियां भी शिष्टजनोचित कही जा सकती हैं । कुछ लोग राख कीचड़ आदि वस्तुओं को एक दूसरे पर उछालने की प्रथा को भी उपयोगी सिद्ध करने के लिए साहित्यिक कल्पनाएं करते हैं । कहते हैं इसमें भी कोई वैज्ञानिक तथ्य है । कुछ भी हो गांवों से लेकर शहरों की सड़कों पर भी जिस प्रकार की होली मनाई जाती है उनमें तो बुरे ही तथ्य अधिक प्रस्फुटित होते हैं ।

कुछ लोगों की मान्यता है कि रंग व गुलाल आदि पदार्थों का व्यवहार

तो शिष्टजनोचित है और समाज में एक उल्लास भरने वाला है। कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि इन पदार्थों के व्यवहार से समाज के सामूहिक जीवन पर कोई घातक प्रभाव तो नहीं पड़ता। अणुव्रत-जीवन-व्यवहार में यद्यपि होली-पर्व की कोई नैतिक उपयोगिता नहीं मानी गई है तथापि इस सम्बन्ध में प्रथम मर्यादा यह है—अणुव्रती सब प्रकार के ग्राम्य-व्यवहारों से बचे जैसे—गन्दे व अश्लील गीत गाना कीचड़ राख आदि गन्दे पदार्थ दूसरों पर डालना उपहासात्मक वेश बनाना गदहे की सवारी करना भद्दे चित्र व आकार बनाना आदि अनेकों ग्राम्य-व्यवहार हैं, जो किसी भी विवेकवान् व्यक्ति के लिए त्याज्य हैं। उक्त प्रकार के अश्लील व भद्दे व्यवहारों से स्त्रियों बच्चों आदि के जीवन पर नाना कुसंस्कार जमते हैं। किसी भी सभ्य समाज के लिए परम्परा व संस्कृति के नाम पर ऐसी रूढ़ियों पर चलते रहना लज्जाजनक है।



आत्म-उपासना

अणुव्रत आचार-धर्म है। आचार ही वहाँ देव है और उसकी ही वहाँ उपासना है। इससे आत्म-चिन्तन की बात निकलती है। इसलिए वह उसका एक अंग है। इसी प्रकार उपवास भावना व क्षमा-याचना इसके प्रमुख अंग होते हैं।

आत्म चिन्तन आचार का परिमार्जन है। मनुष्य को दोषों के प्रति ग्लानि देता है और गुणों के आचरण में एक नया साहस।

आत्म चिन्तन इसीलिए ज्ञानियों ने बताया—"रात्रि के प्रथम प्रहर या पश्चिम प्रहर में मन को एकाग्र कर व्यक्ति अपनी आत्मा से अपने आपको देखे। मैंने क्या किया? क्या मेरे लिए अवशेष है? और क्या शक्य है जो मैं नहीं कर रहा हूँ?'[1] इस प्रकार से होने वाला आत्मावलोकन इस बात की ओर संकेत करता है कि व्यक्ति दोषों से मुक्ति चाहता है। वह आत्मचिन्तक एक-एक दोष को प्रतिदिन ध्यानपूर्वक देखता है और अपनी आत्म-ग्लानि के उपचार से उसकी थोड़ी-सी जड़ हिला देता है। इस प्रकार जो बद्धमूल दोष हैं वे शिथिल होकर एक दिन अवश्य अपना स्थान छोड़ देते हैं। आत्म-चिन्तन प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक तत्त्व है। जो विज्ञ हैं वे स्वतन्त्रतापूर्वक आत्म-चिन्तन कर सकते हैं, पर सर्वसाधारण के लिए एक आलम्बन की आवश्यकता होती है। कैसी भी स्थिति क्यों न हो अणुव्रती कम से कम प्रतिदिन १२ मिनट का आत्म-चिन्तन अवश्य करे।

आत्म चिन्तन का एक आलम्बन

१ किसी के साथ कोई मानसिक वाचिक या कायिक दुर्व्यवहार तो नहीं किया?

२ घर के या दूसरे व्यक्तियों से झगड़ा तो नहीं किया?

३ झूठ बोल कर अपना दोष छिपाने की कोशिश तो नहीं की?

४ स्वार्थ या बिना स्वार्थ किसी झूठी बात का प्रचार तो नहीं किया?

५ धन पाने के लिए विश्वासघात तो नहीं किया?

---

1 जो पुव्वरत्तावररत्तकाले संपिक्खए अप्पगमप्पएणं
किं मे कडं किं च मे किच्चसेसं किं सक्कणिज्जं न समायरामि ।

६ किसी की कोई वस्तु चुराई तो नहीं ?
७ काम भोग की तीव्र अभिलाषा तो नहीं रखी ?
८ स्व प्रशंसा और पर-निन्दा से प्रसन्नता व स्व निन्दा और पर प्रशंसा से अप्रसन्नता तो नहीं हुई ?
९ क्रोध तो नहीं आया और आया तो क्यों किस पर, कितनी बार?
१० अपने मुँह से अपनी बड़ाई तो नहीं की ?
११ किसी का झूठा पक्ष लेकर विवाद तो नहीं फैलाया और किसी को अपमानित करने की कोशिश तो नहीं की ?
१२ किसी की निन्दा तो नहीं की ?
१३ किसी के साथ अशिष्ट व्यवहार तो नहीं किया ?
१४ अविनय भूल या अपराध हो जाने पर क्षमा-याचना की या नहीं?
१५ जिह्वा की लोलुपतावश अधिक तो नहीं खाया-पीया ?
१६ ताश चौपड़ कैरम आदि खेलों में समय को बर्बाद तो नहीं किया ?
१७ किन्हीं अनैतिक या अवाञ्छनीय कार्यों में भाग तो नहीं लिया ?
१८ किसी व्यक्ति जाति दल पक्ष या धर्म के प्रति भ्रान्ति तो नहीं फैलाई ?
१९ व्रतों की भावना को भुलाया तो नहीं ?
२० दिन भर में कौन से अनुचित अप्रिय एवं अवगुण पैदा करने वाले कार्य किए ?

उपवास उपवास जीवन-शुद्धि का महान् साधन है। सभी भारतीय धर्मों में उसको प्रमुख स्थान मिला है। जैन और सनातन में निःश्रेयस् प्राप्ति का वह एक परम अंग माना गया है। मुसलमान धर्म में भी अपने प्रकार से उपवास आदि को महत्त्व दिया गया है। साधक का जीवन इन्द्रियों पर विजय पाना और मन को शुद्ध रखना है इसके लिए भी उपवास अत्यन्त उपयोगी है। वहाँ यह आत्मिक रोगों के शमन का अमोघ मंत्र है वहाँ शारीरिक स्वास्थ्य लाभ का भी एक असाधारण उपादान है। चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थों में भी पक्ष या मास में उपवास रखने के बहुत सारे लाभ लिखे हैं। प्राकृतिक चिकित्सा का तो वह प्राण ही है। प्राचीन काल से लोकोक्ति भी ऐसी चलती है जो व्यक्ति प्रति पक्ष या प्रति मास उपवास करता है उसके घर वैद्य क्यों आएगा ? अस्तु इस प्रकार उपवास के अनेकों लाभ हैं पर अणुव्रती अपने व्रत का ध्येय आत्म-शुद्धि को ही मान कर चले, इसीमें साम्य और साधन की शुद्धि रह सकती है जो भौतिक

लाभ उपवास के द्वारा सुलभ हैं, वे तो मिलेंगे ही।

अणुव्रती प्रतिमास एक उपवास करे। उपवास का अर्थ होता है एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाना-पीना। उस उपवास में ध्येय-शुद्धि की भावना नहीं है जिसमें केवल अन्न-त्याग दूध फल मिठाई आदि चौगुना भार आंतों पर लाद दिया जाता है। वहाँ यथार्थ संयम ही नहीं तब स्वास्थ्य-लाभ कैसा?

शारीरिक या मानसिक दुर्बलताओं से यदि उक्त प्रकार का उपवास किसी अणुव्रती के लिए असाध्य है तो वह प्रति मास दो एकाशन करे। एकाशन का अर्थ एक आसन स्थित पहले सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक बार से अधिक न खाना।

प्रार्थना और व्रतालोचन

प्रार्थना भी आत्म-उपासना का महत्त्वपूर्ण पहलू है। सभी धर्मों में इसको महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। प्रार्थना से एक नई स्फूर्ति और अपने संकल्पों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न होती है। साम्प्रदायिक प्रार्थना अणुव्रती का ऐच्छिक विषय है। अणुव्रत-प्रार्थना आत्म-शुद्धि व आचार-शुद्धि के समन्वित तत्त्वों पर आधारित होनी चाहिए। आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी ने समग्र अणुव्रतियों में एकात्मकता रह सके इसलिए "बढ़े जाग है ! भगिनी बन्धुओं ! अणुव्रती बन जाएं हम' नामक प्रार्थना का प्रणयन किया है।

पन्द्रह दिनों में स्थानीय अणुव्रती सामूहिक प्रार्थना और व्रतालोचन करें। इससे अणुव्रतियों में संगठन पैदा होगा और पारस्परिक समालोचनाओं से व्रत शुद्धि भी होगी। वहाँ पर पाक्षिक भूलों एवं प्रगति का अवलोकन भी हो सकेगा।

क्षमा-याचना एक प्रयोग

क्षमायाचना पारस्परिक कलहों को निवारण करने का राज-मार्ग है। क्षमा माँगने और मँगवाने का व्यवहार समाज में प्रचलित है, किन्तु वह निर्दोष नहीं इसलिए उसका सुन्दर परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता। वहाँ किसी भी कलह के समझौते का आरम्भ क्षमा मँगवाने से नहीं होता है इससे गुत्थी सुलझती नहीं। क्रोध के साथ वहाँ अहम् और जाग उठता है। क्रोध और अहम् की दीवार जहाँ जाग उठती है वहाँ मनोमालिन्य कैसे दूर हो? दोनों पक्ष यदि इसी बात पर डट जाते हैं—गलती उसकी है इसलिए वह क्षमा-याचना करे। इस स्थिति में थोड़ा भी सामर्थ्य रहते हुए कोई किसी के सामने नहीं झुकता। यदि विवश होकर झुकता भी है तो भी उससे क्लेश दूर होकर प्रेम नहीं बढ़ता।

लोगों की यह मिथ्या धारणा है कि जो पहले क्षमायाचना करता है उसकी नाक कमी जाती है परन्तु स्थिति यह है—दो विरोधियों में से क्षमा याचना को जो पहल करता है वह बाजी मार लेता है। दूसरे पक्ष के पास सिवाय गिड़गिड़ाने के और कुछ नहीं रह जाता। यह एक प्रयोग है जो साधक को आत्म-शुद्धि के साथ व्यावहारिक सफलता भी देता है।

अपनी भूल के लिए तो क्षमा-याचना करना अणुव्रती के लिए अनिवार्य है ही। आवश्यक है अपनी ओर से किसी के साथ कटु-व्यवहार होते ही तत्काल क्षमायाचना करे। एक साधक अपने अहम् से एकाएक मुँह नहीं मोड़ सकता तो १५ दिन की अवधि में तो उसे क्षमायाचना कर ही लेनी चाहिए।

अणुव्रती क्षमा मांगने की तरह क्षमा देने में भी उदारचेता रहे। किसी ने उसके साथ कटु-व्यवहार किया तो उसे यह गांठ नहीं लगा लेनी है कि जब वह क्षमा मांगने आएगा तब ही मैं उसे क्षमा करूँगा। दोषी को भी अपनी ओर से क्षमा प्रदान करने में वह पानी-पानी हो जाता है।

अहिंसा-दिवस

अहिंसा अणुव्रत-आन्दोलन का मूल आधार है। अहिंसा के सद्भाव में उद्देश्य की सफलता है। जन-जन में अहिंसा की साधना बढ़े अहिंसा की भावना बढ़े और हिंसा के विरुद्ध एक वातावरण बने इसलिए आन्दोलन के अन्तर्गत वर्ष में एक सामूहिक अहिंसा-दिवस मनाने की व्यवस्था है। वह अहिंसा-दिवस केवल अणुव्रतियों के लिए ही नहीं किन्तु अहिंसा-निष्ठ सभी व्यक्तियों के लिए है। यहाँ तक कि वह कसाइयों के लिए भी है। उक्त अहिंसा-दिवस से प्रेरणा पाकर उस दिन के लिए वे भी अपनी क्रूर प्रवृत्तियों को छोड़ें। अहिंसा-दिवस की साधना वैसे तो व्यक्ति के विवेक पर निर्भर है। वह उसे जितनी भी उच्च कोटि का बना सके। उसकी सामान्य मर्यादाएं ये हैं—

क—उपवास करना।

ख—ब्रह्मचर्य का पालन करना।

ग—असत्य-व्यवहार नहीं करना।

घ—कटु-वचन नहीं बोलना।

ङ—मनुष्य पशु, पक्षी आदि पर प्रहार नहीं करना।

छ—वर्ष भर में हुई भूलों की आलोचना करना।

ज—किसी के साथ हुए कटु-व्यवहार के लिए क्षमतक्षामना करना।

विगत पांच वर्षों से देश में जो अहिंसा-दिवस मनाया गया है और जनता ने उससे जो प्रेरणा ली है, वह स्तुत्य है। छोटी-छोटी

बस्तियों में अहिंसा-दिवस के उपलक्ष में सहस्रों उपवास होना सामूहिक रूप से व्यापार मात्र बन्द रखना एक-एक शहर में

परिणाम सहस्रों कसाइयों का स्वेच्छा से समग्र दिन पशु-वध बन्द रखना और अहिंसा-दिवस सम्बन्धी सार्वजनिक आयोजनों में भाग लेना आदि कार्यकलाप व्यावहारिक जीवन में अहिंसा के अवतरण के सूचक हैं।

विशिष्ट अणुव्रती

आन्दोलन की व्यवस्था के अनुसार 'विशिष्ट अणुव्रती' साधना की एक तीसरी श्रेणी है। पिछली श्रेणियों से उत्तरोत्तर संयम का विकास करना इसका लक्ष्य है। अणुव्रती अपने आप स्व विवेक से जीवन के प्रत्येक पहलू में संयममूलक प्रगति करता रहे। संयम विकास के कुछ पहलू तो उसके लिए निर्धारित हैं ही।

वस्त्र विवेक

वस्त्र-संयम के विषय को लेकर वह रेशमी व विदेशोत्पन्न वस्त्रों का परिहार तो कर ही चुका होता है अब उसे और आगे बढ़ना है। बढ़ने के नाना प्रकार हो सकते हैं। उनका मूल अहिंसा अपरिग्रह और अशोषण होना चाहिए। इस विषय में उसके लिए कुछ निश्चित मर्यादाएं हैं। जैसे —एक वर्ष में सौ गज से अधिक कपड़े का उपयोग नहीं करूंगा या हाथ के कते-बुने वस्त्रों के सिवाय किसी भी प्रकार के वस्त्रों का उपयोग नहीं करूंगा। पहली मर्यादा के मूल में है—अपनी अनन्त लालसा को सीमित कर गजों में बांध लेना। दूसरी के मूल में है—अहिंसा अपरिग्रह और अशोषण। सौ गज की मर्यादा अन्तिम नहीं कही जा सकती। अणुव्रती स्वयं अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर उक्त मर्यादा को घटाता जाए, यह उसका विवेक होगा। दूसरी मर्यादा हाथ के कते-बुने वस्त्रों की है। उसमें भी मर्यादा के सकोच की काफी गुंजाइश है। उसी दिशा में आगे बढ़ता हुआ अणुव्रती अपने लिए यह भी नियम बना सकता है कि मैं अपने प्रान्त व ग्राम में बनी हुई खद्दर के सिवाय अन्य वस्त्र का उपयोग नहीं करूंगा या अपने हाथ से कते-बुने सूत से बने कपड़े के सिवाय अन्य वस्त्र काम में नहीं लूंगा।

बहुत सारे विचारकों का आग्रहपूर्ण सुझाव था कि विशिष्ट अणुव्रतियों के लिए तो हाथ से कते-बुने वस्त्रों के अतिरिक्त वस्त्र न पहनने की निर्विकल्पता ही होनी चाहिए थी किन्तु स्थिति यह है वस्त्र-संयम के नाना राजमार्ग हैं। एक ही प्रकार विशेष के साथ अणुव्रती को बांध दिया जाए, यह अभीष्ट नहीं। आन्दोलन का मूल अहिंसा और अपरिग्रह पर है। उसका सार्वदैशिक विकास होता रहे यही अधिक श्रेयस्कर होता है। यद्यपि वर्तमान भाषा

चरण में चर्चा व आदर बहुत ऊँचा स्थान पा चुके हैं तथापि यह लक्ष्य नहीं साधन ही माने जा सकते हैं। समाज में अशोषण आए, यह एक लक्ष्य है। अणुव्रती का आदर्श होगा—वह अपने कल-कारखानों में भी शोषण को न पनपने दे। वह वैयक्तिक अधिकारवाद को चुनौती देगा। मजदूर और अपने बीच तरतमता को नहीं पनपने देगा। सामष्टिक अधिकारता में शोषण नहीं रहेगा और यह आन्दोलन की एक प्रकट सफलता होगी।

समाज में शोषण को मिटा देने के दो प्रकार हो सकते हैं—या तो उस यंत्रवाद को मिटा दिया जाए जिसके आधार पर वह शोषण पनपा है या यंत्रवाद के उन अबाध प्रसारों को जिनके कारण शोषण और अधिकारवाद बढ़ा है। असम्भव दोनों ही कार्य नहीं हैं तथापि यह कभी-कभी असम्भव के समान लगता है कि आज का विश्व जो चर्खे से आरम्भ होकर वस्त्र निष्पादन के हेतु मिल-निर्माण तक पहुँच चुका है वह उपलब्ध सुविधा और कला से मुँह मोड़ कर पुनः अयंत्रवाद के उस गुहा-युग में चला जाए। यंत्र स्वयं जड़ है। वह अपने आप में भला बुरा कुछ नहीं। उपभोक्ता उसका सदुपयोग भी कर सकता है और दुरुपयोग भी। एक ही वस्तु मनुष्य के लिए वरदान भी सिद्ध हो सकती है और अभिशाप भी। अणुव्रत-आन्दोलन जन-मानस को नैतिकता के उस उच्च स्तर पर पहुँचाने का हामी है कि वह उपलब्ध हुए किसी भी भौतिक साधन का दुरुपयोग न करे। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श जब चरितार्थ होगा तब शोषण व वर्ग-संघर्ष जैसी बुराइयाँ अपने आप पलायन बोल देंगी।

लंचा-दान

लंचा (घूस)—ग्रहण का निषेध सामान्य अणुव्रती की मर्यादा में हो चुका। उस निषेध में भी भावना तो यही रही कि यथासंभव वह लंचा दे भी नहीं। यहाँ उस यथासंभवता का स्थान अनिवार्य निषेध ने ले लिया है। आज के वातावरण में यह व्रत अभिशाप के बराबर है। कचहरी रेलवे स्टेशन पोस्ट ऑफिस आदि किसी भी स्थान पर रिश्वत देने वाला अपना कार्य आसानी से कर गुजरता है। छोटे से छोटे कार्य को भी अधिकारी लोग कुछ लाभ उठाने की दृष्टि से रोके रखते हैं। घण्टों के काम में महीने लग जाते हैं तो भी विशिष्ट अणुव्रती को बाधा बरस में एक नई भीड़ देनी है। स्थिति-पोषकता का एक बार अन्त हुए बिना पुनर्निर्माण असम्भव है। बुराइयों के साथ लोहा न लेने से ही वे पनपी हैं। विशिष्ट अणुव्रती आने वाली कठिनाइयों को चीरकर एक नये आदर्श का निर्माण करे।

आज की कर (Tax) व्यवस्था नैतिकता की परख के लिए खरी कसौटी बन चुकी है। कर-व्यवस्था में भी अपनी नैतिकता को प्रकट रखने वाला व्यक्ति व्यवसाय व जीवन के अन्यान्य पहलुओं में भी नैतिकता पर चल सकेगा ऐसा सहज ही माना जा सकता है।

कर-व्यवस्था

बहुत सारे लोगों ने अपना यह दावा बना लिया है कि कर की चोरी तो कोई चोरी है ही नहीं। क्योंकि इसमें करों का भार अन्याय पूर्ण है। वे लोग कहते हैं करों का भी कभी अन्त आएगा—आय-कर, बिक्री-कर, मृत्यु कर और न जाने क्या-क्या कर। तथापि आज के बढ़ते हुए कर चिन्तन का विषय अवश्य बन गए हैं, यह तो निर्विवाद है। करों का अनहद दबाव ही कर विषयक चोरी का एक अन्यतम हेतु है। कुछ प्रसंगों पर ऐसा हुआ है कर विशेष के घटने पर राज्य को वही आय हुई, जो कर की पूर्व स्थिति में होती थी। कारण स्पष्ट है अधिक कर में चोरी अधिक थी और अल्प कर में अल्प। कर व्यवस्था को लेकर शासकों और जनता में आज बड़ा मतभेद है। शासक कहते हैं दूसरे देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में अब भी कर थोड़ा है। जनता कहती है आज जितने कर हैं भारतवर्ष में किसी युग में नहीं थे और तो क्या मृत्यु पर भी कर। विचारकों के इस असामंजस्य का मूल हेतु है—समाज-व्यवस्था का संक्रान्ति-काल। शासकों का ध्येय है, अमुक कानून के द्वारा अमीरी और गरीबी के भेद को मिटाते जाएंगे। अतः उन्हें लगता है जो व्यक्ति एक वर्ष में लाख रुपए कमाता है और वह सत्तर या अस्सी हजार रुपए कर में देकर बीस या तीस हजार रुपए बचा पाता है तो एक व्यक्ति के लिए क्या यह कम है? व्यापारी यह सोचते हैं—इस लाख की रकम को हम घाटे-नफे की जोखिम में डालकर और वर्ष भर परिश्रम कर जो एक लाख रुपया बचाते हैं उसमें से भी हम यदि एक तिहाई के भी भागी नहीं बनते हैं तो हमें क्या मिला? यदि हमारी एक लाख की आय के बदले दो लाख का घाटा हो जाए तो क्या राज्य उसकी पूर्ति करता है? विचारक के इस असामञ्जस्य का निष्कर्ष यही निकलता है शासक लोग जनता के नैतिक स्तर को परखे बिना ही नित नए कर उस पर न लादें। जब तक उन करों की अनिवार्यता जनता को नहीं समझा देंगे तब तक तथाप्रकार के करों से जनता में क्षोभ बढ़ेगा और तथाकथ करों की चोरी बढ़ेगी। यह मानकर करों को बढ़ावा देना कि जितना कर हम लगाएंगे उसका एक चौथाई ही जनता देगी इसलिए सब वाजिब करों को चौगुना कर दिया जाए, यह बहुत बड़ा भूल होगी। ऐसा करके तो शासक सर्वसाधारण की एतद्विषयक निष्ठा और नैतिकता ही समाप्त कर देंगे। साथ-साथ सब

साधारण का भी दायित्व यह रह जाता है शासक वर्ग द्वारा निर्धारित किसी भी कर का वे वंचन न करें। हो सकता है सब प्रकार के कर सब लोगों की दृष्टि में उचित न हों तथापि कर की चोरी उसका प्रतिकार नहीं। वह तो आत्म-हनन ही है। इससे व्यक्ति-व्यक्ति में स्तेय-वृत्ति बढ़ती है और वह जीवन के अन्य पहलुओं को भी दूषित कर देती है। सत्य का साधक सह नहीं जाता। यदि उसे किसी बात का विरोध करना है तो वह स्तेय जैसी कायरता नहीं करेगा। वह तो शासक-वर्ग को इस बात की चुनौती ही देगा कि यह संविधान अनुचित है। मैं इसका पालन नहीं करूँगा और यदि यह सच है तो अन्य सहस्रों लोग इसका अनुकरण करेंगे। चोरी किसी वस्तु का नैतिक प्रतिकार नहीं हो सकती। विशिष्ट अणुव्रती आय-कर, बिक्री-कर, मृत्यु-कर एवं तत्प्रकार के अन्य करों की चोरी नहीं करेगा।

ब्याज

इस्लाम धर्म में ब्याज-ग्रहण को अत्यन्त घृणित और महापाप माना गया है। सम्भव है उन दिनों समाज में ब्याज लेने वालों का आतंक बहुत बढ़ गया था। तभी इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद ने उसके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। ब्याज लेना बहुत बड़ा गुनाह बताया। आज भी ब्याज ने समाज में एक व्यवसाय का रूप ले रखा है। गरीबों की स्थिति से अनुचित लाभ उठाने वाले न जाने कितने 'शाइलॉक'[1] समाज में पैदा हो गए हैं। इसलिए सरकार को इसमें हस्तक्षेप करना पड़ा है। ब्याज लेना व देना मूलतः ही समाज से उठा दिया जाए, ऐसी स्थिति नहीं है। अतः ब्याज-ग्रहण की एक सीमा निर्धारित करनी पड़ी है। विशिष्ट अणुव्रती उस सामाजिक औचित्य का लंघन न करे।

परिग्रह नाना अनर्थों का मूल है। इसके संग्रह में लीन हुआ व्यक्ति हिंसा का आश्रय लेता है। ब्याज-ग्रहण की मनोवृत्ति भी इसी बात की सूचक है। ब्याज पर दिए गए रुपयों को व ब्याज को जब व्यक्ति अदा करता है, तब उसका हृदय इतना क्रूर हो जाता है कि मानवता को ताक पर रख कर सामने वाले व्यक्ति को सब प्रकार से बरबाद करके भी वह अपने रुपए निकलवाना चाहता है चाहे उसके घर वालों और बच्चों की सम्पत्ति भी क्यों न पड़ी हो? इसीलिए शास्त्रकारों ने उचित ही कहा है कि अनन्त अनुबन्धी लोभ के चंगुल में फँसे मनुष्य में सम्यक् दर्शन नहीं ठहर सकता।

---

१ शेक्सपीयर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' उपन्यास का एक अनुचित ब्याज लेने वाला व्यापारी पात्र।

वस्तु-विनिमय से व्यवसाय का प्रारम्भ हुआ। फिर अर्थ उसका माध्यम बना। क्रय-विक्रय में एक ओर वस्तु और एक ओर अर्थ।

फाटका बनाम निष्क्रिय व्यापार

अब व्यवसाय ही एक व्यसन हो चला है। वस्तु के आदान प्रदान का कोई पक्ष ही नहीं स्वयं अर्थ ही व्यवसाय बन गया है। बाजार में माल को लेना और बेचना पड़े यह एक झंझट है। इसलिए माल का क्रय विक्रय तो दूर उसे बिना देखे ही केवल भावों की तेजी-मंदी से लाखों रुपयों की हार-जीत कर लेते हैं—यह फाटका है। आज देश के लाखों और करोड़ों लोग इस निष्क्रिय व्यवसाय में लगे हैं। फाटका लोगों को अच्छा लगता है इसलिए कि उसमें माल खरीदने के हेतु बहुत बड़ी रकम एक साथ नहीं चाहिए, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। केवल दिमागी खिलवाड़ से प्रतिदिन सायंकाल ही हानि-लाभ का चिट्ठा उभर कर सामने आ जाता है।

ऊपर से यह जितना सहज व आकर्षक लगता है अन्तरंग में वह समाज के लिए उतना ही बड़ा अभिशाप सिद्ध हो रहा है समाज-व्यवस्था का आधार श्रम है। प्रत्येक व्यक्ति समुचित श्रम समाज को दे और समुचित भोग-सामग्री समाज से प्राप्त करे, यह समाज-शास्त्र का पहला सूत्र है। फाटका इस संविधान के बिल्कुल उल्टा है। यह समाज में निष्क्रिय व्यक्तियों की एक फौज तैयार करता है। फाटका करने वाले व्यक्ति बहुधा इतने अकर्मण्य हो जाते हैं कि अनिवार्य परिस्थितियों में भी खेती नौकरी या अन्य कोई भी परिश्रम का व्यवसाय उनके लिए एक हौआ बन जाता है। इस निष्क्रियता ने आज सारी समाज-व्यवस्था को हिला दिया है। इसी के परिणामस्वरूप—'फाटका बन्द हो फाटका बन्द हो' की आवाज सम्पूर्ण विश्वमंडल में गूंज पड़ी है।

फाटका करने वाले कहते हैं—अन्य व्यवसायों में बहुत बड़ी हिंसा है। फाटका अहिंसा-प्रधान है किन्तु उन्हें अपना अन्तरंग टटोलना चाहिए—कि क्या वे फाटका इसलिए करते हैं कि वह अहिंसा प्रधान है या उनकी व्यसनपरता और निष्क्रियता ही इसका असाधारण हेतु है। हिंसा केवल कायिक ही नहीं होती कभी-कभी मानसिक हिंसा उससे और आगे बढ़ जाती है। फाटका करने वाले की तृष्णा छलांगें भरती है। वह प्रतिदिन अमहद लालसा को लेकर उठता है और अपनी अतृप्त भावनाओं को लिए सोता है। मानसिक व्यग्रता फाटका करने वालों का पहला गुण है। खाना-पीना व अन्य कार्य उनके बहुधा अस्त-व्यस्त रहते हैं। आध्यात्मिक चिन्तन में मानसिक एकाग्रता तो उनके लिए अशक्य अनुष्ठान हो जाती है। कहने को यह भी कहा जा सकता है कि

जुआ खेलना क्या बुरा है ? उसमें भी हिंसा आदि समारम्भ नहीं है पर यह कौन मानेगा ? उसमें रहे नाना कुव्यसन उसे कभी श्रेष्ठ आचरण की कोटि में नहीं आने देंगे। जुआ और फाटका में बहुत बड़ी समानताएं हैं। भारतीय संस्कृति में जुए को अधिक बुरा इसलिए माना गया है कि वह एक व्यसन है। उसमें फँसने के बाद मनुष्य जल्दी से निकल नहीं पाता। ज्यों-ज्यों मनुष्य हारता है त्यों-त्यों जुआ खेलने की वृत्ति और अधिक भभक उठती है। ये सारी बातें फाटके में भी हैं। जुआरियों की तरह सटोरियों का भी बहुना और खाली-लोटा बहुधा बाजार में बिकता देखा जाता है। फाटके को बुरा बताने में यदि लोगों को झिझक होती है तो इसी कारण से कि आज के युग में वह बहुत व्यापक बन गया है। उसने देशीय ही नहीं अन्तर्देशीय रूप ले लिया है। ऊँचे और भद्र कहलाने वाले करोड़ों मनुष्यों का यह व्यवसाय बन गया है। फिर भी इस प्रवाह को मोड़ना है। सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से इसका अति विस्तार भयावह है।

कुछ लोग कहते हैं, गरीबों का साधन फाटका ही है। व्यवसाय करने के लिए पैसा नहीं है नौकरी मिलती नहीं ऐसी स्थिति में और चारा ही क्या रह जाता है यह एक भावना है। परिश्रम से सब सुलभ होते हैं। स्थिति तो यह है कि नौकरी में अपमान अनुभव होता है और किसी परिश्रमपूर्ण व्यवसाय में भी अक्षमता है। ऐसे लोगों के लिए फाटका ही अवशेष रह जाता है। गरीबी और नौकरी का न मिलना ही एक मात्र इसका हेतु होता तो लक्षाधीश व कोटिपति इसमें क्यों फँसे देखे जाते ? जो गरीब थे और फाटके से पर्याप्त धन पा लिया गया वे भी इसे तिलाञ्जलि देते देखे जाते हैं ?

फाटका के समर्थक कहते हैं और सभी व्यवसायों में मिलावट झूठा तोल-माप चोरबाजारी आदि अनैतिकताएँ हैं इसमें ऐसा नहीं है। उत्तर सीधा है, यह सच है कि इसमें उक्त बुराइयाँ नहीं है पर इतना ही सच यह भी तो है कि फाटका स्वयं एक बड़ी से बड़ी बीमारी है। अस्तु, फाटका के बहुत सारे दुष्परिणाम देखने में केवल सामाजिक लगते हैं किन्तु उससे बहुत सारे धार्मिक गुणों का हनन भी होता है। आर्तध्यान आदि नाना मानसिक संक्लेश पनपते हैं अतः विशिष्ट अणुव्रती के लिए यह वर्जनीय है। उसका दायित्व तो यह होगा कि अपने पुत्र-पौत्रादि को भी इस रास्ते पर न आने दे तथा अन्य लोगों को भी इस गर्त व्यसन से मुक्त करने का प्रयत्न करता रहे।

संग्रह आज के युग की एक व्यापकमुखी समस्या है। प्रेम सौहार्द व

समानता आदि कितने ही वैसे गुण इसके द्वारा निखर आ चुके हैं। जब-जब मनुष्य ने संग्रह के दुष्परिणामों को समझा तब-तब समाज में त्याग की बात आई। आज भी वही स्थिति है। संग्रह के दुष्परिणाम—असमानता वैमनस्य दीनता वर्ग-संघर्ष आदि से सारा विश्व संत्रस्त हो रहा है। नाना प्रयत्न भी इस दिशा में होते देखे जाते हैं। एक ओर बताया जाता है—शोषित वर्ग को येन केन प्रकारेण राज्य-सत्ता हथिया लेनी चाहिए तो एक ओर प्रयत्न है—भूमि सम्पत्ति आदि का दान कर देना चाहिए। किन्तु स्थिति यह है—राज्य-सत्ता के हथिया लेने से संग्रह या शोषण मिटेगा ऐसी बात नहीं है। उसमें तो केवल यही अपेक्षित है वह संग्राहक बन जाए और जो संग्राहक है वह शोषित। जो कुछ है उसका दान कर दिया जाए यह बात भी समस्या के मूल पर नहीं जाती। दान भी होता जाए और पुनः उन्हीं व्यक्तियों का शोषण होकर संग्रह भी होता रहे उसका योगफल क्या होगा यह एक सीधी सी बात है। अणुव्रत-आन्दोलन की दृष्टि है—व्यक्ति अमर्यादित संग्रह करना छोड़े। यदि नए सिरे से संग्रह बन्द हो जाता है तो संगृहीत द्रव्य तो किसी न किसी प्रकार बिखर जाने का ही है।

संग्रह उन्मूलन

यह एक बहुत बड़ा प्रश्न था संग्रह की दिशा में अणुव्रती अपने आपको कहाँ तक सीमित करे। सर्वोदय के क्षेत्र में भी श्री किशोरलाल मश्रूवाला ने इस विषय को जोरों से उठाया था और ऐसी कुछ रूप रेखाएँ भी दी थी कि सर्वोदयी सेवक दस हजार से अधिक संग्रह न करे, पर वे व्यवहार्य नहीं हो सकी। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी ने एक लम्बे विचार-विमर्श के पश्चात् इस दिशा में सक्रिय कदम उठाया है। उसके अनुसार विशिष्ट अणुव्रती अनिवार्यतया यह प्रतिज्ञा करता है मैं संगृहीत पूँजी एक लाख से अधिक नहीं रखूँगा। यह मर्यादा सहसा तो विस्तृत लगती है पर जैसा कि लोग सोचा करते हैं विषमता का मुख्य अन्त तब होगा जब कि जो वर्ग अभाव से नितान्त उत्पीड़ित है उसका स्तर (Standard of living) ऊँचा उठेगा और आज जिनका स्तर अत्यधिक ऊँचा है, वह बहुत कुछ हल्का होगा। ऐसी स्थिति में विशिष्ट अणुव्रती का उक्त संकल्प एक मध्य-बिन्दु सा सिद्ध होता है। अणुव्रती का परम ध्येय तो अपरिग्रह-मुक्ति है। आश्वासन की मर्यादा सब-सामान्य है। पर वैयक्तिक स्थितियों में बहुत सारे अणुव्रती मर्यादा का और भी संक्षेपीकरण कर सकते हैं। उन्हें इस दिशा में हमेशा जागरूक रहना चाहिए।

परिशिष्ट

प्रेरणा-दीप

(अणुव्रतियों के जीवन-संस्मरण)

(१)

सामूहिक प्रयोग

हमारे विद्यालय में २५० विद्यार्थी और शिक्षक अणुव्रत का प्रामाणिकता के साथ पालन करते हैं। गत वर्ष मुझे जो अनुभव हुआ उसके अनुसार मैं कह सकता हूँ कि अणुव्रत का पालन करने वालों ने जीवन के सभी क्षेत्रों में बहुत अच्छी प्रगति की है। मैं यह गौरव के साथ कह सकता हूँ कि विद्यालय में एक पुस्तकालय है, जिसमें पुस्तकें खुली अलमारियों में रखी रहती हैं विद्यार्थी स्वयं पुस्तक ले लेते हैं और पढ़कर पुनः वहीं रख देते हैं। अब तक एक भी पुस्तक चोरी नहीं गई है। इस प्रकार के पुस्तकालय चलाने की प्रेरणा मुझे अणुव्रत से मिली है। मैंने अणुव्रतों को लेकर और भी कुछ सामूहिक प्रयोग विद्यालय में किए हैं। साइन्स रूम, क्राफ्ट्स रूम और साइन्स क्लब जहाँ पर कि चटनीचूरण आदि बनाए जाते हैं खुल रखने का आदेश दिया। वहाँ भी इसी प्रकार किसी भी विद्यार्थी ने किसी वस्तु को नहीं छुआ। यह आचार्यश्री तुलसी का आशीर्वाद ही है और कुछ नहीं जिसने विद्यालय में इतना अच्छा वातावरण बनाया।

(२)

सफल प्रयोग

मैं बंगलौर के कोर्ट हाईस्कूल में अध्यापक हूँ। यह स्कूल मैसूर राज्य में सबसे बड़ा है। करीब डेढ़ हजार विद्यार्थी यहाँ पढ़ते हैं। बंगलोर में करीब पच्चीस हाईस्कूल हैं और उनमें अधिकांश प्राइवेट हैं। प्राइवेट हाईस्कूलों में कम उम्र या प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थियों को ही लेते हैं। मन्दबुद्धि या बड़ी अवस्था वाले विद्यार्थी प्रायः कोर्ट हाईस्कूल में ही आते हैं। इसलिए यह प्रसिद्ध है कि इस स्कूल के विद्यार्थी बहुत नटखट होते हैं। संयोगवश मेरी नियुक्ति भी इसी स्कूल में हो गई। मुझे एक बार भय सा लगा लेकिन फिर भी क्या हो सकता था सरकार का आदेश जो ठहरा। मैंने मन ही मन सोचा—मुझे अणुव्रतों का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त स्थल मिल गया। मुझे इसको प्रयोगशाला मानकर चलना चाहिए। यदि मैं यहाँ सफल होता हूँ तो मुझे मानना चाहिए—नैतिकता में आकर्षण है और व्रतों में जीवन-परिष्कार करने की शक्ति है। यदि ऐसा नहीं होता तो मुझे मानना चाहिए, मेरे में उस नैतिक

यम की कमी है जिसकी ओर अणुव्रत आन्दोलन का संकेत है।

पाठ पढ़ाते समय नींद लेना या कक्षा के बाहर इधर-उधर घूमना विद्यार्थियों की ये दो बुरी आदतें थीं। अध्यापक पढ़ाने का प्रयत्न करते उन्हें समझाने का प्रयास करते पर कोई किसी की नहीं सुनता। मैं भी वहाँ पहुँचा सारे वातावरण का अध्ययन किया। मन में आया—इन बच्चों को कथन रूप *शिक्षा न* देकर कार्य-रूप शिक्षा देनी चाहिए। पहले ही दिन मैंने बोर्ड पर अणुव्रत-आन्दोलन की विद्यार्थियों के लिए निर्धारित पाँचों प्रतिज्ञाएं लिख दीं और साथ ही *'पाठ पढ़ाते समय मैं नींद नहीं लूँगा व पाठ पढ़ाने के समय कक्षा के बाहर नहीं जाऊंगा'* ये दो बातें विशेष रूप से और लिख दीं। विद्यार्थी न पाठ पढ़ते और न मैं उन्हें पढ़ने के लिए कुछ कहता। मैं कुर्सी पर बैठा रहता और पाठ्यक्रम की पुस्तकें पढ़ता रहता। विद्यार्थी कभी कक्षा में आते कभी बाहर जाते। बोर्ड पर उनकी नजर पड़ती। एक दो बार किसी ने कुछ भी नहीं पूछा किन्तु फिर धीरे-धीरे विद्यार्थी मेरे पास आने लगे और सावचर्य पूछने लगे—"श्रीमान् आप क्या कर रहे हैं? क्या नहीं पाठ है?" मैं उनको हाँ यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है इस पर ध्यान टिकाया कहते हुए उन नियमों की व्याख्या करता। विद्यार्थी धर्म धर्म मेरी बातें सुनने लगे। वे कहने लगे—*"क्या हमें पाठ पढ़ते समय नींद नहीं लेनी चाहिए? कक्षा के* बाहर इस तरह नहीं घूमना चाहिए?" मैं उन्हें प्रेमपूर्वक उत्तर देता—हाँ अच्छे विद्यार्थी ऐसा नहीं करते। दो *तीन महीनों* में ही विद्यालय का वातावरण बदल गया। विद्यार्थी उत्सुकता पूर्वक अपने आप कक्षा में आने लगे। परिश्रम पूर्वक अध्ययन करने लगे। उन्होंने नींद लेना भी बन्द कर दिया। सहसा भावना जागृत हुई कि अणुव्रतों का निष्ठापूर्वक पालन करने से सचमुच स्वयं का और दूसरों का जीवन संयम की ओर अग्रसर होता है।

(३)

अपनों की अभिसन्धि पर

महाजन से मैं ब्याज लेकर अपना व्यवसाय चलाता था। एक घटना ऐसी घटी कि एक काश्तकार ने अपने बैल गिरवी रख कर उसी महाजन से कुछ कर्ज लिया। थोड़े दिनों बाद उसने मेरे सामने ही ब्याज चुका दिया पर महाजन का मन उसके बैलों पर ललचा गया। उसने षड्यन्त्र रचा कि मुझे रुपये वापिस नहीं मिले। काश्तकार ने महाजन से बहुत कुछ कहा सुना और प्रमाणित भी किया कि रुपये दिए जा चुके हैं पर उसने एक भी न मानी।

आखिर मामला प्रारम्भ हुआ। मेरे पर दबाव डाला गया कि काश्तकार के विरुद्ध गवाही देनी होगी और उसमें कहना होगा कि रुपये वापिस नहीं लौटाए गए। मेरे लिए यह गवाही देना बिल्कुल ही सम्भव न था। तथापि मुझे लगता था कि मेरा सम्बन्ध महाजन से कटु हो जाएगा और व्यापार में बड़ी से बड़ी दुविधा उत्पन्न हो सकती है। किन्तु वर्तमान में आत्म-हनन कर भविष्य में प्रतिष्ठ होने की भावना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुई। सत्य से सम्बन्ध तोड़कर महाजन से जोड़ना मुझे सरासर घाटे का सौदा लगा। मैंने स्पष्ट कह दिया मेरे सामने महाजन या काश्तकार का प्रश्न गौण है और अपनी नैतिकता का प्रमुख। अतः मैं असत्य साक्षी नहीं दूंगा। कोर्ट में भी प्रसंग आ गया और मैं अपने प्रण पर अडिग रहा। उसी दिन से अब मुझे मार डालने की धमकी दी जा रही है पर मुझे इससे तनिक भी भय नहीं होता।

ग्राम पंचायत के चुनाव हो रहे थे। लोगों ने मुझे सरपंच का चुनाव लड़ने को कहा—मैंने उनसे अपनी असहमति व्यक्त की। दबाव भी बहुत पड़ा पर मुझे यह उचित नहीं लगा। आखिर अत्यधिक आग्रह होने से मैंने सरपंच का चुनाव लड़ना स्वीकार कर लिया। मेरा एक प्रतिद्वन्द्वी भी था। उसकी ओर से चुनाव-प्रचार जोरों से चला। मैंने कुछ भी नहीं किया। परिणाम नैतिकता के पक्ष में आया। मुझे २१ मत मिले और उसे १४। ग्राम पंचायत में बैठकर भी प्रतिदिन यही ख्याल रहता है कि जनता की भलाई कर सकूँ।

उपसरपंच मेरे मित्र हैं और अणुव्रती भी। उन्होंने एक हजार रुपये व्यवसायार्थ लिए। हवलदार इससे नाराज हुआ। क्योंकि उन दोनों में मनमुटाव रहता था। उन्होंने मेरे पर दबाव डाला कि मैंने जो रुपए उसे दिए हैं, वे वापिस ले लूँ, पर मुझे यह उचित न लगा। मैंने स्पष्ट कह दिया वह अणुव्रती भी है और मेरा मित्र भी। अतः किसी भी रूप में मैं उससे रुपए वापिस नहीं ले सकता। अणुव्रती के नाते मेरा कर्तव्य होता है कि मैं अणुव्रती को सहयोग करूं और उसके व्यवसाय को भी बढ़ाऊं जिससे कि जनता में नैतिकता के प्रति आकर्षण पैदा हो सके। अब भी बहुधा वह मुझे नाना प्रकार की धमकियाँ देता रहता है। पर जब मैं अपनी नैतिकता पर अडिग हूँ तो घबड़ाने की क्या आवश्यकता?

मैं उड़ीसा में रहता हूँ। वहाँ व्याज द्वारा ग्रामीण जनता को बहुत

चूसा जाता है। तीन-तीन चार चार रुपया प्रतिशत ब्याज लिया जाता है। मुझे यह बहुत अनुचित लगा। मैंने कम ब्याज पर रकम देनी प्रारम्भ कर दी। रकम की कमी होने से पुनः पुनः मन में आता है कि ब्याज का धन्धा बन्द कर दिया जाए पर दूसरे क्षण मन में आता है इन निरीह किसानों के भोलेपन का अनुचित लाभ तथाकथित व्यवसायियों द्वारा उठाया जाएगा। किसान भी बहुत बार मुझसे कहते हैं कि ब्याज का काम बन्द न करना हम मारे जाएंगे। आप हमसे बहुत थोड़ा ब्याज लेते हैं। यह सोचते हुए फिर मन में आता है कि जनता की भलाई के लिए मुझे इतना त्याग अवश्य करना चाहिए। उन्हें सुख सुख की सांस लेते देखकर मुझे राहत मिलती है। जब से मैं अणुव्रती बना हूँ प्रतिष्ठा और व्यवसाय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

(४)

अब मने झूठ बोलना छोड़ा

सन् १९५४ को बंगलोर में मुझे अणुव्रत आन्दोलन का अध्ययन करने का सौभाग्य मिला था। सन् ५७ की फरवरी में मैंने सरदारशहर (राजस्थान) में आचार्यश्री तुलसी के पहले-पहल दर्शन किए। करीब बीस दिन तक मुझे उनके सामीप्य का सुअवसर मिला। आचार्यश्री की आचार निष्ठा को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। हृदय में स्वयं आवाज उठी और मैं भी अणुव्रती बना। मैं आन्दोलन उसके उद्देश्य और व्रतों से भली भाँति परिचित था। मैं जानता था कि आन्दोलन प्रत्येक व्यक्ति को क्रमशः आदर्श की ओर अग्रसर करता है। सत्य में मेरी श्रद्धा है असत्य को मैं त्याज्य मानता हूँ इस भावना की ओर मैं क्रमशः बढ़ता जा रहा था। पर पूर्णतः सत्यवादी बन सकूं ऐसी परिस्थिति में मैं अपने आपको नहीं पाता था क्योंकि मैं मैसूर सरकार की ओर से परीक्षक नियुक्त होता था। जब मित्रों और पारिवारिक व्यक्तियों को इसकी सूचना मिलती वे अपने बच्चों के उत्तर पत्रों में अंक-वृद्धि के लिए मुझे बाधित कर देते थे। मुझे कभी-कभी कह देना पड़ता मैं तो परीक्षक नहीं हूँ या कोई संदिग्ध उत्तर देकर उन्हें टाल देता। पर अणुव्रती बनने के बाद मेरे में एक ऐसी शक्ति जागृत हुई और अब मैं ऐसे प्रसंगों से बचने का ही प्रयत्न करता हूँ और सफल होता हूँ।

एक बार एक उपचिकित्सक (Assistant Surgeon) मेरे पास आए। उन्होंने अपने लड़के के बारे में पूछा। वे कहने लगे—वह अठारह वर्ष का हो गया है। प्रतिवर्ष भाषा में अनुत्तीर्ण हो जाता है। वह हमें सब दिखाता है

कि यदि इस वर्ष भी अनुत्तीर्ण हो गया तो मिलिटरी में भर्ती हो जाऊँगा। कृपया अंक बढ़ा दीजिए।

मैंने झूठ बोलने का सोचा। मन में आया कह दूँ—मैं तो परीक्षक नहीं हूँ। कह भी सकता था पर अणुव्रती होने का भान हुआ। तत्काल भावना उद्भूत हुई—असत्य से मुझे सत्य की ओर बढ़ना है। मैंने कहा—मेरे पास उत्तर पत्र हैं किन्तु मुझे खेद है मैं आपको सहयोग नहीं कर सकता क्योंकि यह गोपनीय है। आप भी एक जिम्मेवार अधिकारी हैं अतः मुझे माफ करें। मेरे इस कथन से न वे क्रोधित हुए न प्रसन्न ही। वे उसी समय मुझे नमस्कार कर चले गए।

(२)

विवाह में बरात नहीं

मेरे छोटे भाई की शादी थी और वह भी मेरे परिवार में अन्तिम। अतः उसमें उत्साह का अतिरेक स्वाभाविक था। दूर और नजदीक के सभी रिश्तेदार इस अवसर पर आए थे। लड़की वालों के वह एक ही लड़की थी तथा उनके घर में वह प्रथम शादी थी। अतः वे भी दिल खोलकर खर्च करना चाहते थे।

मेरे मन में सादगी और आडम्बरविहीनता का प्रश्न रह-रह कर उठता था। विवाह के बाद दिए जाने वाले जीमनवार को मैं फिजूलखर्ची में शुमार समझता हूँ। अतः इसको उठा देने का मैंने एक तरह से निश्चय कर लिया था। पर लड़की वालों ने जीमनवार के लिए आग्रह किया। दलीलें भी दीं। आज आप हमारे घर न पधारेंगे तो कब पधारेंगे। यह तो हमारा सौभाग्य होगा। पर मैंने अपने निश्चय में साथ समग्र परिवार की स्वीकृति का बल जोड़ लिया था। लड़की वालों ने अन्त में कहा—आप लोग इसे अनुभव करें या न करें पर दूसरे लोग यह समझेंगे कि इन्होंने सम्बन्धी को अपने आंगन भी नहीं बुलाया। मैंने कहा—हमारे नाराज होने का तो प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि आप तो जीमनवार देना चाहते हैं हम ही उसे अस्वीकार करते हैं। रहा प्रश्न दूसरों की मनगढ़ंत कल्पना का तो हमें उस पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए। विवाह-संस्कार के बाद ही कुछ लोगों ने पूछा—जीमनवार (जान) कब रखा है? मैंने कहा—भोज नहीं होगा। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—बस समधी ने भोज ही नहीं दिया। यह तो उन्होंने बड़ी कमजोरी दिखाई। पर

मैंने जब वस्तु-स्थिति उन्हें समझाई तो समीने कहा—हां वास्तव में यह फिजूल खर्ची ही है। लोगों ने एक समय का भी लिया तो उससे क्या होना-जाना है पर सामने वाले व्यक्ति के हजारों का खर्च हो ही जाता है और खिलाने-पिलाने में कोई भूल या कमी-बेसी हो जाए तो बदनामी भी होती है।

इसी तरह दहेज दिखाने का भी प्रश्न आया। हमारे यहां ऐसी प्रथा है कि दहेज दिखाने के लिए पास-पड़ौसियों तथा रिश्तेदारों को निमन्त्रण दिया जाता है तथा उसे सजाकर भी रखा जाता है। हमने उक्त दोनों कार्य ही नहीं किए। न तो निमंत्रण ही दिए तथा न सजाया ही।

(६)
रेल के डिब्बे में

कलकत्ता में होने वाले प्रथम वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने के लिए मैं अपने गांव से चला जिस डिब्बे में मैं बैठा था मार्ग में दो घटनाएं घटीं। मैंने सोचा मुझे यहां अणुव्रतों का प्रयोग करना चाहिए। पहली घटना थी कि एक फौजी हमारे डिब्बे में आया। उसने आव देखा न ताव एक व्यक्ति के पड़े सामान को इधर उधर गिराकर स्वयं बैठने का प्रयत्न करने लगा। सामने वाले व्यक्ति को बड़ा गुस्सा आया। जब उसने आपत्ति की झगड़ा शुरू हो गया। दस मिनिट तक उत्तेजनात्मक वातावरण रहा। मैंने सोचा दोनों व्यर्थ झगड़ रहे हैं। दोनों को यात्रा करनी है। इसी डिब्बे में बैठना है। यदि वे अहिंसात्मक ढंग से काम लें तो कितना सुन्दर हो। दोनों आराम से बैठ सकते हैं यदि एक दूसरे के प्रति दोनों का सौहार्द हो। मैंने बीचबचाव किया। दोनों को समझाया। मैंने उनसे कहा—आप दोनों ही एक दूसरे से अपरिचित हैं। अपने में से अधिक से अधिक किसी का दो घण्टे किसी को दस घण्टे किसी को एक या डेढ़ दिन इस डिब्बे में बैठना है। फिर आप कहीं चले जाएंगे ये कहीं चले जाएंगे। जीवन में भी फिर कभी मिलेंगे या नहीं किसी को भी पता नहीं है। ऐसी स्थिति में झगड़ना और वह भी बैठने के लिए, मुझे उचित नहीं लगा। मैंने उन्हें समझाया—देखिए, इधर आप बैठ सकते हैं उधर आप। दोनों को ही एक दूसरे से कष्ट नहीं होगा। दोनों ने ही मेरी बात स्वीकार कर ली और वातावरण शान्त, स्निग्ध व मधुर बन गया।

रेल गाड़ी आगे बढ़ी। कुछ देर बाद एक सज्जन शौचालय में चले गए। दूसरे सज्जन आए और उन्होंने उनके स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया। पहले सज्जन जब लौटे, संघर्ष आरम्भ हो गया, होना ही था भी।

दूसरे सज्जनने तड़ाक से उत्तर दिया—मैं टिकिट के पैसे देकर बैठा हूं तुम मुझे उठाने वाले कौन ? पहले सज्जन ने कहा—मैं तुम्हारे से पहले यहाँ बैठा था। तुम इस स्थान पर अधिकार जमाने वाले कौन ? वाक्-युद्ध क्रमशः अपनी सीमा लांघने लगा। डिब्बे का वातावरण फिर एक बार क्षुब्ध हो गया। मैंने अपने पूर्व परीक्षित गुर का फिर प्रयोग किया और उसमें सफल हो गया। क्षुब्धता शान्ति में परिणत हो गई। लोगों ने मुझे आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से देखा। मैंने उन सबसे बातें भी प्रारम्भ कीं। एक परिवार के समान अपनत्व हो गया। हम सब फिर इतनी लम्बी यात्रा में बड़े आनन्द से रहे। किसी ने किसी को कष्ट नहीं दिया। डिब्बा सारा भरा था तथापि नया यात्रियों को भी किसी ने दुत्कारा नहीं अपने में समाहित करते हुए गाड़ी के साथ आगे बढ़े जा रहे थे।

(७)

हार नहीं: जीत

सन् १९५४ में आचार्य श्री का चातुर्मास जोधपुर में था। उस समय अणुव्रत-आन्दोलन का प्रचार-कार्य करते करते एक विचार आया कि राजनीति में रहते हुए अणुव्रतों का आलम्बन लेकर अग्रसर होने का प्रयास किया जाए।

पूरे तीन वर्ष तक साधना करते करते कुछ स्वभाव ऐसा बन गया कि राजनीति के लिए कृत्रिमता, प्रवञ्चना और तिकड़म आदि जो अनिवार्य तत्त्व गिने जाते हैं, क्रमशः एक-एक कर अपने आप मन्द पड़ने लगे। सन् ५७ में देश में चुनाव का कार्यक्रम सम्पन्न होने लगा। अपने उन तीन वर्षों के शान्त जीवन के बाद चुनाव में भाग ले सकूँ यह मुझे अपने लिए दुस्साहस-सा प्रतीत हो रहा था। चुनाव लड़ने के लिए एक कांग्रेसजन के लिए पार्टी का टिकिट प्राप्त करना चुनाव-दंगल में प्रवेश करने के लिए पहला चरण होता है। मेरे साथियों ने मेरे नाम का सुझाव दिया। मेरे इलाके के लोग अच्छी तरह जानते थे कि मैं अणुव्रती हूँ और राजनीति में अणुव्रती का प्रवेश होना हमारे इलाके में इसी प्रकार समझा जाने लगा जैसे कोई साधु गृहस्थी का भार सम्भालने के लिए नियुक्त किया जाए। अलग-अलग पंचायतों के पंचों ने विचार करना प्रारम्भ किया। मजीब बात थी पंचों में अजैन और जैन सभी थे। जैनों में भी विभिन्न सम्प्रदायों के व्यक्ति थे। उन्हें विचार करना था और उनकी [illegible] से टिकिट मिलना सरल-सा प्रतीत होता था। इधर

मैं सोचने लगा अणुव्रती होने के नाते मैं न तो अपने विरोधियों को अपने वश मैं करने के लिए अनुचित दबाव का प्रयोग कर सकता हूँ और न अपने समर्थकों की व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति। फिर वे मुझे किस प्रकार सह योग करेंगे और मेरा अणुव्रती के रूप में वे लोग न मालूम किस तरह से और किस दृष्टि से मूल्यांकन करें ? मैंने इस मसले को नियति के भरोसे छोड़ दिया। आश्चर्य की बात थी कि सभी पंचायतों ने मेरे प्रति शत प्रतिशत अर्थों में सिफारिशें ही नहीं की अपितु जब अखिल भारतीय-कांग्रेस के पर्यवेक्षक और राजस्थान के पर्यवेक्षक हमारे यहाँ जांच के लिए आए तो उन्होंने प्रति निधि मण्डलों के रूप में उनसे सम्पर्क किया और बाद में मुझे मालूम पड़ा कि उन्होंने जो मूल विशेषता मेरे बारे में बताई वह मेरा अणुव्रती होना ही था।

मैं इस विशेषता की प्रसिद्धि से प्रसन्न तो बहुत रहा किन्तु मन ही मन डरता था कि कहीं मेरे कारण अणुव्रत की प्रतिष्ठा को ठेस न पहुँच जाए। चुनाव लड़ना तो गौण है, प्रथम महत्त्व अणुव्रतों की साधना है। मैंने पुन अपना हृदय मजबूत बनाकर इस ओर प्रयास करने का इरादा किया। समस्या यह न हो पाया क्योंकि राजस्थान प्रदेश कांग्रेस में मेरे प्रतिद्वन्द्वी एक किसान एम०एल०ए० थे और उन्हें हमारे प्रमुख राजनीतिज्ञों का सहयोग प्राप्त था। किन्तु मेरे अन्तर में अपने अणुव्रतों की विशेषता के कारण अगाध गौरव प्रतीत हो रहा था और मेरे साथियों ने मुझे बताया कि उम्मीदवार के मनोनयन के लिए उसके चारित्रिक मूल्यों का भी अंकन होता है। अतः मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस संसदीय दल, दिल्ली के निर्णय तक हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

मैं दिल्ली पहुँचा। वहाँ आचार्य श्री के दर्शन हुए। मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी के भी वहीं मैंने दर्शन किए। मुनि श्री ने बताया कि राजनीति में अणुव्रती बनकर आदर्श कायम करना महत्त्वपूर्ण बात है। हो सकता है तुम्हें निराश होना पड़े किन्तु फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। अपने विचार और कार्यों को उज्ज्वल रखने में जीवन खपा देना चाहिए। मैंने सोचा कि इसका अर्थ यह है कि मुझे कर्तव्यपथ पर बढ़ते रहना चाहिए और वह भी अणुव्रती के रूप में। पर इसमें अनेक कठिनाइयां थीं। एक तो सार्व जनिक कार्य और उसमें भी राजनीति यदि मैं असफल हो गया तो लोग हँसेंगे। किन्तु मन में अणुव्रती के रूप में चुनाव लड़ने की प्रबल इच्छा थी। अतएव मैंने न तो सिफारिश कराई और न अन्य किसी

बाद का सहारा लिया। केवल अणुव्रतों के आधार में ही आस्था रखी। बड़े बड़े कांग्रेस जन जहाँ अनेकानेक उपाय करते दृष्टिगत हो रहे थे वहाँ मेरे बुजुर्ग कांग्रेसी साथी भी मुझे यही सलाह देते थे कि भाई अणुव्रती बनकर बैठे रहे तो वैसे ही रह जाओगे अन्यथा किसी प्रभाव का प्रयोग करो। मेरा मन न माना। मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा और इस विषय से अपने ध्यान को हटाने की चेष्टा करने लगा और जब राजस्थान के उम्मीदवारों के निर्णय का दिन आया तो मैं जोधपुर रवाना हो गया। आशा और निराशा के द्वन्द्व में डूबता उतरता घर पहुँचा। लोग आने लगे कोई कुछ कहता और कोई कुछ। मेरे प्रतिद्वन्द्वी को आशा ही नहीं अपितु यह विश्वास हो चला कि टिकिट मुझे ही प्राप्त होगा। उन्होंने चुनाव-कार्य प्रारम्भ भी कर दिया। मैं घर में बैठा विचार-सागर में गोते लगा रहा था। मैं सोचता—यह मेरा प्रश्न नहीं क्योंकि इस संसार में मुझ जैसे साधारण का क्या महत्त्व? एक ही आशा की किरण थी और वह थी पर्यवेक्षकों की सम्मति—जिसने मुझे अणुव्रती बताया था तो क्या मेरा अणुव्रती रहते चुनाव लड़ना असम्भव ही रहेगा? नाना प्रकार के विचारों में डूबा हुआ मैं अखबारों को पढ़ने में समय व्यतीत करने लगा और इसी प्रकार निराश हो—एक दिन मैंने अखबार में टिकिटों के निर्णय को पढ़ने की कोशिश की। अजीब आश्चर्य हुआ कि मुझे अपने क्षेत्र से कांग्रेसी उम्मीदवार घोषित कर दिया गया था जिसकी मुझे कल्पना ही नहीं थी। बाद में मालूम हुआ कि सचमुच ही अणुव्रतों की विशेषता ने ही मुझे इस दंगल में विजयी बनाया।

मैं उस दिन चुनाव-क्षेत्र के लिए रवाना हो गया। चुनाव दंगल प्रारम्भ हुआ। मुख्य नगर में मेरा पहला भाषण रखा गया। भावात्मक उद्रेक में मैंने घोषणा की कि भाई चुनाव तो ठीक है मैं भ्रष्टाचार के विरोध के लिए ही विधान-सभा में जाऊँगा और अणुव्रती होने के नाते मेरी ईमानदारी में किसी को शक हो नहीं सकता। मुझे आप आज्ञा दें मैं ईमानदारी से आपकी सेवा कर सकूँ।

भाषण की विविध प्रतिक्रियाएँ थीं। लोगों ने कहा—अजीब व्यक्ति है राजनीति का और अणुव्रत का क्या सम्बन्ध? अणुव्रती है तो अपनी आत्म साधना में लगे राजनीति में ईमानदार हो या बेईमान हो हमारा जो अधिक से अधिक कार्य कर सके वही राजनीति में पड़े और वही सफल होगा। बाकी लोगों ने भी ईमानदारी और पवित्रता की बात को अधिक महत्त्व तो नहीं

दिया किन्तु लोगों के मन में एक बात घर कर गई कि [illegible] तो नैतिक है, अतः चुनाव की जितनी निम्न-कोटि की कार्यवाहियाँ होती हैं उनकी ओर चौकसी करने की भार न किसी ने स्वीकार नहीं की। मेरे प्रतिद्वन्द्वियों ने अनेक प्रकार की सहायताएँ प्राप्त कीं।

एक बीमारी का मैं और भी शिकार था और वह यह कि राजस्थान कांग्रेस के अन्तिम निर्णय का। अखिल भारतीय कांग्रेस ने मेरे हित में निर्णय लिया। अतएव राजस्थान में मुझे कोई सहायता नहीं मिल सकता था। मैंने बहुत चेष्टा की, किन्तु दलबन्दी का मैं शिकार हो चुका था। और, ऐसी स्थिति में बिना पतवार की नाव के सहारे मैं पार उतरना चाहता था। इस स्थिति पर बहुत विचार किया। एक मात्र बात थी कि तीन सौ पचीस गाँव थे और अनेक सहयोगी एवं विरोधी लोगों के बीच में भाषणों पर भाषण दे रहा था जिसमें मुख्य विषय मेरी अणुव्रती होने की घोषणा थी। मैं अपने निश्चय पर अडिग था। हार जाऊँ चाहे जीतूं, जीत हो तो अणुव्रती रहते हुए होनी चाहिए। यह ही संकल्प था और यह भी बार बार प्रकट हो चुका था। फल यह हुआ कि एक महीने की इस तैयारी से लोगों के दिल में एक बात घर कर गई कि बेचारा भला आदमी तो है ही—इसे सहयोग देना चाहिए। प्रतिद्वन्द्वी किसान पार्टी के जाति के लोग भी मेरे पर बड़े प्रसन्न थे और दूसरे प्रतिद्वन्द्वी जो जागीरदार थे, उनका भी मेल बहुत था। तीनों में चुनाव-लड़ाई कहीं उत्तेजना नहीं हुई। यही प्रतियोगिता की होड़ में हमारे साथियों ने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। एक पैसा भी अनैतिक रूप में व्यय नहीं हुआ। जगह जगह ग्रामीणों ने चुनाव-व्यवस्था में भाग लिया। यह सब हुआ किन्तु वर्तमान राजनीति का और कुछ और ही है उनसे अणुव्रती को टक्कर लेनी थी। मेरे पास पैसा नहीं था। कांग्रेस पार्टी ने सहायता का वादा किया था पर वह नहीं मिली। गाड़ी भी नहीं थी क्योंकि जो थी उसे खराब करार दिया गया था। एक किराए की गाड़ी पर मैं तूफान की तरह चक्कर लगाता रहता और रात्रि को कार्यकर्ताओं से विचार-विमर्श करता।

वे लोग कहते—एक प्रतिद्वन्द्वी ने हर प्रकार से वोट लेने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए हैं। लोग एक-एक रुपया लेकर आ रहे हैं और बता रहे हैं कि हमने वोट को वोट दे दिया है। मैंने कहा—यह नहीं होगा। किन्तु मेरे लिए हारना श्रेयस्कर होगा इस प्रकार से जीतना मेरे जीवन की सबसे बड़ी हार होगी। मैं अपने शर्तों पर दृढ़ रहा और उधर मेरे साथी मुझे बार बार सचेत करते रहे। मैंने उन्हें बताया कि मेरी शर्तों को

इच्छा नहीं है। यह सभी लोग भली प्रकार जानते हैं। अतएव हमारी यदि हार होगी तो वह हमारे प्रचार प्रयास की कमी के कारण ही होगी हमें नैतिक सम्मान तो अवश्य मिलेगा।

अन्त में यही हुआ—मैं जीत न सका। हमारे किसान नेता जिन्हें कांग्रेस का टिकिट नहीं मिल सका था और वे मुल स्वतन्त्र रूप से मेरे मुकाबले में खड़े थे वे भी बेचारे हार गए। अर्थात् यदि अणुव्रती की राजनीति में असफलता हुई तो सत्तासीन नेता भी उसके सामने टिक न सके। तीसरे प्रति द्वन्दी की ही विजय हुई, जिससे हमारी पार्टीबन्दी की कमजोरी का पर्दाफाश हुआ। किन्तु अणुव्रती उम्मीदवार के अणुव्रत खंडित नहीं हुए। मुझे लगभग ६ हजार मत प्राप्त हुए और मैंने इसीसे अपनी आत्मा में बल प्राप्त किया।

मैं हारा किन्तु मुझे लोगों की सहानुभूति प्राप्त हुई, प्रेम मिला और इसका कारण था मेरी बलिदान-भावना जो अणुव्रतों के प्रचार द्वारा नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना के लिए दृढ़ थी उसको मैं बार बार प्रयुक्त करना चाहता था। यह हार निश्चय ही मेरे लिए सबसे बड़ी जीत थी।

(८)
स्पष्टवादिता

वकालत के साथ साथ हमारे आढ़त का व्यवसाय भी चलता था। अणुव्रती होने के नाते हमने अपनी नीति बना ली थी कि व्यापारी के साथ पूर्ण ईमानदारी का व्यवहार हो। पर इससे हम बाजार के साथ नहीं चल सके। दूसरे व्यवसायी यदि आठ आने कमीशन लेते तो हमें एक रुपया सवा रुपया लेना पड़ता। व्यापारी हमें बहुत कुछ कहते। कुछ एक ने तो हमसे माल लेना भी बन्द कर दिया। हमें इससे तनिक भी चिन्ता न हुई। हमें यह विश्वास था आखिर सत्य प्रकट होकर रहेगा। हमें उससे विचलित होने की आवश्यकता नहीं है। एक दिन एक गाड़ी माल व्यापारी ने हमारे द्वारा खरीदा जो कि कमीशन में बारह आना सैकड़ा अधिक था और एक गाड़ी अन्य किसी व्यापारी से खरीदा जो हमारे कमीशन से बारह आना सैकड़ा कमीशन कम था। जब उसके पास दोनों गाड़ियां पहुँची तब उसे पता चला कि हमारा माल तीन आना मन सस्ता था और उसका महँगा। अन्तर इतना ही था कि हमने कमीशन उससे कह कर अधिक लिया था पर माल बाजार भाव दिया था। उस व्यापारी ने कमीशन कम लिया था, पर माल उसे बिना कहे

बाजार भाव से ऊंची दर लगा कर दिया था। यह एक तरह का धोखा था और हमारा काम नैतिक था। लेने वाले व्यापारी को पता चल गया कि कमीशन अधिक देने में व कम देने में क्या अन्तर हो सकता है? फिर वह व्यापारी हमारा बन गया।

(२)

तीन अनुभव

'भय से भय बढ़ता है भय का सामना करो भय स्वयं दूर हो जाएगा'—आचार्यश्री तुलसी के ये शब्द मेरे जीवन को नई मोड़ नई गति देने में सदा से विशेष सहायक रहे हैं। इन्हीं शब्दों से प्रेरणा पाकर सुधार की बातें जो सिर्फ भाषणों तक ही सीमित थीं जीवन में साकार रूप धारण करने लगीं।

विवाह के समय से ही पर्दा एक शूल की तरह चुभ रहा था किन्तु उसे उखाड़ फेंकना अपनी शक्ति से बाहर पा रहा था। आचार्यश्री ने ललकारा—"सुधार की थोथी आवाजों को बन्द कर दो। मैंने दृढ़ संकल्प के साथ पर्दे के महान् अभिशाप को जयपुर में सन् १९६ में आचार्यश्री के चरणों में चढ़ा दिया। दस वर्ष पूर्व की इस घटना ने हमारे परिवार को पर्दे के अन्धकार से मुक्ति पाने के लिए सजीव प्रेरणा दी है और आज हमारा परिवार खुली सांस ले रहा है।

* * *

उज्जैन अधिवेशन की बात है—"व्रत-ग्रहण का समय था। व्रत-ग्रहण के बाद विशेष आह्वान हुआ और मैंने अपने आपको दहेज विरोधी अभियान में पाकर अत्यधिक प्रसन्नता अनुभव की। आचार्यश्री के सान्निध्य में—"दहेज न लूंगा और न दूंगा"—प्रतिज्ञा-ग्रहण कर अपने में एक नया आत्म बल प्रकट होते हुए देखा। समय आया—भतीजे भतीजी तथा भानजों के विवाह हुए। दहेज के समय न सम्मिलित होना न कुछ लेना और न कुछ देना वातावरण में विशेष आकर्षण के कारण बने बिना नहीं रह सके।

* * *

"आवश्यकताओं को कम करो"—अणुव्रत-आन्दोलन का सदा से विशेष घोष रहा है। आवश्यकताओं के अल्पीकरण का हार्द समझकर अपने जीवन में जिस अभिनव आनन्द का अनुभव करता हूं—उसकी अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा सम्भव नहीं। जीवन में भी घोर आर्थिक संकट का एक समय आया

किन्तु उस समय भी आवश्यकताओं के अल्पीकरण के इस महान् मंत्र ने जीवन पर किसी प्रकार का अवसाद नहीं आने दिया। अभाव तथा विभाव—दोनों स्थितियों में एक ही स्तर का जीवन सामाजिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में विशेष प्रतिष्ठा का कारण बन जाता है।

(१०)

दूकान की प्रतिष्ठा बढ़ी

मटिन्डा की एक पार्टी को हमने चनों की बिल्टी भेजी। कुछ दिनों बाद चनों का भाव तेज हो गया। मटिन्डा के उस व्यक्ति के मन में हुआ कि माल तेज होने से कहीं सौदा स्थगित न हो जाए। वह रात की गाड़ी से हमारे गाँव आया। किसी दूसरे व्यक्ति को साथ लेकर मेरे पास आकर कहने लगा कि अपना रुपया ले लो और माल लदवा दो। मैंने नम्रतापूर्वक कहा कि मैं किसी आवश्यक काम से हांसी जा रहा हूँ आप परसों आ जाएं, माल लदवा दिया जाएगा। भुगतान हम तब लेंगे जब माल निश्चित सौदे के अनुसार आपके यहाँ पहुँच जाएगा। इस बात से वह बहुत प्रभावित हुआ।

मेरी दूकान की प्रतिष्ठा पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गई। लोगों का यह कहना कि बिना असत्य बोले व्यापार चलता ही नहीं है गलत प्रमाणित हुआ।

(११)

मैं चोरी का माल नहीं लूँगा

अणुव्रती बनने के पश्चात् मेरे जीवन में कई कठिनाइयां आईं किन्तु आचार्यश्री तुलसी के आशीर्वाद से मैं दृढ़ रहा। मैंने अपनी चाचीजी की लम्बी बीमारी में काफी सेवा की थी। जब वह मरणासन्न हो गई तो मुझसे कहने लगीं मेरे पास पन्द्रह हजार रुपए हैं उन्हें तुम ले लो किन्तु चाचाजी को न बतलाना। उनके अन्य कोई सन्तान न होने से मेरे प्रति बहुत स्नेह था। फिर भी वह रुपए लेने से मैंने इन्कार कर दिया। मेरी चाचीजी को बड़ा दुःख हुआ। मैंने विनम्र शब्दों में चाचीजी से कहा—मैंने आचार्यश्री तुलसी के समक्ष प्रतिज्ञा की है कि चोरी का माल नहीं लूँगा। मेरी चाचीजी को इस उत्तर से बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह मुझे चोर बनाता है। मैंने चाची जी को कहा कि यह रुपया आपने चाचाजी की कमाई में से ही तो बचा कर

रखा है —जिसके सम्बन्ध में चाचाजी को कोई जानकारी नहीं है। इसलिए यह रुपया चोरी का है चाहे वह घरवालों का हो अथवा दूसरों का चोरी चोरी ही है इस कारण से मैंने वह रुपया नहीं लिया। उनकी मृत्यु के पश्चात् वह रुपया चाचाजी को दे दिया गया।

अणुव्रती बनने के बाद महिलाओं के लिए प्रथा रूप में नहीं रोने का नियम है। अणुव्रती बनने के पश्चात् मेरे निकटतम सम्बन्धियों में चार मौतें लगातार होने पर भी मैंने नियमों को निभाया। क्योंकि पंजाब में 'स्यापा' पीटने की एक जबरदस्त प्रथा है। स्त्रियों ने आलोचना भी की परन्तु बाद में इसका परिणाम अच्छा निकला।

(११)

छुआछूत का भूत

मेरे मकान पर जो हरिजन महिला सफाई के लिए आती है उसके साथ उसके दो तीन बच्चे भी आते हैं क्योंकि वहाँ खुले मैदान में बच्चों को खेलने का स्थान मिल जाता है। वहीं मेरे बच्चे भी खेला करते हैं। बच्चों में चार वर्ष की एक मेरी दौहित्री है। वह बड़ी चञ्चल और मनोज्ञ है। वह उन हरिजन बच्चों के साथ खेला करती थी। एक दिन किसी बड़े बच्चे ने मामीजी से शिकायत कर दी कि मुन्नी हरिजन बच्चों के साथ खेलती है। जब वह घर में आई तो उसे धमकाया दिया और कहा कि तुम उन बच्चों के साथ मत खेला करो। उन्हें छूना भी नहीं चाहिए। मुन्नी को यह बहुत बुरा लगा। वह बाहर मेरे पास आई और कहने लगी—"नाना जी। मैं उन बच्चों के साथ खेलती हूँ तो मुझे मामी जी मना करते हैं और कहते हैं कि तू गन्दी है भंगी के बच्चों के साथ खेलती है, उन्हें मत छूआ कर।" मैंने कहा— 'नहीं बेटा ! तू उनके साथ खूब खेला कर और उनको खाने को भी दिया कर, वे गन्दे नहीं हैं। यदि तुझे कोई कहे तो मैं बात कर लूंगा।" मुझे आश्चर्य हुआ। मन में आया कितना अज्ञान है। हमारे परिवार व समाज के बच्चे पशुओं व कुत्तों के बच्चों के साथ खूब खेलते हैं उन्हें गोद में लेते हैं प्यार करते हैं। उस समय किसी अभिभावक का बुरा अनुभव नहीं होता। यदि वे हरिजन के बच्चों के साथ खेलते हैं तो उनके दिमाग में छुआ-छूत की भावना तुरन्त आ जाती है। कुत्ते घरों में आते हैं, अपने खाने पीने के बर्तनों में भी वे मुंह दे देते हैं तो उन्हें किसी प्रकार की घृणा नहीं होती

परन्तु कोई भंगी यदि घर में चला आता है तो तूफान मच जाता है। मेरी समझ में नहीं आया कि इतने बुद्धिमान लोग इतना-सा भी समझने का प्रयत्न नहीं करते कि क्या वे कुत्ते के बच्चे उन हरिजन बच्चों से अच्छे हैं शुद्ध हैं, जिनकी किसी प्रकार की शुद्धि कोई नहीं करता ? क्या वे हरिजन बच्चे साफ सुथरे रहते हुए भी उन कुत्तों के बच्चों से गिरे हुए हैं ?

(११)

आडम्बर घटाओ

आदर्श की कोई सीमा नहीं हुआ करती। पर व्यक्ति उस ओर बढ़ता जाए, यह उसका लक्ष्य होना चाहिए। आदर्शाभिमुख होने के लिए त्याग के मार्ग पर व्यक्ति अग्रसर होता जाए, यही उसके लिए आवश्यक होता है। यद्यपि मैंने कोई अति ऊँचे आदर्श का अनूठा उदाहरण उपस्थित नहीं किया किन्तु जनता ने उसे उसी प्रकार माना यह मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। घटना छोटी-सी है। मेरे छोटे लड़के का विवाह होने को था। बराबरी के घर में सगाई कर दी गई। आचार्यश्री तुलसी की यह प्रेरणा हर समय हृदय को झकझोरती रही—आडम्बर घटाओ सादगी अपनाओ। मैंने इस अवसर पर दिखावा प्रदर्शन व कुछ रीति-रिवाजों को समाप्त करने की सोची। सभी भाई व अन्य पारिवारिक जनों ने मेरे इस विचार का समर्थन किया। फलस्वरूप आवश्यकता के अतिरिक्त एक भी लड्डू नहीं बनाया गया और न किसी प्रकार की सजावट ही की गई। प्रतिदिन के रहन-सहन व साज-सजावट में तथा सगाई से लेकर विवाह तक के जितने भी लेन-देन होते हैं मैंने एक भी नहीं किया। लड़के को देखने के समय लड़की वाले गिन्नियाँ देते हैं, मैंने नहीं ली और न लड़की देखते समय मैंने उसे भी दी। इसके अतिरिक्त हमारी बिरादरी में प्रचलित हरघो-मरधो धदीमेको झोलो चक्रचोल टिक्को चाव मिलाई घिरमूँछी बात मायेरो भात आदि रीति रिवाजों का भी हमने बहिष्कार किया। बड़े लड़के के विवाह में हमने यह सब कुछ किया था और उससे चालीस-पचास हजार रुपए हमारे घर में आए थे। इस बार भी लड़की वालों ने हमारे पर काफी दबाव डाला पर हम इसमें तनिक भी सहमत नहीं हुए। दहेज भी नहीं लिया। माघ शुक्ला ८ को विवाह था। मैंने अपने भाइयों व अन्य पारिवारिकजनों को माघ शुक्ला ७ को होने वाले तेरापन्थ के ६६ वें मर्यादा-महोत्सव में सम्मिलित होने व आचार्यश्री के दर्शन करने की प्रेरणा दी। वे उसमें सम्मिलित भी हुए। तात्पर्य कुछ भी बाह्य प्रदर्शन आदि हमने नहीं किए। विवाह के समय हम सब पारिवारिक इकट्ठे हुए और लड़की के घर गए। दो घण्टों

में विवाह के सारे कार्य सम्पन्न हो गए। नव-वधु को लेकर हम अपने घर आ गए। हमने अपनी ओर से विवाह के उपलक्ष में किसी प्रकार के भोज का भी आयोजन नहीं किया।

(१४)

प्रशासनिक कार्यों में अणुव्रत-साधना

जिस दिन से मैं अणुव्रती बना हूँ क्रोध पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील हूँ, पर अभी तक उसमें पूर्ण सफल नहीं हो पाया हूँ। पिछले दिनों की ही बात है—क्षमा-दिवस के दिन मैंने कुछ संकल्प किया था कि आज गुस्सा नहीं करूँगा। अपने इस संकल्प में मैं सफल भी रहा पर एक त्रुटि भी हो गई। उस दिन मुझे किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए थी पर राजनीति में रमण करने के बाद किसी की आलोचना करते समय कुछ भान भी नहीं रहता कि उसकी सीमा कहाँ तक है? फलतः जब आत्म-चिन्तन किया सहसा स्मरण हुआ कि किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए थी पर हो गई। मन में बहुत ग्लानि हुई। प्रतिदिन सजग रहने पर भी कभी गलती हो जाती है।

राज्य सरकार के एक विशिष्ट पद पर होने से समय-समय पर अनेकों समस्याएँ सामने आती रहती हैं। पर अणुव्रतों का स्मरण भी तत्काल होता है और आत्म-बल बढ़ता है। फलतः जीवन निर्भय बनता जा रहा है। अपने से बड़े व्यक्ति के सामने भी स्पष्ट कह देने में तनिक भी संकोच नहीं होता। कुछ दिन पूर्व की बात है—मुझे अंडे व मछली उत्पादन का काम सौंपा जा रहा था। भारत सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी ने मुझे बुलाया और उस विभाग को सम्भालने के लिए कहा। मैंने उनसे सोचने के लिए कुछ समय चाहा जो मुझे मिल गया। किन्तु मैंने सोच समझकर उन्हें पुनः कह दिया—मैं यह कार्य नहीं कर सकूँगा। परिणाम अच्छा रहा।

प्रशासनिक कार्यों में अनेकानेक भ्रष्टाचार के मामले सामने आते रहते हैं। उनसे स्वयं दूर हूँ तथा दूसरों को भी दूर रख सकूँ इसके लिए प्रतिक्षण प्रयत्न रहता है। एक बड़े ऑफिसर का मामला मेरे पास आया। मैंने झट स्वतः सत्य और न्याय से इसे निपटाना चाहा। उस ऑफिसर, उसके समर्थक व अन्य कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की ओर से भी नाना दबाव व प्रलोभन आए, पर मैंने उन सबको एक ही उत्तर दिया—आप कोई घबराइए नहीं आखिर निर्णय न्याय के पक्ष में ही होगा। यदि आपने गलती नहीं की है तो आपको किसी भी प्रकार चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है और यदि गलती की है तो अब चिन्तातुर होने से क्या बनेगा? लोभ व स्वार्थ का परिणाम तो आखिर

भोगना ही पड़ेगा। इस निर्लेप उत्तर के बाद कोई भी कुछ नहीं कह सका। मैंने अपना निष्पक्ष निर्णय दे दिया।

(१५)

ब्लैक मान्य नहीं

अणुव्रती होने के पश्चात् मैंने अपने पारिवारिक जनों से अपने फर्म में ब्लैक न करने के लिए विनम्र अनुरोध किया और ब्लैक होने की स्थिति में सम्मिलित रह सकने में असमर्थता प्रकट की। बड़े भाई साहिब ने कहा—तुम्हारे मन में ही यदि धन की कोई लालसा नहीं है तो हमें धन को साथ लेकर थोड़े ही जाना है। हम ब्लैक किसलिए करेंगे ?

प्लास्टिक चूर्ण का एक बड़ा कोटा मुझे एक अन्य व्यवसायी के साथ मिला हुआ था। ब्लैक की दर से लगभग तीन लाख रुपए का लाभ मेरे हिस्से आता था पर ब्लैक करना मुझे मान्य नहीं था। अतः उस व्यवसाय से ही मैंने अपना नाता तोड़ लिया। चोर-बाजारी न करने के लिए और भी बहुत प्रकार के धन्धे मुझे छोड़ देने पड़े।

(१६)

अणुव्रती का आदर्श

अणुव्रत लेने के पश्चात् कुछ ही महीनों में मेरी और मेरी दूकान की प्रतिष्ठा बढ़ी है। ग्रामवासियों के अतिरिक्त कोसों दूर अन्य गाँवों से कपड़ा खरीद करने वाले ग्रामीण भाई भी सर्व प्रथम मेरी ही दूकान पर आते हैं। किसी कारण मेरे यहाँ यदि उन्हें कपड़ा नहीं मिलता तो कुछ दिन प्रतीक्षा करके दूसरी बार शहर में आकर मेरे ही यहाँ से कपड़ा ले जाना चाहते हैं। आसपास के गाँवों में बहुत सारे लोग यह जानने लगे हैं कि इसकी दूकान पर ब्लैक नहीं होता। अणुव्रतों से आत्म-लाभ के साथ-साथ भौतिक-लाभ भी मुझे अच्छा मिला।

विगत दिनों में विवाह, मृत्यु आदि के कई प्रसंग मेरे पारिवारिक जीवन में आए, पर मैंने बृहद् जीमनवार न करने और न रोने आदि के नियमों का दृढ़ता से साथ पालन किया। परिवार वालों ने मेरे असहयोग को आपत्ति जनक न माना क्योंकि वे सब जानते हैं यह अणुव्रती है और इसका यह आदर्श है।

(१७)
माल गंगा में

कलकत्ते में हमारा औषधि निर्माण का व्यवसाय है। एक बार १०००० रुपयों का पीपरमेन्ट हमारे यहाँ खरीदा गया। देने वाले ने थोरा मिलाया हुआ पीपरमेन्ट हमें दे दिया। वह किसी भी उपयोग का नहीं था। यदि चाहते तो किसी प्रकार से हम उसे पार कर सकते थे किन्तु अणुव्रती होने के नाते ऐसा करना नहीं चाहा। दस हजार का सारा माल गंगा में बहा दिया।

(१८)
धोखा क्यों देंगे ?

मैं दिल्ली में अणुव्रती बना। तेजपुर (आसाम) में मेरा व्यवसाय मेरे सम्बन्धियों के साथ था। अपने व्यवसाय में चोरबाजार बन्द करने के लिए मैंने उनसे आग्रह किया पर वैसा नहीं हो सका। उस व्यवसाय में मेरे १ ० रुपए प्रतिमास की आय थी। मैंने अपना हिस्सा निकाल लिया। अब मैंने आजीविका का अन्य मार्ग बना लिया है। हालांकि उसमें मेरी आमदनी काफी कम हो गई है तो भी ब्लैक मिलावट झूठा तोल-माप आदि से बच जाता हूँ। इसलिए पहले से भी अधिक मेरे मानसिक सन्तुष्टि है।

'व्यापारार्थ चोर-बाजार नहीं करना' इतना मूल नियम है पर मैंने यह संकल्प कर रखा है कि खान-पान की चीजें भी ब्लैक से नहीं खरीदूँगा। कठिनाइयों का सामना करके भी मैंने इसे निभाया है। त्याग पर चलना कठिन है पर चलने का परिणाम बड़ा सुन्दर होता है।

तेजपुर (आसाम) में मुझे नियन्त्रित भावों से चीनी नहीं मिलती थी। मैं गुड़ की चाय बनवा कर पीता था। एक दिन मेरे सम्बन्धी के यहाँ कुछ अतिथि आए। जिनमें कुछ राजकर्मचारी भी थे। सायंकाल सबको चाय पिलाई गई। मेरे लिए सम्बन्धियों ने गुड़ की चाय अलग बनवा कर मँगवाई। राज कर्मचारियों में एक टैक्सटाइल सुपरिन्टेन्डेन्ट भी थे। उन्होंने आश्चर्य से इसका कारण पूछा। मैंने अपने अणुव्रती होने का परिचय दिया और अणुव्रत-आन्दोलन के नियमों से उन्हें अवगत कराया। वे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने प्रति सप्ताह अढ़ाई सेर चीनी नियन्त्रित भावों से मुझे मिलती रहे ऐसा प्रबंध कर दिया।

मेरे सत्य बोलने का प्रभाव भी ग्राहकों पर पड़ता जा रहा है। मेरे

साथ सौदा करने में वे किसी प्रकार का अविश्वास नहीं करते । कई बार ग्राहकों के कुछ पैसे मेरे पास अधिक रह गए । मैंने वे पैसे लौटा दिए । परिणाम यह हुआ कि कई बार ग्राहक-वर्गों के पास मेरे पैसे कुछ अधिक चले गए वे मुझे इसका पता भी न था वे ग्राहक स्वयं मेरे पास आए और पैसा लौटाने लगे। मैंने कहा मेरे तो ये पैसे नहीं होते हैं। उन्होंने हिसाब करके भूल बताई और पैसे दिए । चलते-चलते उन्होंने कहा— आप भी हमारे साथ सच्चाई से पेश आते हैं तो हम आपको धोखा क्यों देंगे ?"

(१६)
सचाई पर मुग्ध

मैं तीन वर्ष से अणुव्रती हूँ। अणुव्रत-दृष्टि को समझते हुए मैं खाने पीने की अनिवार्य वस्तुओं को भी ब्लैक से नहीं खरीदता। विगत अकाल में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । गेहूँ के बदले जौ व चने और चीनी के बदले गुड़ से काम चलाया । चावल खाने का चिरन्तन अभ्यास मुझे छोड़ ही देना पड़ा । कपड़ा जैसा मिला उससे काम चलाया । अधिकतर मोटा ही कपड़ा पहनना पड़ा जैसा पहनने का मैं जीवन में आदी नहीं था । स्थितियाँ प्रतिकूल थी तो भी संकल्प को निभाने का विचार अटल रहा । मैंने सोच रखा था कि यदि यहाँ काम नहीं चला तो नेपाल जाकर रह जाऊँगा, किन्तु कोई भी वस्तु ब्लैक से नहीं खरीदूँ गा ।

अपने पौत्र के विवाह में नियम-निषिद्ध जीमनवार न हो इसलिए अपने सम्बन्धियों के घरों में संख्या बार ल्योते दिए। प्रथम तो इसके लिए तरह-तरह की बातें लोगों में हुईं किन्तु मेरे नियमों की स्थिति को समझते हुए बाद में सभी ने इस पद्धति का स्वागत किया ।

राशनकार्ड की संख्या सदैव मैंने सच्ची रखी । घर का कोई सदस्य बाहर जाता तो मैं राशनकार्ड ठीक करवा लेता । व्यवस्थापकों पर इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि मेरी सच्चाई पर वे मुग्ध हो गए । अब मुझे राशनकार्ड की संख्या बढ़वाने में दूसरों की तरह श्रम नहीं उठाना पड़ता । अधिकांश व्यवस्थापक यह जानने लगे हैं कि यह अणुव्रती है अतः झूठे राशनकार्ड नहीं बनवाएगा ।

(२०)
वहीं खाते वापिस

मैं दिल्ली में प्रथम अधिवेशन पर अणुव्रती बना। वहाँ से कलकत्ते

गया और व्यवसाय की टोह में लगा। मुझे कोई ऐसा व्यवसाय नहीं मिला जिसे मैं बिना ब्लैक चला सकता था। एक अन्य अणुव्रती भाई भी मेरी ही तरह बेकार घूम रहे थे। दोनों ने मिल कर दलाली का काम शुरू किया पर वह भी व्यर्थ। जहां जाते लोग दिल्लगी करते—अणुव्रती हो गए अब भी भूख लगती है क्या? ब्लैक का व्यवसाय नहीं करना है तब तो घर बैठ कर माला ही फेरा करिए। आखिर निराश होकर हम दोनों को घर ही लौट आना पड़ा। राजस्थान में आकर भी मैंने कई प्रयत्न किए, पर राजकीय और सामाजिक सहयोग के अभाव में सब निष्फल रहे। बेकारी में कुछ कर्जा भी हो गया किन्तु नियमों पर चलने की भावना दिन प्रतिदिन बलवती ही रही।

बिहार के पूर्णिया जिले में गत-वर्ष से काम कर रहा हूं। आसपास के वातावरण में लोग यह जानने लगे हैं—इसके यहां ब्लैक नहीं होता। एक बार राजकर्मचारियों को मेरे यहां ब्लैक होने का सन्देह हो गया। D S O से मिला और उन्हें बताया कि अणुव्रत-आन्दोलन क्या है और अणुव्रत क्या है तथा मैं इस आन्दोलन का सदस्य हूं मेरे यहां ब्लैक नहीं हो सकता। उसने एक भी नहीं सुनी और कहा—मैं यह सब कुछ नहीं मानता दुनियां में बहुत प्रकार के ढोंग चलते हैं। दूसरे दिन इन्सपेक्टर आया और वही बातें कह गया।

मुझे बहुत चिन्ता हुई कि बिना पूरी जांच किए ही मेरे पर कुछ कर दिया तो अणुव्रत-आन्दोलन की बहुत निन्दा होगी। लोगों में अणुव्रतों के प्रति बनता हुआ विश्वास ढह पड़ेगा। मैंने संकल्प किया कि जैसा मैं हूं वैसा ही राजकर्मचारियों में प्रमाणित हो जाऊं तो मैं ५ दिन का उपवास इसी वर्ष करूंगा।

दूसरे दिन इन्सपेक्टर दूकान पर आया और वही बातें वापिस करते बोला—लोग कहते हैं आप ऐसे आदमी नहीं हैं। हम आपको कष्ट देना नहीं चाहते।

(२१)
कर्त्तव्य-पालन में निर्भीकता

मैं जयपुर में अणुव्रती बना। नियमों का ध्यान बराबर रखता हूं। सप्लाई डिपार्टमेन्ट में इन्सपेक्टर होने के कारण घूस लेने के अवसर आए दिन आते रहते हैं, पर मैं घूस लेने से सदा बचता रहा हूं। कुछ समय पहले की ही बात है, उदयपुर डिवीजन के भीमपुर गांव में किसी कार्य विशेष के लिए गया था। मैं अपने मित्र के साथ हलवाई के यहां चाय पीने गया। वहां हमें समझकर

ी चाय पीने को मिली। कारण पूछने पर हलवाई ने हमें बताया—दूकान
ारों के पास चीनी तो बहुत है, पर हमें कण्ट्रोल रेट से नहीं मिलती सब
यह ब्लैक चलता है। मैंने एक नोट पर हस्ताक्षर कर एक व्यक्ति को चीनी
रीदने के लिए एक दूकानदार के यहाँ भेजा। मैं दूर से देखता रहा। सब
ही हुआ जो ब्लैकमार्केटर की दूकान पर हुआ करता है। मैं तत्काल दूकान
र पहुँच गया और मैंने वही किया जो एक राजकर्मचारी को करना चाहिए।
ूकानदार क्यों ही पुलिस की हिरासत में आया सारे बाजार में खलबली मच
ई। दूकानदार के सम्बन्धी एक पर एक मुझ से और मेरे साथी से मिलने
गे। मैं वहाँ जरा भी नहीं लजचाया क्योंकि अणुव्रती था और राजकर्मचारी
ोने के नाते जो मेरा कर्तव्य होता था वही निभाया। व्रतों में कहीं स्खलना
हो इसका पूर्ण ध्यान रखता हूँ।

(२३)

कठिनाइयों में धैर्य

मैं अणुव्रती होने से पहले से ही चोर-बाजार से वस्तु खरीदने और
ेचने से परहेज रखता था। अब चोरबाजारी समाप्त होने जा रही है। अब
क मैंने अपना संकल्प अच्छी तरह निभाया है। जीवन-व्यवहार में कठिनाइयाँ
वश्य उत्पन्न हुई, पर मैंने धैर्यपूर्वक सबका मुकाबला किया।

(२४)

असम्भव भी सम्भव

अणुव्रती होने के बाद मैं एक विशेष शान्ति का अनुभव करता हूँ।
बुराइयों को छोड़ने में सफल हुआ हूँ। तम्बाकू व जर्दा का मैं चिरकाल से
्यसनी था। मुझे कोई भरोसा नहीं था कि मैं इस बुराई से अलग हो सकूँगा,
पर अणुव्रती होने के पश्चात् यह असम्भवता भी सम्भवता में पलट गई। अब
मुझे ऐसा लगता है मानो मैं कभी तम्बाकू व जर्दे का उपयोग करता ही
न था।

(२५)

कर्तव्य निर्वाह के लिए धन-त्याग

मैं एक सप्लाई क्लर्क हूँ। नमक के बाजार में बहुत कमी महसूस हुई।
व्यापारी लोग ब्लैकमार्केट करने लगे। एक व्यापारी की शिकायत डाइरेक्टर

सिविल सप्लाइज के पास पहुँची। शीघ्र ही वहाँ से एक टेलीग्राम कलेक्टर के पास जांच करने के लिए पहुँचा। कलेक्टर महोदय ने मुझे बुलाया और कहा—यह टेलीग्राम आया है, किसी से कहना मत, शाम की गाड़ी से जांच करने के लिए वहाँ पहुँच जाओ। मैं शाम की गाड़ी से वहाँ के लिए रवाना हो गया। स्टेशन से उतरते ही जिस व्यापारी के स्टॉक की मुझे जांच करनी थी उससे अनायोजित ही मिलना हो गया क्योंकि वह भी उसी गाड़ी से उतरा था। स्टेशन से हम दोनों साथ हो गए। मुझे भी वहीं जाना था।

मेरे ख्याल से उसे सन्देह हो गया कि मैं उसी के लिए आया हूँ। मैं भी सोच रहा था, कहाँ ठहरना चाहिए? रिश्तेदारों के यहाँ ठहर सकता था सुबह आकर स्टॉक चेक कर लेता। लेकिन व्यापारी की तरह मेरे दिल में भी सन्देह पैदा हो गया था—व्यापारी स्टॉक में गड़बड़ न करदे। उसे मेरे आने का पता तो चल ही गया है। व्यापारी ने भी अपने यहाँ ठहरने को कहा जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। गरमी का मौसम था व्यापारी भी मेरे पास ही सो गया।

सुबह हुआ। मुझे हाथ मुँह धोना था। मैंने व्यापारी से पानी ला देने के लिए कहा उसके साथ ही यह भी कहा कि मुझे आपका स्टॉक चेक करना है मजदूरों को बुला लें। वह पानी लाया और साथ में नोट भी। रुपए कितने थे पता नहीं ऊपर दस का नोट दीख रहा था। वह मेरे पास आकर कहने लगा—मेहरबानी कर बोरियाँ मत गिनवाइए। मुझे व्यर्थ की मजदूरी लगेगी। यह मेरी पान-बीड़ी (रुपए) स्वीकार कीजिए। मैं गरीब आदमी मर जाऊँगा। मैंने कहा—माफ करिए, रिश्वत लेने का मेरे त्याग है। मैं आपका दुश्मन तो नहीं हूँ कि बिना कारण फसा दूँगा। इस पर उसने जबरन मेरी जेब में रुपए डालने चाहे पर वह वैसा नहीं कर सका। इस कशमकश में मेरी जेब भी फट गई। इतने में एक दूसरा व्यक्ति उस ओर आ गया। व्यापारी ने झट रुपए अपनी जेब में डाल लिए। मैंने बाहर जाते हुए कहा—मुझे इसी गाड़ी से जाना है, अतः आप मजदूरों को बुला लें। उसने मेरी गाड़ी का समय चुका दिया फिर भी मैंने तीन जगह रखी हुई सारी बोरियाँ गिनी। स्टॉक में ८१० बोरियाँ अधिक निकलीं। मैंने तदनुसार रिपोर्ट कलेक्टर महोदय के आगे पेश करदी। कलेक्टर ने मेरी रिपोर्ट पर विश्वास कर व्यापारी के खिलाफ मिल दिया। तत्सम्बन्धी कागजात आगे भेज दिए गए। इस तरह मैंने अपने कर्तव्य का निर्वाह किया।

(२६)

सुबह का भूला शाम को वापिस

मैं एक बार मद्रास गया। वहाँ मेरे निकट रिश्तेदारों ने भांग छानी और मुझे पीने के लिए बाधित किया पर मैंने अपने त्याग को बताया। उन्होंने बहुत आग्रह किया पर मैंने नहीं पी।

अब उनका हाल सुनिए—वे नशे में चूर हो गए। एक महानुभाव आधा दर्जन सन्तरे खरीदने बाजार गए। वे हमेशा बड़े अच्छे सन्तरे लाया करते थे पर आज नशे में लगभग डेढ़ दर्जन सड़े सन्तरे उठा लाए। दूसरे व्यक्ति मेरे साथ बाजार में गए, वो वहीं गिर पड़े। उन्होंने कहा—मैं अपने आपको सँभाल नहीं पा रहा हूँ आप मुझे वापिस घर पहुँचा दें। मैंने उन्हें वापिस घर पहुँचाया। जब हम भोजन करने बैठे वे भोजन करते ही गए। इस तरह जब दूसरे दिन उनका नशा उतरा तो कहने लगे—आपने बहुत अच्छा किया, आप भी भांग पी लेते तो मैं वापिस कैसे घर आ पाता ?

(२७)

अनीति के पैर खिसके

हमारे गिरवी के साथ-साथ 'पाइप वाटर' का भी काम है जिसमें आठ दस आने तक की ब्लैक मजे से चल सकती है पर हम ब्लैक का त्याग होने के कारण वैसा नहीं करते। इसका परिणाम यह है कि कभी दुकान बन्द रहती है तो ग्राहक दूसरे दिन आकर ले जाते हैं, पर अन्यत्र नहीं खरीदते।

हमने ब्याज की दर भी बहुत घटा दी। इससे बाजार वाले सब नाराज हुए। उन्होंने कहा—आप व्यापार नष्ट कर रहे हैं ऐसे कैसे काम चलेगा ? हमने कहा—हम ऐसा लिखकर दुकान पर कोई बोर्ड नहीं लगा रहे हैं और पचास हजार से अधिक का व्यापार करने का भी हमने त्याग कर दिया है।

(२८)

स्वत परिवर्तन

हमारी एक मित्रान पार्टी ने गोठ करने की सोची। आमलेट आदि का प्रबन्ध पहले ही कर लिया गया था जो कि अण्डों की बनाई जाती है। हम सब वहाँ पहुँचे। मैंने आमलेटों को देखा कुछ विचारा कि क्या करूँ ? यदि न खाता हूँ तो भी ठीक नहीं और खाता हूँ तो नियम-भंग होता है। आखिर

मैंने खड़े होकर सब बात कही। साथियों ने मुझे खाने के लिए बहुत कहा, पर मैंने नहीं खाई। नतीजा यह हुआ कि सारे साथियों ने कहा—अच्छा हम भी नहीं खाएंगे।

(२६)

घड़ी की चैन

पहले जब मैं अणुव्रती नहीं था मेरे भाई ने अपने लिए घड़ी की चैन बनवाई तो मैंने भी हठ करके घर वालों को अपने लिए चैन बना देने के लिए बाध्य किया। वह चैन मुझे बहुत प्यारी थी। पर जब मैं अणुव्रती बन गया तो मैंने उसे सहर्ष खोलकर घर वालों को दे दिया क्योंकि अब उसके प्रति कोई मोह नहीं रहा। घर वालों को ताज्जुब हुआ कि जिस चैन को बनवाने के लिए इतना आग्रह किया गया उसे इस तरह खोलकर सहर्ष वापिस कैसे दे दिया?

(३०)

पुत्र बनाम नियम

मैं एक स्कूल का प्रबन्धक था। मेरा लड़का मास्टर था उसे बी॰ए॰ की परीक्षा देनी थी। परीक्षा देने से पूर्व १८ महीने सर्विस करना जरूरी है और उसके इस अवधि में चार दिन कम होते थे। मैंने उसे साफ कहा—मैं झूठा सर्टिफिकेट नहीं दे सकता। उसने कुछ देर तो देने के लिए कहा अन्त में उसने कहा—मत दीजिए मुझे क्या हानि? हानि तो आपकी होगी। आखिर मैंने रजिस्ट्रार को लिखा। उनका जवाब आया—एक सप्ताह की कमी होने तक आप सर्टिफिकेट दे सकते हैं। मैंने सर्टीफिकेट दिया और उसके साथ उनकी वही तहरीर लगा दी। मुझे सम्बन्ध रिश्ते और पैसे की तुलना में नियमों का खयाल अधिक रखना है।

(३१)

झूठा प्रमाण-पत्र

मैं दो साल से एम॰ ए॰ की परीक्षा न दे सका। फीस जमा कराता रहा। बीमारी आदि के कारण परीक्षा न दे सकने पर सर्टिफिकेट देने से फीस अगले साल के लिए ट्रांसफर की जा सकती है। पर मैं परीक्षा के समय बीमार नहीं था। हां पहले बहुत बीमार रह चुका था। मेरे साथियों ने झूठा प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए कहा। मैंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया।

(१२)
क्रोध पर विजय

मैं अणुव्रत-आन्दोलन के प्रारम्भ से ही अणुव्रती बना हुआ हूँ। मुझमें गुस्से की मात्रा कुछ अधिक थी। प्रधानाध्यापक होने के कारण सैकड़ों छात्र व बीसों अध्यापकों की देखरेख मुझे करनी पड़ती थी। बात-बात में मेरा मिजाज गरम हो जाता था। अब धीरे-धीरे मैं क्रोध की आदत को प्रेम की आदत में बदलता जा रहा हूँ। अब मैं हर समय सावधान रहता हूँ कि गुस्सा आए ही नहीं यदि आ ही जाए तो मन की चहारदीवारी को लाँघ कर जबान तक न पहुँचे। कई बार ऐसा भी हुआ है कि मैंने किसी अपने सहयोगी अध्यापक को कड़ा उलाहना दे दिया। क्रोध शान्त होते ही उसे वापिस बुला कर कड़ी बात कह देने के लिए क्षमा-याचना की। गुस्से की आदत प्रेम में परिणत कर देने का फल यह हुआ कि मेरे प्रति सहयोगियों की जो श्रद्धा आज मैं देख रहा हूँ वह मैंने कभी नहीं देखी थी।

दूसरी बात जो अणुव्रती होने के बाद में आई है, वह निर्भीकता है। आलोचना करने वाले मेरी आलोचना करते हैं, पर मेरे मन में कोई क्षोभ व भय उत्पन्न नहीं होता। मैं सोचता रहता हूँ कि जब अपने रास्ते से चलता हूँ तो लोग कुछ भी कहें उससे मुझे क्या ?

जीवन में और भी अनेक बुराइयाँ हैं। मैं एक-एक बुराई को क्रमशः छोड़ते जाना अपने जीवन का ध्येय मानता हूँ।

(१३)
विश्वासपात्र बन गया

मैं अपने जीवन के विषय में क्या बताऊँ। सैकड़ों व्यक्ति जानते हैं मेरा जीवन किस प्रकार बुराइयों का खजाना था। अणुव्रतियों की जमात में बैठना दूर रहा सामान्य-श्रेणी के लोगों में बैठने योग्य भी नहीं था। आज मैं अणुव्रती हूँ। इसे लेकर भी किसी को शिकायत नहीं है। अणुव्रती होने के बाद बहुत सारे अवसर मेरी परीक्षा के आए। किसी अवसर पर मैंने कमजोरी का परिचय नहीं दिया।

एक दूकानदार के साथ मैंने कुछ कपड़ा खरीदा था। मैंने उसके साथ पहले ही वायदा कर लिया कि इस माल की बिक्री में ब्लेक नहीं किया जाएगा फिर भी मुझे उस पर सन्देह हुआ। मैं स्वयं उसकी दूकान पर बैठ कर माल

कंट्रोल रेट से लोगों को देने लगा। कुछ ही दिनों में लोग मुझे भली भाँति जानने लगे यह अणुव्रती है चोरबाजारी नहीं करता। दुकान पर मेरे जाने से ही ग्राहक निःसन्देह होकर माल लेता। मुझे उस समय ऐसा लगता कि लोगों में सच्चाई के प्रति प्रेम अवश्य है।

(१४)
प्रयत्न द्वारा नियन्त्रण

और तो सभी नियमों का पालन यथाविधि चला। मुँह से गाली निकाल देने की मुझ में भरपूर आदत थी वह भी औरों के लिए नहीं किन्तु घर वालों के लिए ही। हालांकि विधानानुसार जितनी बार गाली मुँह से निकलती उतने ही खाने-पीने के द्रव्य निर्धारित संख्या से घटा देता फिर भी मैं समझता था और समझता हूँ यह अणुव्रती के लिए एक अशोभनीय बात है। इस वर्ष मैं उस आदत को छोड़ देने के लिए प्रयत्नशील रहा। मैं अपने प्रयत्न में सफल भी हुआ। अब यह आदत मेरे में नाम मात्र ही शेष रह गई है।

(१५)
राज्यनियम का पालन

मैं अणुव्रत-आन्दोलन के प्रारम्भ से ही अणुव्रती बना था। अणुव्रती होने के बाद जीवन में मुझे परम शान्ति मिली। आत्मा में व्रत-पालन की इतनी बड़ी निष्ठा रहती है कि प्रत्येक स्थिति में व्रत-पालन का प्रश्न मुख्य और अन्य सब प्रश्न गौण हो जाते हैं।

एक बार लड़के के विवाह का विषय इतना गम्भीर हो गया कि लड़की वालों ने कहला भेजा "आप विवाह में ढील करेंगे तो हम अपनी लड़की का दूसरा सम्बन्ध कर देंगे। मेरे पिताजी भी अणुव्रती हैं। लड़का भी १८ वर्ष से पूर्व विवाह करना नहीं चाहता था। हमने बिना किसी हिचकिचाहट के कहला भेजा—हम अणुव्रती हैं। हमारा नियम है—'राजकीय नियम से अल्पवयस्क कन्या पुत्र आदि का सम्बन्ध नहीं करना' अतः हम नियम को लाँघ कर किसी भी हालत में विवाह नहीं करेंगे। आप कुछ भी करें हम बाध्य नहीं होंगे। आखिर हमारी निर्भयता का परिणाम सुन्दर ही रहा।

(१६)
जीवन-पथ सरल हुआ

अणुव्रती होने के बाद सबसे अनूठा अनुभव तो यह हुआ कि जीवन की

गाड़ी अब अपने आप चलती है। पहले हर छोटे बड़े कार्य के लिए सोचना पड़ता था यह करूं या न करूं ? उदाहरण स्वरूप घर में विवाह आदि का प्रसंग उत्पन्न होते ही सोचना पड़ता था—मर्यादित जीमनवार करूं या अमर्यादित जीमनवार करने के लिए रास्ता खोजूं ? यह एक बहुत बड़ी उलझन हो जाती थी। तबियत कुछ और होती तथा घर वालों का दबाव कुछ दूसरा होता। एक समझौता घर वालों से करना पड़ता तो एक राजकर्मचारियों से। अब इस विषय में तत्काल एक निश्चित उत्तर हो जाता है। सारी स्थिति ही अपने आप तदनुरूप बन जाती है। अणुव्रत-आन्दोलन के नियम नहीं करने के कार्यों की एक तालिका है। तात्पर्य है कि सारा जीवन ही एक निश्चित रूप रेखा में आ जाता है।

अणुव्रती होने से पूर्व मैं अपने में कुछ क्रोध की मात्रा अधिक पाता था। अब मैंने इस विषय में अपने आपको बहुत कुछ संभाल लिया है।

(१७)

आदर्श सामाजिक जीवन

अणुव्रती हो जाने से कदम-कदम पर अपने आपको संभाल कर चलना पड़ता है, यह मुझे हमेशा अनुभव होता है। मैं यह भी निःसन्देह मानता हूँ कि अणुव्रती में आत्मबल के साथ-साथ पाप भीरुता भी पूर्णतया बढ़ जाती है। बहुत वर्षों से मैं सार्वजनिक प्रवृत्तियों में भाग लेता हूं। वहाँ विचार भेद का संघर्ष सामने आता ही रहता है, किन्तु मत भेद के साथ मन-भेद न हो इसी आदर्श पर मैं अपने को चलाने का प्रयत्न करता हूं।

(१८)

पारिवारिक सहयोग से उत्साह

अणुव्रती होने के पश्चात् प्रकृति की प्रवृत्ति में पर्याप्त अन्तर आया है। त्याग भावना की भी बराबर वृद्धि होती है। आत्मालोचन व आत्म-मनन में काफी समय लगाता हूँ।

पौत्र पौत्री के विवाह में जीमनवार को लेकर कुछ दुविधा उत्पन्न हुई। कई बार घर वाले भी जीमनवार में सम्मिलित होने से वंचित रहे कई बार घर पर जमाई लोग जीमनवार में सम्मिलित हुए, परन्तु लड़कियाँ सम्मिलित न हो सकीं। कई बार जमाइयों को भी कहना देना पड़ा "आप इतने ही व्यक्ति जीमनवार में सम्मिलित हों।" पारिवारिक जनों का सहयोग होने से प्राय

सभी ने ठीक ही माना और श्री हर कार्यों में पारिवारिक जनों का प्रशंसनीय सहयोग रहता है। इससे मुझे अणुव्रत के नियम पालने में बड़ा बल मिलता है। अणुव्रती होने के बाद व्यवसाय भी काफी सीमित कर देना पड़ा।

(३९)
कठिनाई स्वतः दूर

जीमनवार के नियम को लेकर कुछ कठिनाइयाँ आईं, पर अपने नियमों पर डटे रहने से सारी कठिनाइयाँ हवा हो गईं। लड़की के विवाह के अवसर पर मैंने वर-पक्ष को अपनी सारी स्थिति समझाई। उन्होंने भी मेरे नियमों में बाधा पड़े ऐसा आग्रह नहीं रखा और भी सारी स्थितियाँ अनुकूल हो गईं।

(४०)
विषम संघर्ष

लगभग एक वर्ष पूर्व मैं अणुव्रती बना था। इस वर्ष मुझे एक विशेष अनुभव हुआ। परिवार में मेरे छोटे भाई की शादी का सिलसिला उठा। निर्धारित राजकीय नियम के अनुसार वह अल्पवयस्क था। वह स्वयं भी सुधारवादी था। मैंने तथा मेरे साथियों ने भी वयस्क होने से पूर्व विवाह न करने की सलाह दी और उसको तत्सम्बन्धी अणुव्रत-आन्दोलन का नियम भी बताया। फलतः उसने घर वालों को विवाह करने से स्पष्टतः इन्कार कर दिया। बस फिर क्या था घर वालों की हम दोनों से लड़ाई छिड़ गई। सब धामोस मुझ पर पड़ा। सब कहने लगे—कुबुद्धि फैलाने वाला यही है, यह चाहे तो बच्चे का विवाह अब भी फिरा सकता है। इतने से ही अन्त न हुआ बात और भी आगे बढ़ गई। फलितरूप मुझसा सारा गाँव तथा सम्बन्धी भी मेरे पीछे पड़ गए। घर वालों से लेकर गाँव भर ने मेरे साथ असहयोग कर दिया। परिणाम स्वरूप मेरी पढ़ाई पर बहुत धक्का लगा। अणुव्रती होने के नाते सब कुछ मैंने शान्तिपूर्वक सहा और अपने आदर्श पर अटल रहा।

(४१)
भावना से ऊँचा कर्तव्य

अणुव्रती होने के बाद मुझे अपूर्व मानसिक सन्तोष मिला। प्रकृति में भी काफी सुधार पाती हूँ। जीमनवार के नियम में कुछ अड़चन आई, पर मैं सफलतापूर्वक पार कर गई। मेरे छोटे भाई का विवाह था। ऐसे अवसर पर

पिता के घर मोजनार्थ न जाना एक समस्या थी पर मैं अणुव्रती होने का ध्यान रखती हूँ अपने पीहर भी नियम निषिद्ध जीमनवार में शामिल नहीं हुई। अन्य व्रतों के पालन में भी यथासम्भव सावधानी रखती हूँ।

(४२)

आदर्श पथ असम्भव नहीं

लोग कहते हैं—आज के जमाने में आदर्श पर चलना दुस्साध्य ही नहीं असम्भव है। मैं कहता हूँ—आदर्श पर चलने की हमारे में हिम्मत नहीं होती इसलिए असम्भव है। हम यदि आदर्श पर मरना सीखें तो हमारी दुविधाएं अपने आप मर जाएंगी। मैंने कुछ दिनों पहले एक पेपर मिल चलाने का विचार किया। मिल चलाने में लगभग १० हजार रुपयों का व्यय सम्भावित था। असत्य बोलकर या ब्लैक से कोई भी काम न करने और न करवाने की मेरी शपथ थी। इस प्रकार की शपथ लेकर मिल चलाने की बात सोचनी और वह भी आज के जमाने में लोगों के विचार से एक आकाशी उड़ान थी। मैं पूरे आत्म-बल के साथ काम में जुट गया। दिक्कतों पर दिक्कतें आने लगीं। इधर जोरों से काम शुरू हुआ इधर बाजार से सीमेन्ट मिलनी बन्द हो गई। बाजार में सीमेंट की कमी नहीं थी। अन्दाजा लगाया गया उस समय सीमेंट की १६००० बोरियां दुकानदारों के पास थीं। बिना ब्लैक दिए एक बोरी के भी दर्शन नहीं होते थे। काम ठप्प हो गया। हर्जा होने लगा। दलाल लोग कहने लगे—जितना हर्जा आपके काम ठप्प कर देने में है उतना ब्लैक देकर सीमेंट खरीदने में नहीं। हम कम से कम ब्लैक देकर आपको माल दिलवाएंगे। मैंने कहा—सवाल हर्जाने का नहीं आदर्श का है। मैं अपने आदर्श के लिए सब कुछ त्याग सकता हूं। ज्यादा जोर देने पर मैंने दलालों से कह दिया—बाबा! तुम क्यों करते हैं सीमेंट मुझे खरीदनी है या आपको ?

सोचा राजकर्मचारियों से विशेष सहयोग लिया जाए, पर वहां ब्लैक की बहन रिश्वत आगे खड़ी थी। कुछ दिनों बाद अपने आप एक प्रसंग बना और मनचाही सीमेंट मुझको मिली वह भी इस सुविधा के पीछे कि सारी कसर पूरी हो गई। इसी प्रकार लोहा बिजली ईंट, कायला आदि को लेकर विभिन्न प्रकार की दिक्कतें सामने आईं और आती रहती हैं। कुछ मकानों की दीवारें खड़ी हैं। सामग्री के अभाव में छत नहीं बन पाई। आज तक जितनी समस्याएं आईं उनका अन्त किसी विशेष अच्छाई के साथ हुआ। अब ऐसा लगता है कि सारी समस्याएं मेरे आदर्श की परीक्षा के लिए व अच्छाई

के लिए आई थीं। जो समस्याएं सामने हैं वे भी किसी अच्छाई के लिए आई हैं।

(४३)

भटकने के बाद सफलता

मैं अणुव्रत आन्दोलन के उद्घाटन समारोह के अवसर पर ही अणुव्रती बना था। कुछ दिन बाद मैं नौकरी व किसी व्यवसाय की खोज में कलकत्ता गया। एक जूट व्यापारी से नौकरी के लिए बातचीत की। वह नौकरी देना चाहता था। वेतन की कोई असमंजसता नहीं थी। मैंने स्थिति को पहले ही स्पष्ट कर देना उचित समझा। मैंने कहा— मैं अणुव्रती हूं आप भी अपने काम पर किसी भले आदमी को रखना चाहते हैं जिससे धोखा न हो पर मैं यह स्पष्ट कर देता हूँ कि मैं न तो आपको ही धोखा दूंगा और न दूसरों को ही। ब्लैक मिलावट झूठा तोलमाप आदि मैं कुछ नहीं करूंगा। सुनते ही सेठ का माथा ठनका। वे मेरी ओर देखकर तथा कुछ सोचकर बोले—"अच्छा आपको बही खाते का काम दे दिया जाएगा। मैंने कहा— 'यदि आप झूठा लिखवाना चाहेंगे तो मैं ।" सेठजी चमक कर बोले— 'आप तो कुछ नहीं कर सकेंगे फिर क्या दूकान पर बैठा कर मैं आपकी पूजा करूंगा? मैंने कहा— 'पूजा करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। असत्य से बचाकर मेरा आप चाहे जो उपयोग कर सकते हैं।" पर वास्तव में मैं उनके लिए अनुपयोगी ही था। वहां से निराश होते ही मैं एक कपड़े के व्यापारी से जा मिला। वहाँ भी नहीं पटना पटी। तत्पश्चात् मैंने काशीपुर में जूट की दलाली करने की सोची। वहां भी देखा—मुझ जैसे सब एक साथ बसते हैं। इसी प्रकार और भी दो चार प्रकार के धंधों में हाथ डाला किन्तु सब ओर निराशा ही निराशा मिली। मैं समझता रहा कि यह मेरे अणुव्रतीपन की कसौटी है। मुझे इस पर खरा ही उतरना है। आखिर दो मास की बेकारी के बाद एक धन्धा मेरे हाथ आया और चार महीने तक मैंने उसे चलाया। छः महीनों में साधारणतया जो मेरी आय होती उससे दुगुनी आय शेष चार महीनों में हो गई। तत्पश्चात् मैं अपने घर आ गया। उसके बाद से मेरी आजीविका व्यवस्थित रूप से चलती रही। मुझे तो अब पूरा भरोसा हो गया है कि आत्म निष्ठा के साथ जो आदर्श पर डटा रहता है, उसकी सब अड़चनें अपने आप दूर हो जाती हैं।

(४४)

मिथ्या धारणा का अन्त

मैंने गत १० वर्ष जूट का काम किया। मैं जानता था कि जूट के

काम में पांच प्रकार की बुराइयां आमतौर से चलती हैं। वजन बढ़ाने के लिए पानी देना, तोल-माप में झूठ चलाना, क्वालिटी में हेरफेर करना, झूठा मजेला खड़ा करना, माल कम तोल कर बिल पूरा बनाना। काम चालू करने के पहले ही मैंने संकल्प कर लिया था कि मुझे इन पांचों बुराइयों से बचकर चलना है। लगभग १२ महीने तक मैं अच्छी तरह काम करता रहा वह भी अच्छी मात्रा में। मैंने अपना संकल्प अच्छी तरह से निभाया। उक्त बुराइयों में से किसी एक का भी मैंने आचरण किया हो ऐसा मुझे याद नहीं। उस व्यवसाय में मैंने आर्थिक लाभ भी अच्छा उठाया। अब मेरा तो यह दृढ़ विश्वास बन चुका है कि लोग जो यह कहा करते हैं कि जूट का काम इन बुराइयों से बचकर कोई चला ही नहीं सकता यह नितान्त मिथ्या है।

(४५)

भय मिट गया

अणुव्रती होने का सबसे बड़ा लाभ मुझे यह मिला कि मैं निर्भय हो गया। व्यवसाय व विवाह-जीमनवार आदि अनेक बातों को लेकर राजकर्मचारियों का भय हमेशा रखना पड़ता था किन्तु अब किसी का कोई भय मेरे पास तक नहीं आता। चालानी का काम है। प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ का माल चालान करते हैं। ब्लैक से खरीदने या बेचने का सम्बन्ध ही नहीं रखते। हम किसी से क्यों डरें?

(४६)

व्यवसाय घटा, शान्ति बढ़ी

अणुव्रती होने के बाद चालू व्यवसाय में मुझे हेर-फेर करना पड़ा। क्योंकि व्रतों को सुरक्षित रखते हुए उसमें चल सकना कठिन ही नहीं असम्भव था। दूसरे व्यवसाय से मेरी इन्कम बहुत ही कम रह गई है तो भी व्रत-पालन का उत्साह बढ़ता ही जा रहा है। अणुव्रती होने के पश्चात् मैं अपने जीवन में अपूर्व शान्ति का अनुभव करता हूँ।

(४७)

विश्वास और प्रतिष्ठा में वृद्धि

अणुव्रती होने के बाद जिस डिपार्टमेन्ट में मैं काम (सर्विस) करता हूँ मेरी प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है। छोटे-बड़े सभी कर्मचारी हर काम में मेरा विश्वास करने लगे हैं। धीरे-धीरे मुझे ऐसा मानते जा रहे हैं—ये अणुव्रती हैं,

इनका जीवन ऊँचा है। बड़े कर्मचारियों से मैं जब भी छुट्टी लेना चाहता हूँ व विश्वासपूर्वक मुझे आवश्यकतानुसार छुट्टी दे देते हैं।

(४८)

न्यायालय से छुटकारा

मैं अणुव्रती होकर घर गया और घर वालों से बोला कि मैं अणुव्रती बन गया हूँ अतः अपने व्यवसाय में चोरी नहीं होनी चाहिए। यदि यह बन्द नहीं हुई तो मुझे पृथक व्यवसाय करना पड़ेगा। समझाने बुझाने से उन्होंने मेरी बात मान ली और ब्लैक विषयक नियम मेरे कुल सहज बन गया। मुझे इसकी भी बहुत खुशी हुई कि मेरे कारण घर वाले भी इस बुराई से बचे।

थोड़े ही दिनों में यह बात प्रसिद्ध हो गई कि इनकी दुकान पर ब्लैक नहीं होता। हमारी दुकान को लोग प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगे। इसका सुन्दर परिणाम यह हुआ कि मेरे अणुव्रती होने से पहले ही एक ब्लैक का मामला मेरी फर्म के साथ चल रहा था। न्यायाधीश ने यह मानते हुए कि सब लोग यही मानते हैं कि इनके यहाँ ब्लैक नहीं होता मामला खारिज कर दिया।

(४९)

स्वयं सुधरा, भाई को सुधारा

मुझे अणुव्रत-साधना में आए हुए १८ महीने हो गए। इन महीनों में मैंने अपूर्व शान्ति और सुख का अनुभव किया। बहुत पहले का मेरा जीवन नाना व्यसन और तामसिक प्रवृत्तियों से परिपूर्ण था। आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी की सत्संगति और सत् शिक्षा के परिणाम-स्वरूप मैं एक-एक बुराई को छोड़ता हुआ अणुव्रती होने के स्तर पर पहुँचा। जीवन-सुधार की यह प्रक्रिया मेरे लिए सर्वथा आनन्दप्रद रहती है।

अपने सुधार के अतिरिक्त दूसरा कार्य जो मेरे हाथों से हुआ वह यह है कि मेरा छोटा भाई नाना बुराइयों में फंसा था। उसमें भी सम्भावित बुराइयों की परिपूर्णता थी। मेरे सामने यह एक बहुत बड़ी समस्या थी। यदि मैं धैर्य और शान्ति से काम न लेता तो उसका जीवन बेकार हो जाता और मुझे भी जीवन भर के लिए एक दुःख होता किन्तु मैं उसकी भूलों को क्षम्य मानता गया। भाई आज अत्यन्त सुशील और आज्ञाकारी है। प्रसंगवश वह स्वयं भी यही कहता है—भाई जी! आपने ही मेरा जीवन बनाया है। अस्तु, बहुत लोग कहते हैं—अणुव्रती होने के पश्चात् व्यक्ति व्यवसाय में आगे नहीं

जा सकता। पर मेरा तो अनुभव है व्यवसाय में अणुव्रती होने के बाद जो मुझे सफलता मिली है, वह जीवन में मुझे पहले नहीं मिली थी।

(५०)

रोग के पंजे से मुक्ति

"मृतक के पीछे प्रथा रूप से न रोना" यह नियम मेरे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। अणुव्रती होने के पूर्व जब एक निकट सम्बन्धी की मृत्यु हुई, प्रथा के अनुसार मैं बहुत रोई। परिणाम यह हुआ कि मैं बीमार हो गई और महीनों तक मुझे कष्ट पाना पड़ा। अणुव्रती होने के पश्चात् भी एक सम्बन्धी की मृत्यु हुई। मैं प्रथा को निभाने के लिए रोई नहीं। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ, पर उससे मेरे त्याग को निभाने का आत्मबल कम नहीं। परिणामतः मैं आर्तध्यान से भी बची और आने वाली बीमारी से भी।

(५१)

सत्य का मूल्य

एक सच्चाई क्लर्क होने के नाते सम्बन्धित अफसर ने मुझे बुलाकर कहा—स्टॉक में सीमेंट कम है और मांग ज्यादा है। जान पहचान के कुछ व्यक्तियों को सीमेंट दिलाना है। अतः आप अपनी रिपोर्ट में अधिकांश की दरख्वास्त पर स्टॉक में सीमेंट न होने का लिख देना। मैंने कहा—श्रीमन्! माफ करें, मैं गलत रिपोर्ट नहीं दे सकता। मेरे लिए सब समान हैं। आपको ऐसा ही करना है तो मुझसे रिपोर्ट न मांगें। जिन्हें दिलाना चाहें उनकी दरख्वास्त पर ऑर्डर लिख दें मैं परमिट बना दूंगा। उन पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि मेरे द्वारा पेश किए गए कागजों पर वे बिना संशय किए हस्ताक्षर कर देते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी तो दूसरे विभागों के कागजात मेरे पास भेज कर कह देते हैं कि इन पर ऑर्डर लिख देना मैं हस्ताक्षर कर दूंगा।

सत्य में काफी शक्ति है, यह मेरा अनुभव है।

(५२)

आन्दोलन का हार्दिक स्वागत

सामाजिक स्थिति नियमों के प्रतिकूल है। तो भी लगता है, थोड़े-से अणुव्रतियों का उस पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। कई जगह होने वाले बृहद् भोजनवारों में निकट के सम्बन्धी अणुव्रतियों को शामिल करने के लिए ही यह नियमबद्ध बन जाता है अर्थात् दो सौ, चार सौ आदमियों की जगह

सिर्फ २५, ३० या जितना राजकीय नियम हो उतने ही आदमियों का वह मर्यादित हो जाता है। मैं अणुव्रती होने के कारण बहुत से जीमनवारों में सम्मिलित नहीं हो सकता हूँ। जहाँ लोगों ने मेरे उपस्थित न होने का कारण जाना तो उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन का हार्दिक स्वागत किया।

(५३)

झगड़ा शान्त

जब आचार्यश्री तुलसी का हमारे शहर में आना हुआ मैंने अणुव्रतों की साधना में नाम लिखाया। इसको लेकर ससुराल वालों ने बहुत कुछ कहा। कई दिन झगड़ा भी चला। पर मैंने सब कुछ शान्तिपूर्वक सुना और सहा। अगले वर्ष मैं साधना से त्याग में आ गई। मुझे खुशी है कि एक साल की इस अवधि के बाद अब आनन्द ही आनन्द है। सारा झगड़ा शान्त हो गया है।

(५४)

प्रतिष्ठा

एक मामले में साक्षी देने के लिए मैं अदालत में गया और अपनी साक्षी दी। न्यायाधीश ने जाना कि यह अणुव्रती है इससे मेरी साक्षी को सही मान उन्होंने उसी के मुताबिक फैसला दिया। अणुव्रतों को ग्रहण करने से समाज में अणुव्रतियों की प्रतिष्ठा बढ़ी है और आगे भी बढ़ेगी। अणुव्रतियों को भी अपना व्यवहार प्रतिष्ठा जैसा रखना चाहिए, इसीसे वह स्थिर बनेगी।

(५५)

कोई अछूत नहीं

लोग हरिजनों को अछूत समझकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं। मैं एकबार राजस्थान से रवाना हुआ। मार्गस्थ एक स्टेशन से १५, २० हरिजन महिलाएँ व पुरुष डिब्बे में घुसे। यहाँ तक नौबत आई कि वे मेरे ऊपर तक आ गए। एक बार तो क्रोध-सा आया पर ज्योंही अणुव्रतों का खयाल आया वह जाता रहा।

(५६)

आत्म-बल की प्राप्ति

अणुव्रतों की साधना स्वीकार करने के बाद सामाजिक जीवन में कुछ एक कठिनाइयाँ अनुभव हुईं। लेकिन अपनी प्रतिज्ञाओं पर मैं दृढ़ रहा। इसका फल मुझे अच्छा मिला। मेरे एक अति निकट सम्बन्धी ने मेरा नाम अपने एक मामले में गवाह के रूप में लिखवाना चाहा। मैंने कहा—नाम

सिखाना हो तो सिखाओ। इसमें मुझे कोई एतराज नहीं है लेकिन मैं अणुव्रती होकर नियमानुसार असत्य साक्षी नहीं दूंगा। सत्य साक्षी से उसका काम होने वाला नहीं था। अतः उसने मेरे पर बड़ा दबाव डाला। परन्तु मैं मेरे नियमों में दृढ़ रहा। इससे कुछ कुटुम्बी नाराज हुए पर मुझे बड़ा आत्म बल मिला।

(९७)

आमदनी घटी, पर आत्म-तुष्टि बढ़ी

मैं दलाली करता हूं। अणुव्रती होने से पहले मैं बहुत आसानी से सौदे में कटौती करता था परन्तु आवना स्वीकार करने के बाद मैंने एक भी दिन, एक भी बार कटौती नहीं की इससे मेरी आमदनी जरूर घटी है पर आत्म-तुष्टि बढ़ी है। वह इसलिए कि मैं एक आदर्श को निभा रहा हूं।

(९८)

कष्ट से बाल-बाल बचे

अणुव्रती होने व नियमों पर चलने से मैं एक बहुत बड़े सम्भावित कष्ट से बचा। लगभग २ वर्ष पूर्व मेरे पिताजी का देहावसान हुआ। हमारी समाज-परम्परा के अनुसार सहस्रों आदमियों का वृहद् जीमनवार करना आवश्यक रहता था। अणुव्रत नियमों में वृहद् जीमनवार व राज्य नियम से निषिद्ध जीमनवार न करने का नियम है। मैं यह भी जानता था ऐसे अवसर पर बिरादरी भोज न करने से समाज में नाना प्रकार की कटु एवं आक्षेपात्मक आलोचनाएँ होंगी। मैंने अपनी समस्या आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के सामने रखी। उनके मुख से ऐसे शब्द निकले—"नियम-पालन में आलोचना की परवाह नहीं हुआ करती। इससे मेरा साहस बढ़ा। मैंने अपने भाइयों के साथ सलाह करके नियम निषिद्ध जीमनवार न करने की घोषणा कर दी और समाज-व्यवहार के नाते पिताजी की स्मृति में एक लाख रुपए का विभिन्न सार्वजनिक हितों के लिए दान बोल दिया। इस घटना के अनन्तर ही मुझे विश्वस्त रूप से पता चला कि स्थानीय राज्याधिकारियों ने जीमनवार में हमारे पर कानूनी कार्यवाही करने की सम्पूर्ण तैयारी कर रखी थी पर यह सब सुनकर उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। अस्तु अणुव्रत के नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने से उस कष्ट से हम सब बाल बाल बच गए।

(५९)

आनन्द का अनुभव

अणुव्रती होने के पश्चात् मैं अपने जीवन में सब प्रकार से आनन्द व उल्लास का अनुभव करता हूँ। तम्बाकू व भांग का मैं २० वर्षों से व्यसनी था। अब मैं दोनों वस्तुओं का व्यवहार पूर्णतया छोड़ चुका हूँ। पान खाने की आदत भी बहुत बढ़ी हुई थी। प्रतिदिन १० १५ पान मुझे जरूरी होते थे। पर अब भावना करते करते मैंने इतना संयम तो कर ही लिया है कि एक या दो पान से अधिक कभी नहीं खाता। मैं इन सब बातों को याद करता हूँ तो मेरे हृदय में एक नई स्फूर्ति आती है और अपने आत्म-बल पर एक भरोसा बंधता है।

अणुव्रती बनने के पश्चात् रहस्यमयी बात तो यह हुई कि विगत दो एक वर्षों से मुझे १० रुपए मासिक तनख्वाह मिल रही थी। महीने भाव से गुजारा चलता था। अणुव्रत-ग्रहण करने के तीसरे ही दिन मेरे सेठ ने मेरी तनख्वाह अनायास ही २०० रुपए मासिक कर दी।

(६०)

आदर्श पर अटल

अणुव्रती बनने के बाद बाजार तथा ग्राहकों का विश्वास मेरे प्रति बहुत बढ़ा। यहाँ तक कि बहुत सारे ग्राहक मुझसे भाव पूछते ही नहीं जो वस्तु लेने की होती है ले लेते हैं और मेरे कहने के अनुसार बिना किसी नानु नच के दाम दे देते हैं।

पिछले दिनों व्रतों की कसौटी का भी एक अवसर आया। इन्कम टैक्स के विषय को लेकर झूठ-मूठ मामला बन गया। केवल २५ रुपए की घूस दे देने में मामला निपटाया भी जा सकता था। विशिष्ट अणुव्रती के आदर्श को सामने रख मैंने ऐसा चाहा नहीं। मैं जानता था कि ऐसा करने से झंझट बढ़ेगा और आगे चलकर फैसला भी सरल ही होगा ऐसी बात नहीं है। आखिर यही हुआ कि लेन-देन का मुनाफा मात्र १००) रुपए का झूठा टैक्स मेरे से ले लिया। मुझे इसका कष्ट नहीं। मैं अपने आदर्श पर टिक सका, इसका हर्ष है।

(६१)

अणुव्रत जीवन में सुखानुभूति

मैं एक राजकर्मचारी हूँ। मेरे सब साथियों के मेरे जैसे विचार नहीं हो सकते। मुझे इन तीन चार वर्षों के समय में अनेक अधिकारियों, साथियों

एवं अधीनस्थ कर्मचारियों से काम पड़ा है। राजकर्मचारियों में रिश्वत की बुराई लोक प्रसिद्ध है। यद्यपि बहुत से सज्जन पुरुष भी हैं, जो इस बुराई से दूर हैं और बहुतों ने अपना रवया बदल भी लिया है। मैं उनकी उपेक्षा नहीं करता और न अपने आपके लिए गर्व ही करता हूँ। तथापि सच्ची बात यह है कि रिश्वत नहीं लेने वालों को सबका सामना करना पड़ता है। उनके साथी तथा अधीनस्थ और सम्पर्क में आने वाले भोले भाले तथा धूर्त भी जो कुछ रिश्वत देकर या दिला कर स्वयं अधिकाधिक लाभ उठाते हैं—उनके सामने प्रलोभन रखते हैं जिनको ठुकराने से उनके साथ कटुता होती है और वे लोग किसी दूसरे के द्वारा अपना इष्ट उन्हीं साधनों द्वारा पूरा कर लेते हैं तब ताने मारते हैं—आप धर्मात्मा बने रहें हमने तो काम कर ही लिया। आपके बजाय अमुक ने धन और यश दोनों प्राप्त कर लिया है। ऐसे मनुष्य कुछ वैसे ही अधिकारियों के कृपा-पात्र हो जाते हैं मौसेरे भाई बन जाते हैं और ऐसे दिलचस्प कार्य वे ले लेते हैं। समाज में भी उनकी पूछ व प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।

लेकिन इतना होते हुए भी मुझे अनैतिक आय को ठुकरा कर शुद्ध आय पर जीवन निर्वाह करने में जो आत्मीय आनन्द मिला है वह दूसरी प्रकार से प्राप्त करना लगभग असम्भव था। अनैतिक आय से सदा भय लगता रहता है कहीं मेरी शिकायत न हो जाए, अफसर को मालूम न हो जाए आदि। वहां नैतिक नियम निभाने से निर्भीकता रहती है। मुझे अपने लिए आज कोई खतरा नहीं लगता।

अनैतिक आय से घर का फिजूल खर्च बढ़ता है विलासिता बढ़ती है नई नई आवश्यकताएं पैदा होती हैं और उनकी पूर्ति में इतना अधिक व्यय हो जाता है जो शुद्ध और ऊपरी आय से भी बढ़ जाता है। कर्जदारी हो वहां अनैतिक आय का परित्याग कर शुद्ध आय पर जीवन बिताने से बहुत-सी जरूरतें अपने आप कम हो गई हैं और जीवन संयम की ओर मुड़ चला है। इसके अतिरिक्त मेरे इस व्यवहार का मेरे पुत्रों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। यह निश्चित बात है कि शुद्ध आय पर मितव्ययता के साथ घर का कारोबार चलाने से संतति भी उसी का अनुकरण करेगी। मेरे यहाँ पूर्व संचित-धन के अभाव तथा अल्प आय के होते हुए भी मेरे तीनों पुत्र कॉलेज में शिक्षा ले रहे हैं और वे अपना खर्च ट्यूशन छात्रवृत्ति या अन्य कार्यों द्वारा स्वयं चला रहे हैं। यह सादगी का ही प्रभाव है। जहाँ मैं सुनता हूँ धनी और अधिक आय वाले एक या दो पुत्रों को कॉलेज में पढ़ाने पर भी अर्थ-कष्ट की

शिकायत करते हैं। यह भाव मेरे सामने नहीं है।

मुझे अपने शुद्ध उद्देश्य और दृढ़-प्रतिज्ञा-पालन से प्रेरणा मिलती है और अणुव्रत के भावों की सुखानुभूति होती है।

(९२)
आत्म-सुख की झांकी

अणुव्रती बनने के बाद मुझे अपने घर में अणुव्रत-शासन के सुखद एवं सफल प्रयोगों से प्रेरणा मिली है। अणुव्रत बुरी प्रवृत्तियों के त्याग और आत्म सन्तोष की भावना का प्रेरक है। प्रायः पुरुषों को बुरी आदत की ओर ले जाने में स्त्रियों का हाथ भी रहता है। नित्य नए-नए भड़कीले वस्त्र और गहनों की अनावश्यक मांगें गृहपति को विवश कर कुमार्ग की ओर ले जाती हैं। यदि नारी अपना जीवन संयमी बना ले तो उसका प्रभाव उसकी सन्तान और उसके सारे घर के लोगों पर पड़ता है। उससे पुरुष भी दुष्प्रवृत्तियों से बच जाता है। नारी के संयमी जीवन से घर का वातावरण भी सुन्दर बन जाता है अणुव्रत की साधना के बाद यह मेरी दृढ़ धारणा हो गई है।

अणुव्रती होने से मुझे अपने घर में अल्प आय के कारण कई प्रकार के फिजूल खर्चों को कम करना पड़ा है मगर उससे मुझे दुःख नहीं हुआ है बल्कि एक आत्म-सुख की झांकी मिली है।

(९३)
कुप्रथाओं से संघर्ष

सामाजिक कुप्रथाओं से समय-समय पर संघर्ष करना पड़ा। व्रत-ग्रहण के पश्चात् प्रथा रूप से मृतक के पीछे रोने के रिवाज को नहीं निभाने से मैं अपने क्षेत्र के स्त्री-समाज में आलोचना का विषय बन गई हूं। वे बहुत ही चख चख करती हैं। मैं तो मानती हूं कि इस प्रकार के रोने में समय और शक्ति का दुरुपयोग करना है। इसी प्रकार दहेज मायरा मुकलावा की सामग्री नहीं देखने जाने व नहीं दिखाने पर भी बहिनें टीका-टिप्पणियां करती हैं। मोसर व बड़े जीमनवारों में नहीं जाने पर तो बड़े ताने कसे जाते हैं। लेकिन अणुव्रती के नाते किसी पर कोई दुर्भावना नहीं होती। हंस-हंस कर सुन लेने में ही सन्तोष का अनुभव होता है।

बीस पच्चीस वर्ष पहले मैंने पढ़ने लिखने का अभ्यास शुरू किया था तो मेरी सहेलियां हंसती और मजाक उड़ाती थीं। इसके कारण मैं झिझक गई

और मेरी प्रगति वहीं बन्द हो गई। लेकिन आज मैं देखती हूँ कि वही बहिनें अपनी पुत्रियों को पढ़ाना जरूरी समझ कर स्कूल भेज रही हैं। इसी तरह आलोचना करने वाली बहिनें आज नहीं तो कुछ दिनों बाद अणुव्रत के आदर्श को ग्रहण करेंगी।

(६४)
नियम-निष्ठ रहने का फल

मैं सरदारशहर से अणुव्रती बनने की भावना लेकर घर लौटा। मैंने गाँव आकर अपने भागीदार के सामने अणुव्रती बनने की भावना व्यक्त की। उसने कहा—भला यह भी कोई सम्भव बात है? आजकल के युग में व्यापार तो करो पर कालाबाजार और राज्य निषिद्ध व्यापार मत करो? मैं तो इससे सहमत नहीं हो सकता। मैंने सोचा—क्या किया जाए? आत्मा इस बुराई में फंसने की स्वीकृति नहीं देती। मेरे सामने बड़ी विकट समस्या खड़ी हो गई। आखिर मैं अपनी आत्मा की बात नहीं टाल सका और अन्य प्रान्तों में जो माल चोरी से भेजा करता था उससे बचने का निर्णय कर लिया। इस निश्चय में पार्टनर को समझाने की समस्या भी मेरे सामने थी। मेरे दृढ़ निश्चय को सुनकर वह बोला—अगर तुम ऐसा करना नहीं चाहते तो हम तुमसे अलग होकर क्या करेंगे? आखिर सत्य तो वही है जो तुम कहते हो। चलो हम भी अब चोरी से माल नहीं भेजेंगे। मैंने सोचा—मनुष्य में आत्म विश्वास होना चाहिए, फिर उसके समक्ष कोई समस्या नहीं रह जाती।

अब व्यापार के लिए अपना गाँव छोड़ देना पड़ा और दूसरे गाँव में जहाँ से अन्य प्रान्त में माल भेजने पर प्रतिबन्ध नहीं था अपना व्यापार करने लगा। इधर चौथे चार दिन के बाद मुझे खबर मिली है कि हमारे गाँव के जो लोग चोरी से दूसरे प्रान्त में माल भेजा करते थे वे पकड़ गए। अब मेरी व्रत निष्ठा बढ़ने लगी। आज जब कि काला-बाजार भी उठ गया है मुझे अपने व्यापार में कोई अनैतिकता नहीं करनी पड़ती। नियम-निष्ठ रह कर मैंने पाया कि आर्थिक-दृष्टि से भी मेरा स्तर पहले से कई गुना अच्छा है। गाँव के लोगों का मेरे पर विश्वास है। लगता है कि आज अणुव्रतों के बिना जीवन सूना है। आज मुझे अपने जीवन में इतना आनन्द महसूस होता है कि मैं उसे पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर सकता। अपने आसपास भी मैंने कई लोगों को अणुव्रत-पालन करने की प्रेरणा देकर उन्हें इस ओर गतिमान् बनाया है। अब तो मैं विशिष्ट अणुव्रती की श्रेणी में आना चाहूँगा।

(६२)

सचाई की राह पर

मेरे पास एक करोड़पति सेठ का मुकदमा आया और मैंने उसे ले लिया। मुकदमे में दोनों ओर सम्बन्धी ही थे। मैंने सोचा—अपने परिचित मित्र हैं। न्यायालय में खड़े होकर व्यर्थ ही तंग होंगे अतः दोनों को समझा दिया जाए तो ठीक रहेगा। मैंने प्रयास किया और दोनों आदमी समझ गए। उन्होंने मुकदमा वापिस ले लिया। उन्होंने मेरी वकालत के १५०० रुपए दिए और बड़ी खुशी के साथ अपने घर चले गए। इधर कई दिनों के बाद उनका एक पत्र मेरे पास आया जिसमें उन्होंने लिखा था— 'आप बड़े ईमानदार आदमी हैं यही समझकर हमने आपको अपना वकील बनाया था और वास्तव में ही आपने अपनी सच्चाई का परिचय देकर हमारी भलाई की। इसमें हम दोनों को ही बड़ा फायदा हुआ। पर एक बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूँ वह यह है कि आपने मेरा मुकदमा लड़ने के लिए जो रुपए लिए थे उतनी आपको मेहनत नहीं करनी पड़ी। चूँकि हमने मुकदमा वापिस ले लिया था, अतः मुझे अपने रुपयों में से कुछ रुपए वापिस मिल जाने चाहिए।

मैंने पत्र पढ़ा और उसका उत्तर दिया—आपने लिखा कि मुझे मुकदमा अधिक नहीं लड़ना पड़ा अतः मैं आपके कुछ रुपए वापिस कर दूँ। सोचता हूँ कि एक वकील की दृष्टि से तो अगर मैं आपका रुपए न दूँ तो आप मेरा कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि आप तो मुझे अपनी फीस दे चुके थे। अब जब मुकदमा थोड़ा ही चला और जल्दी उठा लिया गया तो आप मुझसे रुपए वापिस माँगते हैं, पर जरा सोचिए कि अगर मुकदमा अधिक भी चलता तो मैं आपसे अधिक फीस माँगने वाला नहीं था। मैंने आपसे पहले ही कहा था कि मैं मित्र के नाते आपका मुकदमा मुफ्त भी लड़ सकता हूँ पर आपने ही आग्रह किया था कि इतने रुपए तो मुझे ले ही लेने चाहिएं। खैर, अब आप रुपए माँग रहे हैं। कारण कुछ भी हो मैं ये रुपए आपको वापिस भेजता हूँ। इस पर भी मैं आपसे नाराज नहीं हूँ। अगर इनमें से आप कुछ भी रुपए देना चाहें तो मुझे उतने न लेने में कोई संकोच नहीं होगा और कुछ नहीं भी दें तो भी कोई नाराजगी नहीं होगी।

कुछ ही दिनों में उनका उत्तर आया जिसमें उन्होंने लिखा था—आप में मेरा सचमुच बड़ा विश्वास था और वास्तव में ही आपने वैसा कर दिखाया। अब मुझे अपनी गलती पर शर्म महसूस हो रही है। दूसरों के बहकावे में आकर मैंने यह अच्छा नहीं किया। इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे और

ये रुपए आपको यों के यों वापिस भेजता हूँ उन्हें स्वीकार करेंगे।

मैंने सोचा—सच्चाई और साफ-दिली किसी भी समय घाटे में नहीं रह सकती।

(६६)

व्रत-निष्ठा का सुपरिणाम

मैं स्थानीय गवर्नमेंट इन्टर कॉलेज में मैट्रिक कक्षा में पढ़ता था। सरकार की ओर से एक ऐसा नियम है कि विद्यार्थी की अध्ययन-कक्षा और खेल विभाग—दोनों की उपस्थिति ७५ प्रतिशत हो तभी वह वार्षिक परीक्षा में शामिल हो सकता है। मेरी उपस्थिति ७५ प्रतिशत से कम थी। इसलिए मैं नियम के अनुसार परीक्षा में शामिल होने का अधिकारी नहीं था। कई व्यक्तियों ने मुझे परामर्श दिया कि तुम डाक्टर को कुछ रिश्वत देकर बीमारी का सर्टिफिकेट ले लो और रजिस्ट्रार को दे दो जिससे रजिस्ट्रार समझ जाएगा कि विद्यार्थी अस्वस्थता के कारण उपस्थित न हो सका। खेल विभाग के अधिकारी ने मुझे कहा कि तुम मुझे १०० रुपए दे दो मैं तुम्हारी सम्पूर्ण उपस्थिति भर कर रजिस्ट्रार को भेज दूँगा।

मैं अपने व्रतों पर दृढ़ था। उनको तोड़कर परीक्षा में शामिल होना मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं रखता था। मुझे गलत परामर्श देने वालों को भी मैंने यही बात कही कि इस तरह का अनर्थकारी कार्य करना मुझे उपयुक्त नहीं जंचता।

अधिकारियों ने मेरी दोनों विभागों की उपस्थिति रजिस्ट्रार को भेज दी और परीक्षा में शामिल होने के अयोग्य बतलाया। मैंने मन ही मन सोचा जो कुछ भी हो चाहे मेरा एक साल व्यर्थ चला जाए पर मैं नियम पर दृढ़ रहूँगा। चाहे वह परीक्षा न भी दे सकूँ पर मेरी व्रत निष्ठा की तो परीक्षा हो ही रही है।

मेरी व्रत-निष्ठा का प्रतिफल मुझे शीघ्र ही मिल गया। दूसरे व्यक्ति द्वारा मेरी सारी स्थिति बताने पर रजिस्ट्रार ने मुझे परीक्षा में शामिल होने की अनुमति दे दी। मैं परीक्षा में शामिल हुआ और सम्मानीय नम्बरों के साथ उत्तीर्ण हुआ। इस घटना से मेरी व्रत-निष्ठा को अतीव बल मिला। अब तो मैं यह समझने लगा हूँ कि यदि व्यक्ति का आत्मबल मजबूत रहे तो व्रतों के पालन में आने वाली कठिनाइयों का अन्त अपने आप हो जाता है।

(१७)

चुनावों में नैतिकता

मैं कुछ मित्रों के अनुरोध से दिल्ली-नगरपालिका के चुनावों में खड़ा हुआ। मैंने अपने अभिकर्ताओं (एजेन्ट्स) को सम्मिलित कर स्पष्ट रूप से कह दिया—आप कहीं भी प्रतिपक्षी उम्मीदवार की आलोचना व निन्दा न करें। मेरी प्रशंसा में भी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रचार न करें। किसी भी मतदाता से मत खरीदने की कोशिश न करें। मैं अणुव्रती हूँ मेरे लिए हार-जीत का प्रश्न दूसरा है नैतिकता का पहला।

कुछ परिस्थितियां आईं कि थोड़े से प्रलोभन में सैकड़ों मत (वोट) मिल रहे थे। मेरे लिए उनकी कीमत हजारों मतों से भी अधिक थी। चारों ओर से मेरे ऊपर उनको खरीदने के लिए दबाव पड़ा। मैंने सोचा यही तो मेरे अणुव्रती होने की कसौटी है अब ही यदि मैं फिसल गया तो मेरे व्रत ग्रहण का अर्थ ही क्या ? मैंने वैसा नहीं किया।

पोस्टर चिपकाने के लिए मैदे की आवश्यकता पड़ी। घर में मैदा नहीं था। बाजार से ब्लैक के बिना मिलता नहीं था। ब्लैक में खरीदना सिद्धान्त के प्रतिकूल था अब समस्या हो गई पोस्टर कैसे चिपकाए जाएं ? आखिर मेरे ड्राईवर ने कहा—मेरे घर में थोड़ा मैदा पड़ा है उसे काम में ले लिया जाए, यह उपाय मुझे पसन्द आया। वह मैदा मेरे पोस्टर चिपकाने के काम आया और जब मुझे परमिट से दुबारा मैदा मिला तब मैंने जितना मैदा ड्राईवर से लिया था उतना वापिस कर दिया।

(१८)

चालीस हजार की पगड़ी

देहली में हमारा नया मकान बना। उसमें ८ दुकानें किराए पर देनी थीं। दुकानों के लिए पाँच-पाँच हजार रुपए पगड़ी देने वाले व्यक्ति आए। यदि पगड़ी ली जाती तो चालीस हजार रुपए अनायास ही मिल जाते जो मकान बनाने की रकम से आधे के बराबर ही हो जाते। मकान मेरा व्यक्तिगत नहीं था सभी पारिवारिक जनों का था मैं और मेरी पत्नी के सिवाय दूसरे भाई अणुव्रती नहीं थे। पर अणुव्रतों का प्रभाव उन पर था इसलिए हमारा यह सब-सम्मति से निर्णय हुआ हमें पगड़ी नहीं लेनी है। तदनन्तर सारी दुकानें बिना पगड़ी लिए यथोचित किराए पर दे दी गईं।

(६९)

वस्त्र-संयम

अणुव्रती होने के बाद वस्त्र-संयम की दिशा में मैंने अपने आपको कुछ साधा है। पहले पहल मैंने अपनी आवश्यकताओं को घटाकर एक वर्ष में २०० रुपए से अधिक का कपड़ा न खरीदने का संकल्प किया था। दूसरे वर्ष उसे घटाकर ६० रुपए तक ले आया। इस वर्ष २५ से अधिक का कपड़ा काम में न लाने का संकल्प किया है। मुझे इस संयम से आनन्द मिला है। मुझे यह नहीं लगता कि मेरे लिए इतना वस्त्र बहुत कम है।

(७०)

हल है हल्कापन जीवन का

आचार्यश्री तुलसी के प्रवचनों में मैंने सुना यदि सुख चाहते हो तो जीवन को सादा और हल्का बनाओ। मैं अणुव्रती बना खान-पान व रहन सहन आदि जीवन के विभिन्न पहलुओं में सादगी लाने लगा। थोड़े से हेर-फेर में काफी अनावश्यक भार मिट गया। जितने व्यय में एक महीना गुजरता था उतने ही व्यय में दो महीने गुजरने लगे जीवन हल्का लगने लगा। मन को संभाल लेने के कारण घरेलू झगड़े भी कम होने लगे।

मैं कलकत्ता में हुण्डी चिट्ठी की दलाली करता हूँ। पहले तो सब की तरह मैं भी गलती बात कर ही लेता था। अब असत्य का पूरा बचाव करता हूँ। व्यर्थ की सफाई कहीं नहीं लगाता। परिणामतः लोगों में मेरी भलाई की छाप पड़ी है और इससे मेरे व्यवसाय को भी बल मिला है।

(७१)

मैं झूठ बोला था

संवत् २०१० में आचार्यश्री तुलसी ने राणावास (राजस्थान) में सहस्रों की परिषद् में आह्वान किया—मैं चाहता हूँ कि कम से कम ५ व्यक्ति ऐसे हों जो आगामी वर्ष के लिए व्यवसायादि कार्यों से निवृत्त रहकर पूरा समय अणुव्रत-साधना और अणुव्रत-विस्तार में लगाएं। उस प्रेरणा से प्रभावित होकर अन्य व्यक्तियों के साथ मैंने भी वैसा संकल्प किया। उस बात को लगभग तीन वर्ष हो गए। मुझे लगता है—अणुव्रत-कार्य में मेरा जीवन-दान ही हो गया है। प्रतिपल आकर्षण बढ़ता ही जा रहा है।

कुछ दिनों पूर्व हम अणुव्रत कार्य के लिए आसाम गए थे। एक दिन

मोटर कार से हम एक गाँव को जा रहे थे। जंगल में सड़क पर एक मोटर कार रुकी पड़ी थी। एक सज्जन ने हमें रोककर पूछा—आपके पास पेट्रोल है? बिना कुछ सोचे समझे मेरे मुंह से निकल पड़ा—जी! नहीं है। हालांकि हमारे पास पेट्रोल की टंकी भरी थी। हम आगे चल पड़े। वहीं से चलते ही विचारों में द्वन्द्व उठा। मैं अणुव्रती था और इतनी-सी बात के लिए झूठ बोल गया। आखिर वह सज्जन भी तो कष्ट में था। इसलिए हम से पेट्रोल मांग रहा था। सोचने लगा—अब क्या किया जाए? जो गया सो तो हो ही गया पर आत्मा को इस बात से सन्तोष नहीं मिला। मानसिक बेचैनी इतनी बढ़ गई कि आगे चलना मेरे लिए एक समस्या बन गई। लगभग दो माइल से हम वापस लौटे। वे सज्जन वहीं खड़े थे। मैंने उनसे क्षमा-याचना कर कहा मैं झूठ बोला था। हमारे पास पेट्रोल बहुत है, आप चाहें जितना ले लें। इस प्रकार जीवन में अनेकों प्रसंग आते रहते हैं जिनमें "मैं अणुव्रती हूँ" इस स्मरण मात्र से आत्मा सजग हो जाती है और दोष से बचने का प्रयत्न करती है।

(७२)

जब मैं अणुव्रती नहीं था

मैं सम्पन्न परिवार में पैदा हुआ था युवावस्था के श्रीगणेश में ही व्यावसायिक-क्षेत्र में दायित्वपूर्ण काम करने लगा। मन की चाह पूरी करने में पारिवारिक-जनों का मेरे पर कोई नियन्त्रण नहीं था। सौ-सौ रुपए गज तक के कपड़े पहनता बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस रुपयों में विलायती जूते खरीदता जबकि उस समय दो-तीन रुपयों में मिलने वाली जूतों की जोड़ी कीमती मानी जाती थी। कोट कमीज और धोती आदि कपड़ों के ढेर लगे रहते थे। दिन में पाँच-पाँच सात-सात पोशाकें बदल लेता था। उसी अनुपात से खाने आदि को लेकर मेरे अनेक फिजूलखर्चियां थीं। हीरे, मोती आदि के आभूषण भी बहुत पहनता था। भाँग पीने का भी काफी शौक था। गुस्सा इतना आता था कि थोड़ी-सी गैरवाजिब बात पर लड़ने को उतारू हो जाता था।

जब मैं अणुव्रती बना

आचार्यश्री तुलसी के पवित्र सत्संग में रहते रहते मेरे जीवन में परिवर्तन आया। सन् १९५१ में मैं अणुव्रती बना। आज की स्थिति यह है कि वे बेशकीमती पोशाकें सन्दूकों में भरी पड़ी हैं। पहनना तो दूर उन्हें

देखना भी आत्मा को रुचिकर प्रतीत नहीं होता। लगभग नौ वर्षों से मैं खद्दर पहनता हूँ और एक साथ तीन जोड़ से अधिक धोतियाँ एकत्रित नहीं करता। अन्य कपड़ों के विषय में भी यही प्रवृत्ति रहती है कि आवश्यकताएँ कम रहें और कपड़ों का एक साथ संग्रह न किया जाए। खान-पान का भी क्रम बदला है। इच्छा और प्रवृत्ति यही रहती है कि एक ही शाक से मनुष्य रोटी खा सकता है तो क्या जरूरी है कि भोजन के समय पाँच प्रकार के शाक हों ही? इस परिवर्तन में मुझे शान्ति व आनन्द मिला है न कि मानसिक दैन्य। मैं मानता हूँ कि साधना के मार्ग पर जितना मुझे बढ़ना है उसे देखते हुए मैं बहुत थोड़ा बढ़ पाया हूँ।

(७१)

सांच को आँच नहीं

एक दिन सेल्सटैक्स इन्सपेक्टर मेरी दुकान पर आया। उसने कुछ कपड़ा खरीदना चाहा। पर जो कपड़ा वह चाहता था वह पहले ही स्पेशल मास्टर द्वारा खरीदा जा चुका था अतः मैंने कहा—आप दूसरा जो चाहें कपड़ा खरीदें पर यह मैं आपको कैसे दे सकता हूँ? सेल्सटैक्स इन्सपेक्टर कुछ गम हुआ और चला गया।

हर वर्ष की तरह इस बार भी सेल्सटैक्स ऑफिसर को हमने अपने बही खाते दिखाए। ऑफिसर बही-खाते देखकर ज्योंही फैसला लिख रहा था त्योंही वह इन्सपेक्टर बीच में आया और बोला—मैं इस केस की इन्क्वायरी करूंगा। ऑफिसर ने कहा—जो व्यक्ति इतना टैक्स देता है क्या उसके घोटाला निकलेगा? इन्सपैक्टर नहीं माना। ऑफिसर ने कह दिया—जा इन्क्वायरी करलो।

हमारा सारा मामला सेल्सटैक्स ऑफिसर से हटकर इन्सपेक्टर के हाथ में आ गया। इन्सपेक्टर आए दिन बड़ा तंग करता। समय असमय वह बुला लेता। इन्क्वायरी के बीच मुझे यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि दुकान पर माल कब आया अहमदाबाद का माल कब आया बम्बई से माल कब आया तथा कितना कब-कब बेचा सारी तारीखें उसके पास गुप्त रूप से संगृहीत थीं। उसके पास इसका भी सारा ब्यौरा था कि म्युनिसिपल-कमेटी का टर्मिनल टैक्स भी कब और कितना दिया। काफी समय तक वह अच्छी तरह से बही-खातों को देखता रहा।

हमारी सचाई और ईमानदारी से आखिर उसका भी हृदय बदला।

उसने हमें तंग करना छोड़ दिया और इन्कमटैक्स की समाप्ति भी उसने इन शब्दों में लिख कर की—मैंने इस फर्म के बही-खाते बड़ी सावधानी से देखे हैं। इसमें कहीं भी गोल-माल नहीं मिला। इससे हमें भी चैन मिला—"सांच को आंच नहीं।

(७४)

नब्बे हजार की एक पगड़ी

नयाबाजार (दिल्ली) के जिस मकान का मैं किरायेदार था वह मैंने ९९ हजार रुपए में खरीद लिया। नीचे के भाग में मेरी दुकान है। दो दुकानें वहां किराए पर दी जा सकती हैं। किराएदार आते हैं पगड़ी देने को कहते हैं। ऊपर में तीनों दुकानों की ९ हजार रुपयों तक की पगड़ी देकर भी दुकानें किराए लेना चाहते हैं। सगे सम्बन्धी व मित्र भी सलाह देते हैं मौका चूकना नहीं चाहिए। ९० हजार मिलते हैं और मकान भी आखिर तुम्हारा ही रह जाता है। मैं कहता हूँ पगड़ी लेना मैं निर्दयता समझता हूँ। पैसे के लिए निर्दय कार्य मैं हर्गिज नहीं करूंगा। अणुव्रती का यही धर्म है।

सत्य पर आग्रहपूर्वक चलने वालों के सामने कठिनाइयां आती हैं, पर वे कभी कभी सुगम भी हो जाती हैं। एक बार इन्कमटैक्स ऑफिसर ने टैक्स जुर्माना आदि मिला कर मेरे ऊपर २००) निरर्थक लगा दिए। मैंने मामला लड़ा। लोगों ने कहा जितने का मामला है उससे ज्यादा तुम्हारा खर्च हो सकता है। मैंने कहा—मैं रुपयों के लिए मामला नहीं लड़ता मैं तो अपने को सत्य प्रमाणित करने के लिए ऐसा कर रहा हूँ। हाकिम ने कहा—इतना छोटा मामला क्यों लड़ते हो ? मैंने कहा—२००) देकर मैं चोर बनूं यह मुझे मंजूर नहीं। आखिर मामला मेरे पक्ष में हुआ। इसके बाद इन्कमटैक्स ऑफिसर मुझे पहचान गए। मेरे बही-खाते में कभी सन्देह नहीं करते और न मैं भी उनमें सन्देह जैसी बात रखता हूँ।

(७८)

सत्याचरण का सुन्दर प्रभाव

विधायक होने के नाते अणुव्रतों को निभाने में कुछ विशेष प्रकार की कठिनाइयाँ पग पग पर आती हैं। कुछ लोग आते हैं और अपनी पुरानी जान पहचान अपने पुराने सहयोग की याद दिलाते हुए कहते हैं—आपके विधायक होने के बाद हम तो पहली बार ही एक छोटा-सा काम लेकर आए हैं। वह यह है कि अपना लड़का इस वर्ष परीक्षा में अनुत्तीर्ण रह गया और पता लगा है इस वर्ष भी वह केवल थोड़े से अंकों से अनुत्तीर्ण घोषित होने वाला है। आप परीक्षकों को थोड़ा-सा संकेत कर दें हमारा काम हो जाएगा। कुछ लोग आते हैं और कहते हैं—न्यायालय में अमुक न्यायाधीश के पास हमारा मामला चल रहा है। न्यायाधीश आपके मित्रों में से हैं। आप थोड़ा-सा दबाव उन पर डाल देंगे तो हमारा काम बन जाएगा। इसी प्रकार कुछ लोग प्रमाण-पत्र लिखा लेने के लिए आते हैं। यथातथ्य अयथार्थ लिखने का आग्रह करते हैं। इन सभी विषयों में अणुव्रती को बहुत कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। अनुचित कार्यों को अनुचित कह कर ही छुटकारा पाना पड़ता है। लोग नाराज हो जाते हैं। कहते हैं हम लोगों ने आपके चुनाव में यह किया वह किया। आगे भी फिर चुनाव आ जाएंगे। मुझे स्मित भाव से कह देना पड़ता है अनुचित समर्थन पहले भी मैंने आप से नहीं मांगा है और भविष्य में भी ऐसा करने का विचार नहीं रखता हूँ। अधिक से अधिक बात यही तो है मैं अगले चुनाव में नहीं आ सकूँगा पर यदि मैं अपने अणुव्रतों को रख सका तो जीवन की सब से बड़ी सफलता मानूँगा। उचित सहयोग चाहने वालों में से भी मैं या कोई भी व्यक्ति सब का मन-चाहा नहीं कर सकता। मैं किसी को भुलावे में नहीं डालता स्पष्ट कह देता हूँ। आपकी सहयोग कामना उचित है पर मैं उसे पूरी नहीं कर सकता। आप अपना कोई दूसरा रास्ता खोजें। इस प्रकार की स्पष्टोक्तियों से बहुधा एक तो लाभ मुझे मिलता रहा है बहुत दिनों के बाद वे ही लोग मिलते हैं और कहते हैं दूसरे बड़े लोगों से तो आप ही अच्छे रहे। एक बार में ही हाँ या ना कह तो दिया। दूसरों ने तो हमें बहुत भरोसे व आश्वासन दिए और हमारे लिए किया कुछ नहीं। उनके भरोसे के कारण ही हम लाखों की क्षति उठानी पड़ी। आप की तरह वे भी स्पष्ट कह देते तो हमें यह क्षति उठानी नहीं पड़ती। इस प्रकार मैंने पाया कि सत्य पर होने वाला रोष क्षणिक होता है।

मानें चलकर तो सत्याचरण का सुन्दर प्रभाव ही लोगों के मन पर रह जाता है।

(७५)
दैवी-सम्पदा

पेंतीस वर्ष की अवस्था में मेरे पति का वियोग हो गया। उस समय मैंने अपने आपको सम्भाल कर रखा और सामायिक आदि धर्माराधना में लगी रही। समाज के वातावरण में यह एक नया उदाहरण था। एक स्थानकवासी जैन मुनि लोगों से यह पूछते हुए कि वह देवी कौन सी है जो पति-मृत्यु पर भी इतना धैर्य रख पाई मैं उसे देखना चाहता हूं। मेरे यहां पधारे। उन्होंने मुझ से पूछा—इतनी विकट परिस्थिति में भी तुम रोई नहीं। क्या तुम्हें कोई दैवी-शक्ति प्राप्त हुई है? मैंने उत्तर में कहा—मैं अणुव्रतिनी हूं। मेरे गुरु आचार्यश्री तुलसी हैं। वे हमें यही प्रेरणा देते हैं कि अणुव्रती को हर परिस्थिति में दृढ़ता रखनी चाहिए। उनकी यह शिक्षाएं ही मुझे दैवी-सम्पदा के रूप में मिली हैं।

(७६)
व्रत की विजय

अणुव्रती होने बाद अधिक मुनाफाखोरी के विषय में एक प्रयोग किया। मैंने अपने आप एक संकल्प किया जो ग्राहक मेरा भरोसा कर मूल्य की बात मेरे पर छोड़ेगा उससे मैं चार प्रतिशत से अधिक मुनाफा नहीं लूंगा। बाजार में चार प्रतिशत का मुनाफा वाजिब मुनाफा गिना जाता है। मेरा व्यापार जवाहरात बाबे का है। एक बार एक प्रतिष्ठित ग्राहक से सौदा तय हो रहा था मूल्य के विषय में उसने तथा उसके दलाल ने कहा—आप ही वाजिब दाम लगा लें हमें इसमें कुछ नहीं कहना है। मैंने कहा आप लोग जो कहें वही लगा दूं। मैं जानता था चार प्रतिशत के हिसाब से जितना मुनाफा मैं इन से लूंगा वे अपने आप जो मूल्य कहेंगे वह मुनाफा लगभग पांच हजार रुपए अधिक का होगा। उन्होंने मेरी बात नहीं मानी मूल्य मुझे ही लगा देने को कहा मेरे लिए वह सौदा कसौटी हो गया। सोचने लगा—मन चाहा मुनाफा क्यों न उठा लिया जाए। साथ साथ अपने व्रत की बात भी रह रह कर स्मृति में आ रही थी। मैं बोलने के अन्तिम क्षण तक यह निर्णय नहीं कर पाया कि मुझे क्या करना चाहिए? इस किंकर्तव्य-मूढ़ता

में ज्यों ही बोलने को मुँह खोला तो व्रत की विजय रही। मन और वाणी में तादात्म्य था। चार प्रतिशत मुनाफे के हिसाब से ही मैंने सब कुछ कहा। ग्राहक और दलाल को इतना सस्ता माल मिलने की जरा भी आशा नहीं थी। उन्होंने सस्मित भरी ओर देखा। मैंने अपने प्रण की बात कही। दोनों आश्चर्यान्वित रहे। उन्होंने कहा—आपका प्रण ग्राहक के पक्ष में बहुत अच्छा है। कम से कम हमें तो अब कभी दूसरे जौहरी के पास जाने की आवश्यकता नहीं रह गई है।

इसके बाद उस ग्राहक महाशय के द्वारा अब तक लाखों रुपयों का माल खरीदा जा चुका है और उसके माध्यम से और भी अनेकों ग्राहक मेरे यहाँ स्थायीरूप से जुड़ गए हैं। वह पांच हजार का परित्यक्त लाभ न जाने कितने गुना होकर अब मुझे मिल रहा है।

(७७)

एक अणुव्रती या एक क्षेत्र ?

बृहत परिवार में हम कुछ लोग अणुव्रती हैं। शेष लोगों ने नियम रूप से अणुव्रत ग्रहण नहीं किए हैं पर एक संयुक्त परिवार में होने के कारण सामुदायिक नियमों का पालन कर वे हमारी अणुव्रत-साधना में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। मेरी भतीजी का विवाह था। वर पक्ष वालों ने यह आग्रह किया—हम तो अपना दहेज प्रदर्शनपूर्वक लेंगे। भाई साहब ने कहा—मेरा छोटा भाई अणुव्रती है। प्रदर्शन करवाना उसके लिये वर्जित है। हम सबको भी उस अच्छी बात का अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकार समझाते समझाते रात के तीन बज गए। आखिर उन्होंने हमारी बात सहर्ष स्वीकार की। दहेज उसी समय चुपचाप उनके यहाँ पहुँचा दिया गया। लोग कहते हैं—अणुव्रती बहुत थोड़े हैं समाज बहुत बड़ा है। पर मैं समझता हूँ अणुव्रतियों को केवल संख्या से ही आँकना उचित नहीं है। हर एक अणुव्रती का अपना एक क्षेत्र होता है और उस क्षेत्र का उसके अणुव्रतों की ज्योति अवश्य आलोकित करती है। पांच हजार अणुव्रतियों को यदि अहिंसा प्रयाग के पांच हजार क्षेत्र मान लिया जाता है तो अणुव्रतियों की सफलता या विफलता का सही मूल्यांकन हो सकता है।

हमारे संयुक्त परिवार में ऐसे अनेकों अवसर आते ही रहते हैं। एक अन्य विवाह प्रसंग पर कन्ट्रोल रेट से इतना गेहूं नहीं मिल रहा था कि हम तीन दिन तक बारात को गेहूं की पूड़ी खिला सकें। चोरबाजारी से गेहूं खरीदना

हम सबने अणुव्रत भावना के प्रतिकूल माना। गेहूं के बदले बारातियों को मोठ की पूड़ियाँ ही खिलाईं। हमने यह चिन्ता नहीं की कि बाराती व अन्य लोग इस बात को कैसा समझेंगे ?

एक बार बारात में लोग अधिक आ जाने के कारण वृहत् जीमनवार न करने की अणुव्रत-भावना को निभाने का हम लोगों के पास कोई मार्ग नहीं रहा। अन्त में हम लोगों को यह सूझा कि परिवार में जितने अणुव्रती हैं वे जीमनवार में सम्मिलित न हों। घर में बारात आई है और कुछ लोग अलग से पका कर खाएंगे यह भी कैसा लगेगा यह सोच कर घर के अणुव्रतियों ने निराहार उपवास रखा।

(७८)

सत्य निष्ठा

मेरे पिताजी अणुव्रती हैं। वे अपने व्रतों का बड़ी कड़ाई व सच्चाई से पालन करते हैं। उनकी उस व्रत निष्ठा का परिवार वालों पर भी गहरा प्रभाव है। यहाँ तक कि हर एक व्यक्ति उनके सामने असत्य बोलने से बच जाता है। हमारा व्यापार उत्तरप्रदेश में है। व्यापारिक कामों से वे सन् ४६ से अलग हो गए थे। हम ही अपनी इच्छानुसार काम करते हैं। सन् ५६ में हमने उनका भी नाम हिस्सेदारी (पार्टनर) में लिखा दिया। इसका उन्हें कुछ भी पता नहीं था। इस वर्ष हमारा व्यापार अच्छा चला और लाभ भी अच्छा हुआ। प्रतिवर्ष की तरह इन्कमटैक्स ऑफिस में बही-खाते दिखाने का प्रसंग आया। वकील ने पिताजी से कहा – आप पेशी में यह बताना कि मैं अपने लड़कों से अलग हूँ और सन् ४६ से ५६ तक नौकरी करता था जिससे मेरा काम चलता था। इस पर पिताजी ने यह संशोधन उपस्थित किया कि मैं अलग हूँ ऐसा ठीक है पर सन् ४६ से ५६ तक मैं नौकरी करता था यह कैसे कहूं जबकि मैं नौकरी नहीं करता था। इस पर वकील ने कहा—यदि आप ऐसा नहीं कहेंगे तो आप से पूछा जा सकता है कि आपका खर्च कैसे चलता था ? पिताजी ने कहा—मैं स्पष्ट कह दूंगा मेरे लड़के मुझे खर्च देते थे। इस पर वकील ने उनसे कहा—ऐसा कहने पर यह सिद्ध हो जाएगा कि आप इनसे अलग नहीं हैं और अन्य पार्टनर भी नकली समझे जाएंगे। इसका परिणाम होगा कि इस वर्ष का टैक्स देने और अगले वर्ष की रकम जमा करवाने में आपकी आय पूंजी लग जाएगी। आपके लड़के

व्यापार कैसे करेंगे ? उन्होंने कहा—कुछ भी हो रुपयों के लिए मैं अपने सत्य को दांव पर नहीं रख सकता। मेरा आराध्य सत्य है न कि रुपए। जिनके पास धन नहीं है वे भी तो अपना जीवन बिताते हैं। मुझे इस अनैतिक प्रकार से धन-संग्रह करना अनुचित और जीवन के लिए अभिशाप मालूम देता है। हम लोगों ने भी उनसे बहुत कहा—पर वे किसी प्रकार असत्य कहने को तैयार न हुए। उनकी यह सत्य निष्ठा रह रह कर याद आती रहती है और जीवन में सत्यवादी बनने की प्रेरणा देती रहती है।

(७९)

नियम की भावना तक

मेरा पाँच वर्ष का बच्चा सुमति अचानक इस नश्वर संसार से चल बसा। उसकी सुकुमारता बालोचित चपलता असाधारण विवेक बुद्धि आदि गुणों ने हम पारिवारिक जनों को ही नहीं, अपितु जिन्होंने उसे एक बार देखा, उन सबको आकृष्ट कर रखा था। उसके आकस्मिक निधन पर सुदूर वातावरण में एक मायूसी छा गई थी। कोई भी कल्पना कर सकता है उस समय मेरे अपने मातृ-हृदय की स्थिति क्या रही होगी ? पर कुछ ही क्षणों में मैंने अपने आपको सम्भाला अणुव्रतों का चिन्तन किया नियम ध्यान में आया—प्रथा-रूप से न रोना। मैंने सोचा प्रथा रूप से न रोऊँ और मेरी अन्तर आत्मा रोती रहे यह तो नियम का स्थूल पालन है। अणुव्रत जीवन-दर्शन तो व्यक्ति की अनासक्ति और निर्मोहता का बहुत आगे तक ले जाना चाहता है। हृदय में मानो शिव शक्ति का सञ्चार हो उठा हो। आत्मा की अविनश्वरता और शरीर की नश्वरता सामने दिखने लगी। मैंने 'महावीर प्रार्थना' प्रारम्भ की और सभी पारिवारिकों ने उसमें योग दिया।

(८०)

आदर्श का उज्जीवन

एक बार की रेल-यात्रा में सेकिण्ड क्लास का टिकिट लेकर स्थानाभाव से फर्स्ट क्लास में बैठ जाना पड़ा। कलकत्ता पहुँचना था। हबड़ा स्टेशन पर मुझे लेने के लिए आने वाले व्यक्ति व कुली सामान बटोरने में लगे थे। मैंने कहा—सब लोग यहीं रुकें मैं रेलकर्मचारियों को कुछ किराया चुका कर आता हूँ। कुली लोगों ने कहा—टिकिट तो आपके हाथ में है फिर किराया क्या चुकाना है ?

मैंने कहा टिकिट सैकिण्ड क्लास का है और मैं आया फर्स्ट क्लास में हूँ। कुली और दूसरे लोग मेरे कथन पर हँसने लगे। उन्होंने कहा—क्या टिकिट-चैकर देखेगा कि आप कौन से दर्जे से आए हैं। चैकार को घण्टे का समय लग जाएगा हम और आप हैरान हो जाएंगे लाभ कुछ भी होने वाला है नहीं। मैंने कहा—कुछ भी हो मुझे तो यह सब करना ही होगा। मैं स्वयं यह सोचता था परेशानी अधिक है और बात बहुत छोटी है पर अणुव्रती होने के नाते अन्ततोगत्वा मैंने यह निश्चय किया आदर्श को पुनरुज्जीवन करने में कठिनाइयां आती हैं। समाज यदि उन कठिनाइयों को सोचकर आदर्शों से दूर चलता ही गया तो न जाने वह कहाँ जाकर रुकेगा। प्रारम्भ में कुछ लोगों को तो ऐसे कार्यों में बलि होना ही पड़ता है। आखिर मैंने वही किया। साथी लोग मेरी इस आदर्शवादिता को एक परेशानी भी मान रहे थे और साथ साथ यह भी कहते जा रहे थे इतने ईमानदार व्यक्ति भारतवर्ष में कितने मिलेंगे?

(८१)

भूल का उचित प्रायश्चित

मेरे में अहं भाव व क्रोध की मात्रा अधिक थी। पर अणुव्रती बनने के पश्चात् जीवन में नियन्त्रण की भावना का विकास हुआ है। एक बार की घटना है—डी० ए०वी० हाईस्कूल में अध्यापक की हैसियत से मैं विद्यार्थियों को फिजिकल ट्रेनिंग दे रहा था। एक विद्यार्थी ने अनुशासन भंग किया। मुझे गुस्सा आ गया और मैंने उसे बुरी तरह पीटा। उसके शरीर पर भी निशान बन गए। साथी अन्य अध्यापकों ने मेरी पीठ थपथपाई। उन्होंने मुझ से कहा ठीक की उचित चिकित्सा की। मैं फूला नहीं समाया। मुझे लगा जैसे मैंने बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली हो।

रात को मैं सिंहावलोकन व आत्मालोचन कर रहा था। सहसा अहिंसा अणुव्रत का यह नियम "मैं किसी के साथ क्रूर व्यवहार नहीं करूंगा" सामने आया मन में व्याकुलता हो गई। दिन की घटना रह रह कर स्मृति में उभरने लगी। आत्म-ग्लानि के साथ मैंने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा। मुझे लगा विद्यार्थी द्वारा हुए अनुशासन भंग का प्रतिकार तो मैंने कर दिया पर मेरे द्वारा हुए नियम भंग का प्रतिकार कौन करेगा? विचारों के प्रवाह में बहता हुआ मैं क्रमशः व्रतों का पठन करता जा रहा था। शील और चर्या के व्रतों के बाद आत्म उपासना के व्रत पढ़ रहा था। वहीं जब चौथी धारा सामने आई

किसी के साथ अनुचित या कटु व्यवहार हो जाने पर १५ दिन की अवधि में क्षमा-याचना कर लूंगा तो मुझे कुछ शान्ति अनुभव हुई। मुझे अब मेरी भूल का उचित प्रायश्चित्त करने का प्रकार मिल गया। मैं उसी समय अन्धेरी रात में विद्यार्थी के घर पहुँचा। अभिभावकों ने मेरा स्वागत किया और विद्यार्थी ने एक दूसरी दृष्टि से मुझे देखा। मैंने विद्यार्थी को अपनी छाती से भींच लिया और उन सबके समक्ष उससे माफी मांगी। अभिभावकों पर इस का अच्छा प्रभाव पड़ा। हमारे सम्बन्ध उसके बाद अधिक मधुर हो गए।

(८२)

जागृत-विवेक

लोग कहते हैं, अणुव्रत ले लेने से क्या होता है? मुझे तो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है, अणुव्रतों के ग्रहण से जीवन में आत्म विश्वास सहिष्णुता व दृढ़ मनोबल का प्रादुर्भाव होता है। जब मैं अणुव्रत-साधना में नहीं थी मेरे भाई की मृत्यु हुई। मुझे इतना दुःख हुआ कि कई महीनों तक आंखें गीली रहीं और रोना चालू रहा। अणुव्रत-साधना में आने के कुछ महीनों बाद मुझे पति वियोग के दुस्सह दुःख का सामना करना पड़ा पर संसार की नश्वरता को समझ लेने के कारण वह दुःख दुःख नहीं लगा। मैं स्वयं रोई नहीं और दूसरे परवालों को रोने से रोकती रही। उनके पीछे रूढ़ि और अन्धविश्वासों के रूप में होने वाले कार्यक्रमों को भी मैंने नहीं होने दिया। समाज में इसकी प्रतिकूल चर्चाएं भी बहुत हुई। पर मैंने अपने जागृत विवेक से वही किया जो अणुव्रत-भावना पर आधारित था।

(८३)

मित्र नियाराधीन

मलाबसपुर में भारत सेवक समाज की ओर से एक श्रमदान शिविर लगा। मुझे उसका निरीक्षक नियुक्त किया गया। उद्घाटन के लिए वहाँ डी०सी० को आना था। हमने उनके सम्मान में अल्पाहार (टी पार्टी) की एक योजना बनाई। शिविर के नियमानुसार मैं उसमें पच्चीस रुपए व्यय कर सकता था। कुछ स्वार्थी व्यक्तियों ने मेरे ऊपर दबाव डाला और पच्चीस रुपयों के स्थान पर सौ रुपए खर्च करने को कहा। उनका विचार था पर से एक पैसा भी खर्च नहीं होगा और डी० सी० हमारे पर खुश हो जाएंगे। मैंने उनको स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उन लोगों

ने कुछ ग्रामवासियोंको भड़का दिया और होने वाले श्रमदान में दिक्कतें आईं। कुछ व्यक्तियों ने उसमें भाग नहीं लिया। उन्होंने मेरे विरुद्ध यह जोरों से प्रचार किया कि टी पार्टी में खर्च कम किया गया है पर वाउचर्स में अधिक दिखला कर स्वयं उसे हजम कर जाएगा। किन्तु मैंने हिसाब-पुस्तिका ऐसे स्थान पर रख दी जहाँ मुझे बिना पूछे ही सुगमता से हर कोई उसे देख सके और भ्रम निवारण हो सके। यही हुआ एकान्त में हिसाब-पुस्तिका को पाकर हर एक को प्रसन्नता हुई। हर एक मेरी गलती निकालने के लिए उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने लगा पर उस पुस्तिका को देखकर सबको ही हैरान हो जाना पड़ा। एक भी रकम वे ऐसी नहीं पकड़ सके जिससे वे मुझे कुछ बदनाम कर सकें। मेरे इस आचरण से वे और अधिक विस्वस्त हो गए।

शिविर की समाप्ति पर प्रमाण-पत्र बांटे गए। एक अध्यापक जो कि वहाँ के जैलदार के पुत्र थे मे सिफारिश करवाई, प्रमाणपत्र मुझे भी मिलना चाहिए। मैंने निर्भयतापूर्वक कहा—जब आपने शिविर में काम ही नहीं किया तो मैं झूठमूठ ही आपको प्रमाणपत्र कैसे दे सकता हूँ? यह तो मेरा नियम है। वातावरण काफी गर्म हो गया किन्तु अन्तिम परिणाम सुन्दर निकला।

शिविर में यातायात का कुछ खर्च अधिक हो गया। पचहत्तर रुपयों का बिल तो केवल दो कारों का था जिसमें दिल्ली से मेहमान आए थे। समस्या सामने आ गई, क्या किया जाए। कुछ व्यक्तियों ने सुझाया इस बिल को दूसरे विभाग में दिखा दिया जाए। यातायात सम्बन्धी बिल बजट के अनुसार बन जाए। मुझे यह उचित नहीं लगा और उसे अस्वीकार कर दिया। सारे बिल शिक्षा मंत्रालय में पहुंचे। यातायात सम्बन्धी बिल अधिक था। फलतः दो सौ पचहत्तर रुपयों का बिल अभी तक शिक्षा-मन्त्रालय के विचाराधीन है।

(८४)

कण्डक्टर की आवश्यकता ही न रहे

कलकत्ता महानगर में एक दिन मैं धर्मतल्ला स्ट्रीट से बड़तल्ला स्ट्रीट ट्राम में जा रहा था। मुझे ख्याल था मेरे पास ट्रामवे का मासिक पास (Monthly Ticket) है किन्तु जब मैं हरिसन रोड पर पहुंचा मुझे

याद आया पास तो घर ही छूट गया है। आते समय तो मैं टैक्सी से आया था अतः उसकी आवश्यकता नहीं थी। याद आते ही मैंने कण्डक्टर को पुकारा पर भीड़ अधिक थी इसलिए न तो वह मेरे पास आ सका और न मैं समयाभाव से अधिक ठहर सका। बिना टिकिट के ही लाचार होकर उतर जाना पड़ा। अणुव्रती का नियम है बिना टिकिट रेल ट्राम बस आदि से यात्रा न करना। मुझे इस व्रत-भंग की मन में बड़ी ग्लानि रही। संयोग वश उसी दिन मुझे ट्राम में दूसरी बार और बैठना पड़ा। पास भी साथ नहीं था। मैंने सोचा चोरी तो मेरे ट्रामवे की हुई। यदि मैं इस बार एक टिकिट की जगह दो टिकिट ले लूं तो सम्भवतः अपने कर्तव्य का पालन कर सकूं। इसी विचार से मैंने दो टिकिट मांगे। कण्डक्टर ने तत्काल पूछा—क्या एक टिकिट आपके पास बैठे महाशय का है? मैंने सहज भाव से उत्तर दिया—नहीं ये दोनों मेरे लिए हैं। आसपास बैठे व्यक्ति व कण्डक्टर सारे ही आश्चर्यपूर्वक पूछने लगे—यह क्यों? मैंने अपनी पूर्व विवशता को बताया तो सारे ही अणुव्रतों से प्रभावित हुए। कण्डक्टर ने मेरी ओर नरम करते हुए कहा—यदि आप जैसे ही सब व्यक्ति हो जाएं तो ट्रामवे को कण्डक्टर रखने की आवश्यकता ही न पड़े। आसपास बैठे सभी व्यक्तियों ने अणुव्रत-आन्दोलन व आचार्यश्री तुलसी के विषय में और भी बहुत कुछ जानना चाहा। मैंने सविस्तार उन्हें बताया।

●

ने कुछ ग्रामवासियों को भड़का दिया और होने वाले श्रमदान में दिक्कतें आईं। कुछ व्यक्तियों ने उसमें भाग नहीं लिया। उन्होंने मेरे विरुद्ध यह जोरों से प्रचार किया कि टी पार्टी में खर्च कम किया गया है पर वाउचर्स में अधिक दिखला कर स्वयं उसे हजम कर जाएगा। किन्तु मैंने हिसाब-पुस्तिका ऐसे स्थान पर रख दी जहाँ मुझे बिना पूछे ही सुगमता से हर कोई उसे देख सके और भ्रम-निवारण हो सके। यही हुआ एकान्त में हिसाब-पुस्तिका को पाकर हर एक को प्रसन्नता हुई। हर एक मेरी गलती निकालने के लिए उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने लगा पर उस पुस्तिका को देखकर सबको ही हैरान हो जाना पड़ा। एक भी रकम वे ऐसी नहीं पकड़ सके जिससे वे मुझे कुछ बदनाम कर सकें। मेरे इस आचरण से वे और अधिक विश्वस्त हो गए।

शिविर की समाप्ति पर प्रमाण-पत्र बाँटे गए। एक अध्यापक जो कि वहाँ के जैलदार के पुत्र थे ने सिफारिश करवाई प्रमाण-पत्र मुझे भी मिलना चाहिए। मैंने निर्भयतापूर्वक कहा—जब आपने शिविर में काम ही नहीं किया तो मैं झूठमूठ ही आपको प्रमाणपत्र कैसे दे सकता हूँ? यह तो मेरा नियम है। वातावरण काफी गर्म हो गया किन्तु अन्तिम परिणाम सुन्दर निकला।

शिविर में यातायत का कुछ खर्च अधिक हो गया। पचहत्तर रुपयों का बिल तो केवल दो कारों का था जिसमें दिल्ली से मेहमान आए थे। समस्या सामने आ गई क्या किया जाए। कुछ व्यक्तियों ने सुझाया इस बिल को दूसरे विभाग में दिखा दिया जाए। यातायत सम्बन्धी बिल बजट के अनुसार बन जाए। मुझे यह उचित नहीं लगा और उसे अस्वीकार कर दिया। सारे बिल शिक्षा मंत्रालय में पहुँचे। यातायात सम्बन्धी बिल अधिक था। फलतः दो सौ पचहत्तर रुपयों का बिल अभी तक शिक्षा-मंत्रालय के विचाराधीन है।

(८४)

कण्डक्टर की आवश्यकता ही न रहे

कलकत्ता महानगर में एक दिन मैं धर्मतल्ला स्ट्रीट से बड़तल्ला स्ट्रीट ट्राम में जा रहा था। मुझे खयाल था मेरे पास ट्रामवे का मासिक पास (Monthly Ticket) है, किन्तु जब मैं हरिसन रोड पर पहुँचा मुझे

याद आया पास तो घर ही छूट गया है। आते समय तो मैं टैक्सी में आया था अतः उसकी आवश्यकता नहीं थी। याद आते ही मैंने कण्डक्टर को पुकारा पर भीड़ अधिक थी इसलिए न तो वह मेरे पास आ सका और न मैं समयाभाव से अधिक ठहर सका। बिना टिकिट के ही लाचार होकर उतर जाना पड़ा। अणुव्रती का नियम है, बिना टिकिट रेल ट्राम बस आदि से यात्रा न करना। मुझे इस व्रत-भंग की मन में बड़ी ग्लानि रही। संयोग वश उसी दिन मुझे ट्राम में दूसरी बार और बैठना पड़ा। पास भी साथ नहीं था। मैंने सोचा चोरी तो मेरे ट्रामवे की हुई। यदि मैं इस बार एक टिकिट की जगह दो टिकिट ले लूँ तो सम्भवतः अपने कर्तव्य का पालन कर सकूँ। इसी विचार से मैंने दो टिकिट मांगे। कण्डक्टर ने तत्क्षण पूछा—क्या एक टिकिट आपके पास बैठे महाशय का है? मैंने सहज भाव से उत्तर दिया—नहीं ये दोनों मेरे लिए हैं। आसपास बैठे व्यक्ति व कण्डक्टर सारे ही आश्चर्यपूर्वक पूछने लगे—यह क्यों? मैंने अपनी पूर्व विवशता को बताया तो सारे ही अणुव्रतों से प्रभावित हुए। कण्डक्टर ने मेरी ओर लक्ष्य करते हुए कहा—यदि आप जैसे ही सब व्यक्ति हो जाएं तो ट्रामवे को कण्डक्टर रखने की आवश्यकता ही न पड़े। आसपास बैठे सभी व्यक्तियों ने अणुव्रत आन्दोलन व आचार्यश्री तुलसी के विषय में और भी बहुत कुछ जानना चाहा। मैंने सविस्तार उन्हें बताया।